हिन्दी उपन्यास : प्रयोग के चरण

डॉ. राजमल बोरा
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

प्रथम संस्करण : अप्रेल १९७२

प्रकाशक : नमिता प्रकाशन
६, आनंदनगर, टाउन हॉल,
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

मूल्य : १० रु. ५० पैसे

मुद्रक : ज. रा. बर्दापूरकर
व्यवस्थापक, जयहिंद प्रिंटिंग प्रेस,
सन्मित्र कॉलनी, औरंगाबाद

आवरण-सज्जा : गोविंद सीताराम दैठणकर

हिन्दी विभाग

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश)
(१ अगस्त १९५९ ई. से २ दिसम्बर १९६८ ई.)

की स्मृति को...

भूमिका

मेरे सहयोगी डॉ. नरसिंहाचारी एम्. ए. पीएच. डी. ने सन् १९६५ ई. में, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय तिरुपति में, हिन्दी विभाग में एक व्याख्यान माला आयोजित की थी। यह व्याख्यानमाला साहित्यिक विधाओं की आधुनिक प्रवृत्तियों से सम्बधित थी। इसके अन्तर्गत डॉ. राजमल बोरा ने 'उपन्यास' विधा की आधुनिक प्रवृत्तियों पर अपना लेख तैयार किया और उक्त लेख विभागीय बैठक में पढ़कर सुनाया था। इसी व्याख्यानमाला से प्रेरणा पाकर डॉ. बोरा ने अपने इस कार्य को आगे बढाया और समय समय पर उपन्यासों पर विविध लेख लिखे, जो विभिन्न पत्रिकाओं में यथा समय प्रकाशित हुए हैं। ये सारे निबन्ध एक पुस्तक की योजना बनाकर लिखे गए और इसके प्रकाशन की बातचीत तिरुपति में हुई थी। उस समय शोध–प्रबन्ध के प्रकाशन को प्राथमिकता दी गई, इससे यह कार्य वैसे ही पड़ा रहा। आज उस कार्य को पूर्ण होते देखकर मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है। इसके प्रकाशन में मराठवाडा विश्वविद्यालय ने १०००/– रु. का आर्थिक अनुदान दिया है। मैं मराठवाडा विश्वविद्यालय के अधिकारियों का विशेष रूप से आभारी हूँ क्योंकि उन्होंने इस शुभ कार्य में अपना योग देकर मेरे ही अधूरे कार्य को पूर्ण किया है।

कथा–साहित्य समय की प्रवृत्तियों के साथ चलने वाली लोकप्रिय साहित्यिक विधा है और इसमें जीवन के बदलते स्वरों को वाणी प्राप्त होती रहती है। जैसे जीवन में प्रयोग होते हैं, वैसे ही कथा–साहित्य में भी प्रयोग होते रहते हैं। विचारधारा में जैसे जैसे परिवर्तन होता रहता है, उसी अनुरूप जीवन-पद्धति बदलती रहती हैं; समाज के मान-मूल्य बदलते हैं और समस्याओं को नया रूप प्राप्त होता है। बदलती परिस्थितियों में मानवीय

जीवन में मूल्यों को लेकर जो अन्तर्द्वन्द्व दिखलाई देता है, उसे कथा साहित्य में सब से पहले स्थान मिलता है। प्रायोगिक मूल्य अनास्थामूलक होने के कारण जल्दी से पकड़ में आते नहीं और इनके साथ मानव जूझता रहता है। जूझने की यह कथा प्रायोगिक स्तरों पर कथा साहित्य में कहानी की तुलना में उपन्यास में ही अधिक विस्तार के साथ स्थान पा सकती है। आज यह विधा (उपन्यास) मनोरंजन, रोमांस एवं सामयिक यथार्थवादी प्रभावों की मंजिल पार कर जीवन के साथ कदम मिलाकर चल रही है। इस माध्यम से समस्याओं का प्रायोगिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है। इस विश्लेषण में संभावनाएं अधिक हैं। इस कारण उपन्यास कुछ जटिल भी हो गए हैं। ये सभी प्रयोग सफल हैं, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता किन्तु इन प्रयोगों में जीवन का बदलता हुआ दर्शन (Out look) है हिन्दी उपन्यासों से सम्बन्धित अपनी इस पुस्तक को डॉ० बोरा ने दो खण्डों नें विभाजित किया है। प्रथम खण्ड- '**प्रयोग का पथ**' है और दूसरा खण्ड '**पथ के चरण**'। प्रथम खण्ड के अन्तर्गत प्रयोग की विभिन्न दिशाओं का विश्लेषण चार अध्यायों में प्रस्तुत किया है। ये अध्याय प्रयोग का प्रयोजन, शिल्पीय प्रयोग, चारित्रिक प्रयोग तथा मानवीय मूल्यों में प्रयोग हैं। प्रयोग का पथ, पथ ही है। पथ समाप्त नहीं होता चरण आगे बढ़ते जाएँगे और पथ प्रशस्त होता जाएगा। 'प्रयोग का पथ' प्रयोग की स्थितियों का बोध युग के परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करता है। इस आधार पर उपन्यास की प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है।

पुस्तक के दूसरे खण्ड में 'पथ के चरण' के अंतर्गत ग्यारह उपन्यासों पर स्वतंत्र ग्यारह अध्याय हैं। ये सभी उपन्यास क्रमशः इस प्रकार हैं। (१) मुक्तिबोध–जैनेंद्रकुमार; (२) बाणभट्टकी आत्मकथा–हजारी प्रसाद द्विवेदी; (३) अपने अपने अजनबी–अज्ञेय; (४) मैला आँचल–फणीश्वरनाथ रेणु; (५) धूमकेतु : एक श्रुति–नरेश मेहता; (६) नदी यशस्वी है–नरेश मेहता; (७) खाली कुर्सी की आत्मा–लक्ष्मीकांत वर्मा; (८) एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज–लक्ष्मीकांत वर्मा; (९) सोया हुआ जल–सर्वेश्वरदयाल सक्सेना; (१०) वे दिन–निर्मल वर्मा और (११) दूसरी बार–श्रीकांत वर्मा। ये सभी उपन्यास प्रयोग के पथ के चरण हैं। इन सब की समीक्षा विशेष रूप से प्रयोग को ध्यान में रखकर की गई है। उपन्यासों के बंधे हुए पैटर्न (पद्धति या तत्त्व) के आधार पर अब इनकी समीक्षा संभव नहीं हैं। समीक्षक को अब बदलते युग की प्रवृत्तियों का बोध होना आवश्यक है। इस आधार पर ही वह उपन्यास की व्यावहारिक समीक्षा कर सकता है। डॉ० बोरा ने इस दृष्टि से अपनी ओर से प्रत्येक उपन्यास की प्रवृत्ति एवं

उसके भीतर की आवाज को पहचानकर एक नया शीर्षक प्रत्येक अध्याय को दिया है। डॉ. बोरा द्वारा दिए गए शीर्षक उपन्यास के कथ्य के अधिक निकट है। अपनी समीक्षा में डॉ० बोराने इस सब का विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण में एक ओर जहाँ कथानक को स्पष्ट किया गया है वहां दूसरी ओर कथानक के बदलते शिल्प को भी समझाया गया है और इसके बाद सम्बन्धित उपन्यास का मूल्यांकन किया गया है। उदाहरण के लिए जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास 'मुक्तिबोध' को 'खण्डित व्यक्तित्व का चिंतन' कहा गया है और 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को 'ललित भावोच्छ्वासों की कथा'। इसी तरह सभी उपन्यासों के अलग अलग शीर्षक दिए गए हैं। इन शीर्षकों की व्याख्या कथानक के आलोक में प्रस्तुत की गई है। इस आधार पर समीक्षक का दृष्टिकोण व्यक्त होता है। इस दृष्टिकोण और विश्लेषण से सभी सहमत भले ही न हों किन्तु इनके आधार पर आधुनिक साहित्यिक कृतियों की समीक्षा की पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। उपन्यासों में जिस स्तर पर प्रयोग हो रहे हैं, उसी स्तर पर समीक्षा को भी आग बढ़ना है। यह पुस्तक इस दिशा में व्यावहारिक कदम है।

डॉ. राजमल बोरा मेरे प्रिय शिष्यों में हैं। दस वर्ष तक श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति में वे मेरे सहयोगी भी रहे हैं। मैं उनके गंभीर अध्ययन, शान्त प्रकृति तथा अध्यवसाय से सदैव प्रभावित रहा हूँ। इस सुन्दर कृति के लिए मैं डा. राजमल बोरा को हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे भविष्य में भी हिन्दी साहित्य की उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहेंगे।

डॉ. विजयपालसिंह,
एम्.ए.(हिन्दी), एम्.ए. (संस्कृत),
पी–एच. डी., डी. लिट्.
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शिवरात्रि
१३ फर्वरी, १९७२.

निवेदन

१ अगस्त १९५९ ई. को मेंरी नियुक्ति हिन्दी विभाग श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति में हुई। जनवरी १९६० ई. में पी–एच. डी. के लिए मेरा नाम पंजीकृत्त हुआ। उस समय से जुलाई १९६४ ई. तक मैं शोध–कार्य में लगा रहा और चाहने पर भी उपन्यास नहीं पढ़ सका। ३० जुलाई १९६४ ई. को शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने के बाद मुक्ति की सांस मिली। शोध–कार्य की ऊब मिटाने के लिए मैं उपन्यास पढ़ने लगा। उस समय में जो भी उपन्यास नया मिलता पढ़ जाता। कुछ विदेशी उपन्यास भी पढे, जिसमें दास्तावोस्की के उपन्यास मुझे बहुत अच्छ लगे। इन्हीं दिनों (सन् १९६५ई.) में दक्षिण में हिन्दी विरोधी आन्दोलन हुआ। तिरुपति पर मद्रास का क्षीण प्रभाव –इस आन्दोलनका–रहा। विभागीय कार्य बन्द रहा। कक्षाएं नहीं हुईं। अवकाश का यह समय उपन्यास पढ़ने में गया। कुछ लम्बे उपन्यास विशेष रूप से यशपाल का 'झूठा–सच', अमृतलाल नागरका,'बूंद और समुद्र', नरेश मेहता का 'यह पथ बन्धु था', तथा अन्य अनेक उपन्यास इन्हीं दिनों में पढ़े गए। मेरे साथ डॉ. रामबाबू शर्मा तथा डॉ. धनराज मानधाने (उन दिनों हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास पर शोध कार्य कर रहे थे) भी उपन्यासों में रुचि लेते। हम तीनों बारी बारी से उपन्यास पढ़ते और अवसर मिलता तो चर्चा भी करते। इन दोनों के कारण उपन्यास पढ़ने में मुझे प्रोत्साहन मिला है। डा. शर्मा पढ़ने में बहुत तेज थे। मैं एक उपन्यास पढ़ता तब तक वे दो और कभी कभी तीन पूरे कर लेते। डॉ. मानधाने के लिए तो उपन्यास ही सब कुछ थे। मैं इन दोनों के बीच अपनी राह निकालता। इन्हीं दिनों आचार्यजी (डॉ. नरसिंहाचारी) ने हिन्दी विभाग मे एक व्याख्यानमाला

आयोजित की। यह व्याख्यानमाला साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियों से सम्बन्धित थी। इस माला के अन्तर्गत मैंने हिन्दी उपन्यासों में होने वाले प्रयोगों को आधार बनाकर लेख तैयार किया। उक्त लेख हिन्दी विभाग में तब पढ़कर सुनाया गया। इससे मेंरी रुचि उपन्यासों में बढ़ गई और लिखने का साहस भी बढ़ा। डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन का एक लेख इन्हीं दिनों सप्तसिन्धु, चण्डीगढ़ में प्रकाशित हुआ। मैंने सप्तसिन्धु को अपने अनुकूल पाया। उक्त व्याख्यान-माला के अन्तर्गत जो सामग्री संकलित थी, उसके आधार पर तीन लेख तैयार किए। १. हिन्दी उपन्यासों का नया दृष्टिकोण, २. हिन्दी उपन्यास : नए प्रयोग और ३. खाली कुर्सी की आत्मा: एक कथा प्रयोग। ये तीनों ही लेख मैंने अलग अलग पत्रिकाओं को तभी भेजे थे। प्रथम लेख राष्ट्र भारती, वर्धा में अप्रेल १९६६ ई. में प्रकाशित हुआ (उक्त लेख इस पुस्तक का प्रथम अध्याय है) दूसरा लेख सप्तसिंधु, चण्डीगढ़ में उसी समय अप्रेल १९६६ ई. में ही प्रकाशित हुआ (यह लेख इस पुस्तक में दूसरा अध्याय है) तीसरा लेख माध्यम, इलाहाबाद में प्रकाशनार्थ स्वीकृत हुआ किन्तु माध्यम के बन्द हो जाने से वह प्रकाशित नहीं हो सका। इन तीनों लेखों से ही पुस्तक का प्रारंभ हुआ और आगे के लेख पुस्तक की योजनानुसार लिखे गए। '**सोया हुआ जल**' उपन्यास का महत्त्व प्रयोग के नाते है। इस उपन्यास पर स्वतंत्र लेख इसी नाते लिखा गया है। धीरे धीरे **मैला आंचल, अपने अपने अजनबी, धूमकेतु: एक श्रुति, नदी यशस्वी है, एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज, वे दिन** तथा '**दूसरी बार**' उपन्यासों पर भी स्वतंत्र समीक्षात्मक लेख तैयार हुए। इसी तरह उपन्यासों में चारित्रिक प्रयोग, **अलगावकी समस्या से जूझते कथानायक** तथा **आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में मानवीय मूल्य**, लेख भी तिरुपति में ही लिखे गए हैं। इनमें से कुछ पत्रिकाओं में प्रकाशित हो गए हैं। जिनका उल्लेख यथास्थान किया गया है। १९६७ ई० में पुस्तक लगभग तैयार हो गई। इस सम्बन्ध में मैंने मेरे आदरणीय गुरु डॉ. विजयपालसिंह से बातचीत की। डॉ. साहब ने पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी सहमति दी। उनका कहना था कि शोध प्रबन्ध को प्राथमिकता दी जाए। उनके प्रयत्नों से ही शोध प्रबन्ध विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा से प्रकाशित हुआ। इस से यह कार्य बीच में रुका रहा। इसी बीच मैं औरंगाबाद आ गया। यहाँ आने पर मुझे दो उपन्यास पढ़ाने के लिए मिले। श्री जैनेन्द्रकुमार का 'मुक्तिबोध' और डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का '**बाणभट्ट की आत्मकथा**'। अपनी पुरानी योजना को जारी रखते हुए मैंने इन दोनों उपन्यासों पर दो लेख लिखे जो क्रमशः जुलाई १९६९ ई० और जुलाई १९७० ई० में मराठवाडा यूनिवर्सिटी जरनल

में प्रकाशित हुए । सुहृदवर भाईसाहब डॉ. भ. ह. राजूरकरजी को मैंने अपनी योजना से अवगत किया । उन्होंने सहृदयता के साथ मुझे प्रकाशन अनुदान के लिए अपनी योजना प्रस्तुत करने के लिए कहा । उन्हीं की प्रेरणा से मैंने प्रेस कॉपी तैयार की और मराठवाडा विश्वविद्यालय के अधिकारियों के सम्मुख प्रस्तुत की । आदरणीय डॉ. भालचंद्र तेलंग ने भी मेरी योजना देखकर मुझे प्रोत्साहित किया । बन्धुवर गणेश तुकाराम अष्टेकरजी ने समय समय पर मेरी योजना को सराहा है । हैदराबाद से मेरे अग्रजतुल्य स्नेही डॉ. भीमसेन निर्मल का बराबर तकाजा रहा कि पुस्तक के छपने में देरी क्यों हो रही है ? सौभाग्य से मराठवाडा विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने मुझे १००० रु. प्रकाशनार्थ देना स्वीकार कर लिया और इस तरह यह योजना इन सब गुरुजनों के आशीर्वाद एवं मित्रों के स्नेह के कारण कार्यान्वित हो सकी है ।

इस पुस्तक के साथ हिन्दी विभाग श्री. वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय तिरुपति का गहरा संबंध है । हिन्दी विभाग के सभी सदस्यों का जिनमें प्रायः सभी लोग मुझ से बड़े ही हैं, का मुझपर स्नेह रहा है । डॉ. विजयपालसिंह तो मेरे गुरु ही हैं किन्तु डॉ. नरसिंहाचारी, डॉ. चंद्रभान रावत, डॉ. रामबाबू शर्मा, डॉ. रवींन्द्र कुमार जैन, डॉ. श्रीधरसिंह, डॉ. जनार्दनराव चेलेर, डॉ. भारतभूषण, डॉ. धनराज मानधाने तथा डॉ. ज्ञानप्पा नायडू का भी मुझे स्नेह और सहयोग प्राप्त हुआ है । इन सब के सान्निध्य में रहकर मैंने बहुत सीखा है । इन सब का मैं हृदय से ऋणी हूँ ।

यह पुस्तक जब प्रेस में छप रही थी, उन्हीं दिनों यहां डॉ. प्रभात तथा डॉ. नरसिंहाचारी आए । बाद में डॉ. कुमार विमल तथा प्रोफेसर कल्याणमलजी लोढ़ा भी आए । डॉ. प्रभात तथा आचार्यजी ने पुस्तक को छपते देखकर प्रसन्नता व्यक्त की । डॉ. प्रभात ने कुछ नए उपन्यासों की चर्चा की जैसे–काला जल । डॉ. कुमार विमल एवं आचार्य कल्याणमलजी लोढ़ा की व्याख्यानमाला एवं गोष्ठियों को सुनने के बाद लगा कि काल की दृष्टिसे पुस्तक काफी पुरानी हो गई है । इधर दो–तीन वर्षों में बहुत से नए उपन्यास छप गए हैं, जिनके उल्लेख इस पुस्तक में नहीं हैं । पीछे के भी बहुत से महत्त्वपूर्ण उपन्यास तथा उपन्यासकार छूट गए हैं । नरेश मेहता और लक्ष्मीकांत वर्मा के दो–दो उपन्यासों का अध्ययन है जब कि श्रीलाल शुक्ल, कृष्णा सोबती, रामदरश मिश्र, शिवप्रसादसिंह नागार्जुन एवं अनेकों छूट गए हैं । यदि इस नई सामग्री को ध्यान में रखकर फिर से लिखने बैठता तो पुस्तक का रूपान्तर हो जाता । मैं उन सभी उपन्यासकारों एवं समीक्षकों का

ऋणी हूँ जिनका उपयोग इस पुस्तक में हुआ है और जो छूट गए हैं उनके सम्बंध में क्षमाप्रार्थी हूँ। अपनी सीमाओं में जिनका अध्ययन संभव हुआ उन्हींका अध्ययन पुस्तक में है। पुस्तकों का (ग्यारह उपन्यासों का) यह चुनाव विशेष रूप से प्रयोग को ध्यान में रखते हुए तो किया ही गया है, साथ ही अध्यापकीय आवश्यकताओं (व्यवसाय होने के नाते) एवं अनिवार्यताओं का प्रभाव पुस्तक पर है। यों कहना चाहिए कि लेखन में सर्वत्र यह बोध (अध्यापकीय बोध) मुझपर हावी रहा है। यहां तक कि इस बोध का आभास मुझे उस समय हुआ जब मेरे अग्रजतुल्य स्नेही श्री विष्णुकांत शास्त्री ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा : ललित भावोच्छ्वासों की कथा' लेख को पढ़ने के बाद मुझे लिखा। उक्त पत्र इस प्रकार है :

२८० चित्तरंजन एवेन्यू
कलकत्ता
८-४-७१

प्रिय बोराजी,

सस्नेह नमस्कार

'बाणभट्ट की आत्मकथा : ललित भावोच्छ्वासों की कथा' पढ़ गया। आपने परिश्रमपूर्वक उसके लालित्य को विविध कोणों से देखा और दिखाया है। लालित्य को देखने के लिए परिश्रम करना पड़े तो बात गड़बड़ाती है। कहने का मतलब यह है कि आपका **सावधान प्राध्यापक** रूप ही उसमें अधिक मुखरित हुआ है, सहृदय रसभोक्ता कम। शायद हम लोगों का पेशा ही ऐसा है कि हम लोग विश्लेषक अधिक हो जाते हैं संश्लेषक कम। जो हो, आपका निबन्ध समादरणीय है। मुझे आपने स्नेहपूर्वक स्मरण किया, इसके लिए आभारी हूँ। भगवान की कृपा से आप सानन्द रहें।

शुभैषी,
विष्णुकान्त शास्त्री

मैं श्री विष्णुकान्त शास्त्रीजी से सहमत होते हुए स्वीकार करता हूँ कि 'सावधान प्राध्यापक' का यह रूप केवल 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में ही नहीं पुस्तक लिखने में सर्वत्र रहा हो। मैंने सर्वत्र इस बात का प्रयत्न किया है कि प्रयोग स्पष्ट हों, प्रयोग के कारण स्पष्ट हों और साथ ही उदाहरण रूप में स्वतंत्र उपन्यासों की संरचना (रचना-प्रक्रिया) स्पष्ट

हो । इस प्रयास में अध्यापकीय भूलें हो सकती हैं, जिसके लिए पाठकों से सहानुभूति की अपेक्षा है।

इस पुस्तक के १५ निबन्धों में से १० निबन्ध विभिन्न पत्रिकाओं में यथासमय प्रकाशित हो गए हैं। सप्तसिन्धु, चण्डीगढ़; साहित्य सन्देश, आगरा; नई धारा, पटना; राष्ट्रभारती, वर्धा तथा मराठवाडा यूनिवर्सिटी जनरल, औरंगाबाद के सम्पादकों का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं में इन लेखों को स्थान देकर मेरे कार्य को आगे बढ़ाया है। इसी तरह इस पुस्तक के प्रकाशन में मराठवाडा विश्वविद्यालय के अधिकारियों का आभारी हूँ। १००० रु. का प्रकाशनार्थ अनुदान देकर उन्होंने मेरे प्रतीक्षित कार्य को कार्यान्वित करने में सहायता दी है। पुस्तक के मुद्रक श्री. ज. रा. बर्दापूरकर, जयहिन्द प्रिंटिंग प्रेस, औरंगाबाद ने अपनी व्यस्तताओं के बीच इस पुस्तक को शीघ्र ही नहीं समुचित रूप में छापा है। अतः उनका भी आभारी हूं। मेरे बचपन के साथी श्री गोविन्द दैठणकर ने न केवल पुस्तक का मुखपृष्ठ तैयार किया है अपितु भीतरी साजसज्जा में भी अपनी कला का उपयोग किया है। किन–किन को धन्यवाद दूं? अन्त में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से जिस किसी ने इस पुस्तक के लेखन–प्रकाशन में सहयोग दिया है, उन सब के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। पुस्तक जैसे है – पाठकों के सम्मुख है। इति नमस्कारान्ते।

२० मार्च १९७२
६, आनंदनगर टाउन हाल
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

– राजमल बोरा

अनुक्रम

प्रयोग का पथ

पथ के चरण

प्रयोग का पथ

प्रयोग का प्रयोजन

प्रयोग का प्रयोजन

प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक रल्फ फॉक्स ने उपन्यास के विषय के सम्बन्ध में लिखा है – "उपन्यास का विषय है व्यक्ति । यह समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध, व्यक्ति के संघर्षों का महाकाव्य है। और यह केवल उसी समाज में विकसित हो सकता था जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच सन्तुलन नष्ट हो चुका हो और जिसमें मानव का अपने सहजीवी साथियों अथवा प्रकृति से युद्ध ठना हो "[1] इस आलोक में यदि हम आज उपन्यास साहित्य पर दृष्टि डालें तो हम यह अनुभव करते हैं कि आज का उपन्यास-कार मानव जीवन का अध्ययन यथार्थ के विभिन्न स्तरों पर व्यक्ति के संघर्षों को आधार बना कर कर रहा है। आज मानव जीवन का अध्ययन मानव को ईश्वर से अलग कर उसके अपने निजी अस्तित्व के आधार पर समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों के आधार पर होने लगा है। इस सम्बन्ध में आई. अे. ऐक्टास ने लिखा है "– राजनीतिकों, अर्थशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, शिक्षकों तथा लेखकों ने मनुष्य को ईश्वर से बिना सम्बन्धित किए हुए ही उस पर सोचना प्रारम्भ कर दिया है। मानव जीवन के अर्थ तथा यथार्थ को समझने के लिए उन्होंने धर्म को अप्रासंगिक कहकर टाल दिया है। उन्होंने इस वास्तविकता से दृष्टि फेर ली है कि मनुष्य अनौपचारिक ढंग से धार्मिक है, ईश्वर पर केन्द्रित है, और यदि उसे ईश्वर से वंचित कर दिया गया तो अपनी इस दैवी भूख की तृप्ति के लिए वह विचित्र एवं भयावह ईश्वर की सृष्टि करेगा और उनको अपनी पूजा अर्पित करेगा – जैसे राज्य, जाति और मानवता। "[2]

---

१. उपन्यास और लोकजीवन – रैल्फ फॉक्स – अनु. नरोत्तम नागर पृ. २८,

२. आलोचना १३ (उपन्यास विशेषांक) – पृ. २२२

ईश्वर को अपने से अलग कर आज का मानव अपने नये मूल्यों की खोज कर रहा है और उसकी अभिव्यक्ति हमें उपन्यासों में देखने मिल रही हैं।

विशेषज्ञता

आज का युग विशेषज्ञता का युग है। उपन्यासों में भी अब यह विशेषज्ञता दिखाई दे रही है। अब उपन्यासों में मानव जीवन का संपूर्ण चित्र नहीं मिलता न जीवन का विस्तार मिलता है और न ही काल का विस्तार। अब उपन्यासो में मानव जीवन के खण्ड चित्र मिलते हैं। नरेश मेहता का उपन्यास "**धूमकेतु : एक श्रुति**" बालजीवन पर ही आधारित है। कालविस्तार की दृष्टि से देखें तो अब उपन्यासों में सप्ताह के जीवन का, उससे कम चाहें तो २४ घण्टों का और उससे भी कम बारह घण्टों के विस्तार पर आधारित उपन्यास लिखे मिलते हैं। राजेन्द्र यादव का '**उखड़े हुए लोग**' उपन्यास में एक सप्ताह का कथानक है। शरद आगरा से देशबन्धुजी के पास दिल्ली जाता है और एक सप्ताह बाद वहाँ की यथार्थ परिस्थितियों को जान लेने के बाद लौट आता है। २४ घण्टो पर आधारित उपन्यास गिरिधर गोपाल का '**चांदनी के खण्डहर**' और नरेश मेहता का '**डूबते मस्तूल**' उपन्यास मिलते हैं। बारह घण्टों पर आधारित उपन्यास श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का '**सोया हुआ जल**' मिलता है। तात्पर्य यह है कि उपन्यासों में एक ओर जहाँ जीवन का संकोच हो गया है वहाँ काल का भी संकोच होता जा रहा है।

क्षणों का विस्तार

जीवन के इस संकोच के कारण उपन्यासों में जिस कालखण्ड का विवरण या चित्रण मिलता है, उनमें क्षणों की संवेदनाओं का व्यापक और सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न दिखाई दे रहा है। श्री. लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यास '**खाली कुर्सी की आत्मा**' में कुर्सी की संवेदना उपन्यास के अन्तिम अध्याय 'अन्तरिम बिन्दु' में देखी जा सकती है। किन्तु इसी संवेदना को समझाने के लिए, उन क्षणों की व्यापक और तीव्र भावना जगाने के लिए ही सारा उपन्यास लिखा गया है। उपन्यास का आरम्भ वेटिंग रूम से होता है और अन्त भी वहीं पर होता है। यहीं पर पड़ी हुई कुर्सी को जो संवेदना होती है, उसीका ज्ञापन करने के लिए वह अपनी आत्मकथा सुनाती जाती है। एक प्रकार से वह अपने जीवन को दुबारा जीती है। उसकी सारी कथा वास्तव में अन्तिम क्षणों की संवेदनाओं की व्याख्या के लिए ही है। **डूबते मस्तूल**, में रंजना अकलंक से कहती है– "जानते हो अकलंक, प्रत्येक

क्षण का सत्य ही सत्य है, और पूरा जीवन इन छोटे सम्पूर्ण खण्ड सत्यों का यौगिक विस्तार-फैलाव-और क्या ?"[1] इसी उपन्यास में अकलंक नामधारी 'मैं' पात्र एक दूसरे स्थान पर कहता है- "कल के बारे में तो मैं नहीं जानता रंजना। और जानकर भी क्या लूंगा यदि नियतिवाद ठीक भी हो तो, किन्तु आज के इस क्षण को जो कि मेरे सम्मुख उतना ही नग्न है जितनी कि अन्य चीजें- मैं अपने में तिरोहित कर लेना चाहता हूँ, कम से कम आज भर के लिए कह सकता हूँ कि मैं क्षणवादी हूँ।"[2] इस क्षण की व्याख्या में कथाकार यह बताना चाहता है कि पात्र के विचारों की प्रक्रिया क्या है ? वे जीवन को किस दृष्टि से देखते हैं ? वे क्या सोचते और समझते हैं। उनकी जीवन सम्बन्धी धारणाएँ क्या हैं ? आदि आदि। पात्रों का एक प्रकार से वे आन्तरिक विश्लेषण प्रस्तुत करना चाहते हैं। इस विश्लेषण में अब बहिर्जगत की अपेक्षा अन्तर्जगत की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। अब उपन्यासों में पात्रों के बहिर्जीवन का चरित्र विस्तार नहीं मिलता। इसके स्थान पर उनके अन्तर्जीवन की कथा अधिक मिलती है। मनोवैज्ञानिकों ने मन के तीन स्तर माने हैं। चेतन, उपचेतन और अचेतन। उपन्यासकार मन के इन तीनों स्तरों का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए पात्र का व्यक्तित्व यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। पात्रों का चरित्र चित्रण प्रस्तुत करते समय यदि चेतन मन के स्तर को लेकर कथा लिखी जायगी तो उसको समझने में कठिनाई नहीं होगी। इससे उपन्यास के पात्रों का कालक्रम से चरित्र चित्रण भी समझ में आएगा और पाठक कथा का रस भी ले सकेंगे। प्रेम-चंदजी और उनकी परम्परा में लिखने वाले उपन्यासों में हमें पात्रों का सशक्त और सम्पूर्ण चरित्र मिलता है। किन्तु आज के उपन्यासकारों का दृष्टिकोण बदला हुआ है। उनका कहना है कि हम अपने निकट से निकट सम्बन्धित व्यक्ति को पूर्णत: नहीं जानते। हम जो कुछ जानते हैं, वह पात्रों का खण्ड रूप ही है अत: उपन्यासों में व्यक्ति के सम्पूर्ण चरित्र की आशा क्यों की जाय ? इसीलिए आज उपन्यासों में खण्डित चित्र ही मिल रहे हैं। पात्रों के चेतन मन की अपेक्षा उनके उपचेतन और अचेतन मन का विश्लेषण अब विस्तार से किया जा रहा है। यह विस्तार इतना अधिक होता जा रहा है कि चेतन मन उपचेतन और अचेतन में खो सा गया है। इसीलिए पात्रों के व्यक्तित्वों को या उनके चरित्रों को समझना कठिन सा

---

१ - डूबते मस्तूल - श्री नरेश मेहता - पृ. २५. २ - वही - पृ. ३३।

हो गया है। मन के इन विभिन्न स्तरों का विश्लेषण कालक्रम से नहीं हो सकता। इसीलिए उपन्यासों में कथानक भी कालक्रम से नहीं मिलता। परिणाम यह हो रहा है कि कभी हम सहसा आगे बढ़ जाते हैं और कभी झटका खाकर एकदम पीछे चले जाते हैं और पात्र के किशोर या बाल्यजीवन को देखने लगते हैं। चेतना की विषम और असम्बद्ध गति की भाँति कथा और चरित्र की भूमियाँ आज असम्बद्ध और अगतिशील हो गई हैं। कथाकार हमें जीवन के खण्ड चित्र ही देता है और इसमें भी वह सुनिश्चित होना नहीं चाहता। चरित्र का खण्ड रूप प्रस्तुत किया और तटस्थ भाव से अलग खड़ा हो गया। जो कुछ प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें एकसूत्रता स्थापित करना पाठकों का काम रह गया है। उदाहरण के लिए अज्ञेय का '**शेखर : एक जीवनी**' उपन्यास लिया जा सकता है। इसी तरह दूसरा उदाहरण सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का '**सोया हुआ जल**' उपन्यास है। इन उपन्यासों को एक बार पढ़ने से काम नहीं चल सकता। इनमें एकसूत्रता स्थापित करने के लिए पाठक को कम से कम दो बार पढ़ना आवश्यक हो जाएगा। यदि वह नई टेकनिक समझ जाए या इस प्रकार की रचनाओं को पढ़ने का अभ्यस्त हो जाए तो उसे कठिनाई नहीं होगी। इसमें भी पाठक जो एकसूत्रता स्थापित करता है वह चरित्रगत या विचारगत एकसूत्रता नहीं होती। इसे हम केवल भावगत एकसूत्रता कह सकते हैं।

काल भी एक आयाम

आज उपन्यासों में जिन घटनाओं का उल्लेख मिलता है, वे अब बहिर्जगत की वस्तु नहीं रह गई है। वे अब अन्तर्जगत की वस्तु बन गई है। इन घटनाओं का न कोई कालक्रम होता है और न ही इनकी कोई रूपरेखा ही निश्चित होती है। काल के सम्बन्ध में हमारी धारणा अब बदल गई है। वह भी अब एक आयाम हो गया है। पात्र की संवेदना को पूर्णतः आत्मसात करने के लिए अब उस पात्र की अन्तश्चेतना में जो काल में प्रवाहित होती रहती है, उसको समझना भी आवश्यक हो गया है। पात्रों की चेतना काल के प्रवाह में बहकर वर्तमान के यथार्थ में जिस व्यापक और सूक्ष्म संवेदना का अनुभव करती है उसका ज्ञान कराना भी उपन्यासकार का लक्ष्य हो गया है। काल प्रवाह को बाँधकर अनेक पात्रों का समकालवर्तित्व चित्रण प्रस्तुत करनेवाला साथ ही पात्रों के मानस का आन्तरिक विश्लेषण करनेवाला उपन्यास '**सोया हुआ जल**' है। इस उपन्यास में यात्रिशालाकी एक रात्रि का वर्णन है। यात्रिशाला के कमरों में उपन्यास के पात्र ठहरे हुए हैं। हरी रोशनीवाले कमरे

में पति-पत्नी राजेश और विभा ठहरे हुए हैं, कमरा नं. २ में प्रेमी-प्रेमिका किशोर और रतना ठहरे हुए हैं, कमरा नं. ७ में शराबी दिनेश है और कमरा नं. ११ में साम्यवादी जननायक प्रकाश ठहरा हुआ है । इन सभी पात्रों का एक ही समय में उन पात्रों के बाह्य और आन्तरिक जीवन को प्रस्तुत किया गया है । यात्रिशाला का बूढ़ा पहरेदार इन कमरों के पास से घूमते समय इन पात्रों की जो चर्चाएं सुनता जाता है, उससे उपन्यास का कथानक बनता है । पात्रों के अन्तश्चेतन का विश्लेषण काले पंखोंवाले दूत के माध्यम से किया गया है । उपन्यास में स्वप्नदृश्य भी हैं । इसमें यह दिखाया गया है कि राजेश और विभा बाह्य जगत में पति-पत्नी के सम्बन्ध का पूर्ण निर्वाह करते हैं । उनके सम्बन्धों में माधुर्य है किन्तु नींद में वे एक दूसरे से बिलकुल दूर रहते हैं । स्वप्न में राजेश किसी गोरी लड़की के साथ प्रेम करता दिखाया गया है और विभा अपने प्रेमी मोहन के साथ प्रेमालाप कर रही है । शारीरिक रूप से एक ही कमरे में एक ही बिस्तर पर होने पर भी दोनों की आत्माएँ एक दूसरे से बहुत बहुत दूर दिखलाई गई हैं । इसी तरह अन्य पात्रों का भी सम-कालवर्ती बाह्य और आन्तरिक विश्लेषण उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है ।

वैचारिक विश्लेषण

एक और नया दृष्टिकोण जो इन उपन्यासोंमें दिखाई दे रहा है, वह है वैचारिकता । विचारों की जीत सबसे बड़ी जीत होती है और विचारोंकी हार सबसे बड़ी हार । उपन्यासों में विचारों का विश्लेषण अब अधिक मात्रा में मिलता है । मानव जीवन का पारदर्शक यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए उसकी समीक्षा भी साथ साथ किसी न किसी माध्यम से उपन्यासकार कर ही देता है । उदाहरण के लिए डाक्टर धर्मवीर भारती का उपन्यास '**सूरज का सातवाँ घोड़ा**' लिया जा सकता है । इस उपन्यास की कहानियों के अन्त में कहीं कहीं अन्ध्यायवाला अंश जुड़ा हुआ है । इन अंशों में कहानियों के श्रोता कहानी के पात्रों का विश्लेषण करते हैं । समाज के संदर्भ में उन चरित्रों की व्याख्या करते हैं । यहाँ तक कि अन्तिम कहानी में स्वयं कथाकार ने अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है । पाठक को समीक्षा करने की आवश्यकता नहीं रही । इसी तरह **खाली कुर्सी की आत्मा** में लौह पुरुष और खिलौनों में जो चर्चा होती है वह एक प्रकार से पात्रों का यथार्थ विश्लेषण है । यह सारा अंश विचारमूलक ही है । उपन्यास की समीक्षा उपन्यास में कुछ हद तक मिल जाती है—केवल विचारों की दृष्टि से ।

पात्र जैसे दिखाई देते हैं–चेतन जगत में – वैसे नहीं होते। अपने अन्तश्चेतन में वे कुछ और होते हैं। ऐसी स्थिति में मानव का लघु यथार्थ रूप सामने आता है। उसके जीवन के विरोधाभास उपन्यास में दिखाए जाते हैं। ऐसी स्थिति में मानव मूल्यों के विघटित रूप सामने आते हैं। चेतन जगत के मूल्यों में और अन्तश्चेतन के मूल्योंमें विरोध दिखाई देता है। बौद्धिक उपन्यासों में जीवन के व्यंग्य देखने मिलते हैं। एक ही पात्र के विभिन्न व्यक्तित्वों को देखकर लगता है कि मानव को आज विभिन्न रूपों में जीना पड़ रहा है। उसका अपना निजी रूप इन विभिन्न रूपों में खोजना कठिन हो गया है। राजेन्द्र यादव के उपन्यास '**उखड़े हुए लोग**' में सूरजजी एक स्थान पर कहते हैं––"यह आज के समाज की विवशता है कि उसने मनुष्य के व्यक्तित्व को इस तरह कई हिस्सों में तोड़ दिया है और वह किसी भी ओर अपनी पूर्ण निष्ठा नहीं दे पाता। हम समझ नहीं पाते कि हमारे व्यक्तित्व का सच्चा हिस्सा कौनसा है?"[१] व्यक्तित्वों की विसंगति को दिखलाना एवं मानव को उसकी लघु हस्ती का ज्ञान करवाना और इस तरह उसके प्रति पूर्ण संवेदना जाग्रत करना ही उपन्यासकार का लक्ष्य हो गया है।

प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति

उपन्यासकार अब प्रतीकों का सहारा भी ले रहे हैं। "**खाली कुर्सी की आत्मा**' और '**सोया हुआ जल**' दोनों ही प्रतीकात्मक उपन्यास हैं। **सोया हुआ जल** उपन्यास में यात्रिशाला इस विश्व का प्रतीक है। जैसे यात्रिशाला में यात्री कुछ काल के लिए ठहरते हैं उसी तरह हम भी इस संसार में कुछ काल के लिए ही आते हैं। यात्री जीवों की आत्माएँ प्यासी हैं। उनकी आन्तरिक प्यास ही मानव की आकांक्षाएँ हैं। 'सोया हुआ जल' अन्तश्चेतन में सोई हुई आन्तरिक प्यास का प्रतीक है। बूढ़ा पहरेदार जर्जर मानवता का प्रतीक है। दिन निकलते ही उसका मर जाना जर्जर मानवता का मरना ही है। सोये हुए जल का जाग उठना नई मानवता का उदित होना है। इसी की कल्पना उपन्यास के अन्त में की गई है।

आज का उपन्यास साहित्य गतिशील है। वह मानव जीवनके विविध स्तरों का यथार्थ रूप में चित्रण करते हुए अपनी टेकनिक में भी प्रगति कर

---

१. उखड़े हुए लोग––राजेन्द्र यादव–पृ. २२४.

रहा ह । विषय के परिवर्तन के साथ उसकी अभिव्यंजना के रूप भी बदलते जा रहे हैं। नये नये प्रयोग उपन्यासों में हो रहे हैं। नई अभिव्यक्ति हमेशा नया माध्यम खोजती है । इससे नये शिल्पविधान उपन्यासों में देखने मिल रहे हैं।

● ●

(राष्ट्रभारती, वर्धा, अप्रेल १९६६ में 'नय उपन्यासों का दृष्टि-कोण' शीर्षक से प्रकाशित)

शिल्पीय प्रयोग

● शिल्पीय प्रयोग

युग का यथार्थ यदि साहित्य की किसी विधा में मुखर हो उठता है तो वह है– कथा साहित्य । कथा साहित्य में भी कहानी की अपेक्षा उपन्यास में जीवन का विस्तार अधिक होता है । प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक रैल्फ फॉक्स ने तो उपन्यास को व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य कहा है ।[1] डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है "उपन्यास किसी देश की साहित्यिक विचारों की प्रगति को समझने के लिये उत्तम साधन माने गये हैं, क्योंकि जीवन की यथार्थताएं ही उपन्यास को आगे बढ़ाती हैं । मनुष्य के आचार विचारों और बढ़ती हुई यथार्थताओं के बीच निरन्तर उत्पन्न होती रहनेवाली खाई को पाटना ही उपन्यास का कर्तव्य है । इसलिए उपन्यास के अध्ययन का मतलब होना चाहिए किसी जाति या समाज के बढ़ते हुए विचारों और निरन्तर उत्पन्न होते रहनेवाली जीवन की यथार्थ परिस्थितियों से सम्पर्क स्थापित करते रहने के प्रयत्नों का अध्ययन । जन्म से ही उपन्यास यथार्थ जीवन की ओर उन्मुख रहा है ।"[2] युग का यह यथार्थ समयानुसार बदलता रहता है । प्रत्येक युग का यथार्थ बोध विशिष्ट होता है । यह युग का विशिष्ट यथार्थ-बोध अपनी दृष्टि से सोचता समझता ही नहीं किन्तु इसके साथ साथ वह अतीत की सांस्कृतिक विरासत का पुनर्मूल्यांकन भी करता है । इस विशिष्ट यथार्थ बोध के आधार पर ही युग की रचनात्मक प्रवृत्तियां प्रकाश में आती हैं । दूसरे शब्दों में युग का रचनात्मक स्वभाव (creative temper) युग के

---

१. उपन्यास और लोक जीवन–रैल्फ फॉक्स–अनु. नरोत्तम नागर–पृ २८

२. विचार और वितर्क–(हिन्दी उपन्यास में यथार्थवाद का आतंक लेख से) डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी – पृ. १०५

यथार्थ-बोध के आधारपर ही निश्चित होता है । नया यथार्थ-बोध पुराने रूढ़ रूपविधान को लेकर सामने नहीं आ सकता । वह अपने लिए अभिव्यक्ति का नया माध्यम खोजता है । इसी से अभिव्यंजना शिल्प में नया प्रयोग होता है । स्वयं प्रेमचंद जी ने गोपालराम गहमरी और देवकीनन्दन खत्री की तुलना में उपन्यास साहित्य में नया प्रयोग किया था । यदि प्रेमचंद जी उसी परंपरा में लिखते तो वे अपने युग के यथार्थ-बोध से हमे अवगत नहीं करा पाते । इसी तरह आज का यथार्थ-बोध अब प्रेमचंद की परंपरा को छोड़ कर नये रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है । नीचे हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रयुक्त कुछ नये प्रयोगों की विवेचना की जा रही है ।

आज मानव जीवन का अध्ययन उपन्यासकार विविध रूपों में प्रस्तुत कर रहे हैं । उपन्यासकार मानव जीवन के चित्र को प्रस्तुत करते समय इस बात का ध्यान रखने में प्रयत्नशील है कि जहां तक संभव हो वे पात्रों का पारदर्शक और हूबहू रूप सामने रख सकें । दूसरे शब्दों में पात्रों के चेतन, उपचेतन एवं अचेतन मन के सभी स्तरों का दर्शन कराने का प्रयत्न उपन्यासकार कर रहे हैं । मानव व्यक्तित्व के संघटनात्मक और निर्माणात्मक तत्त्वों को विभिन्न कोणों से तथा विभिन्न आयामों से विभिन्न रूपों में चित्रित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं । यथार्थ जीवन को प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकार आज तटस्थ रहने का प्रयत्न कर रहा है । उनकी तटस्थता ही आज उनकी कला का प्राण बन गई है । इसीलिए कथा कहने की विविध पद्धतियाँ प्रकाश मे आई हैं। यह नया शिल्प रूपकात्मक और अभिव्यंजनात्मक है । बहिर्जीवन के साथ-साथ आभ्यंतरिक जीबन को अभिव्यक्त करने के लिये सांकेतिकता का प्रतीकात्मकता का, स्मृत्यालोक को सिनेरिलों की तरह प्रस्तुत करने का, सिनेरियों टेकनिक का एवं अनेक विविध रूपों का प्रयोग हिन्दी उपन्यासों में हो रहा है । कथाकारों ने तर्कसंगति का पल्ला छोड़ दिया है और वे अब भावसंगति को प्रधान मान कर चल रहे हैं । वे अब तर्कमूलक पद्धति के द्वारा नहीं बल्कि भावमूलक प्रतीकों के माध्यम से नई संवेदना को जगाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

नये प्रयोगों के सम्बध में कहने से पूर्व परम्परा को भी देख लिया जाय। हिन्दी के प्राथमिक उपन्यासो में 'परीक्षागुरु' का नाम लिया गया है । इससे प्रेमचन्द के उपन्यास **गोदान** तक हिन्दी उपन्यासों की परम्परा हिन्दी में नये उपन्यासकारों को प्राप्त हुई है । यद्यपि वैयक्तिकता को अपनाने के कारण **जैनेन्द्र जी** के उपन्यास **प्रेमचन्द** जी से भिन्न हैं । किन्तु रूप विधान में प्रयोग **की दृष्टि से** वे उसी परम्परा के हैं । इसी तरह इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास

भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के कारण मौलिक भले ही प्रतीत हों किन्तु उनमें कोई क्रान्तिकारी नया प्रयोग हमें नहीं मिलता । यशपाल के उपन्यास अपने सिद्धान्त और दृष्टिकोण के आधार पर ही इनसे भिन्न हैं । ये सभी उपन्यास-कार अब तक की मान्य परम्परा को ही अपनाते आए हैं । भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि भी उसी परम्परा में अपने-अपने दृष्टिकोण को लिए हुए लिख रहे हैं । इन सब लेखकोंने उपन्यास की निश्चित परम्परा में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं किया । इन उपन्यासों में कथा पूर्वापार सम्बन्ध और कार्य-कारण शृंखला से युक्त मिलती है । पात्रों का चरित्र-चित्रण स्पष्ट और समझ में आनेवाला है ।

शेखर : एक जीवनी

उपन्यास की इस परम्परा में क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत करने वाला प्रथम नया प्रयोग अज्ञेय का "**शेखर : एक जीवनी**" उपन्यास है । इसे उपन्यास के प्रचलित रूपविधान से भिन्न देख कर इसके उपन्यास होने में पहले पहल सन्देह किया गया । यह सारा उपन्यास स्मृत्यालोक–पद्धति से लिखा गया है । मृत्यु की छाया में बैठ कर शेखर का चेतन प्रवाह अतीत के जीवन के विविध मानस चित्रों को स्मृतियों के रूप में देखता रहता है । कहते हैं कि मृत्यु के कुछ समय पहले मनुष्य को अपना अतीत अपनी सम्पूर्ण संवेदना के साथ दिखाई देता है । शेखर की इस मन:स्थिति को व्यक्त करने के लिये स्मृत्यालोक की पद्धति अपनाना अनिवार्य था । इसके अभाव में यदि कथाकार कथा की सीधी लकीर वाली पद्धति को अपनाकर कथा कह देता तो उपन्यास का सारा सौंदर्य नष्ट हो जाता । चूंकि स्मृतियाँ कालक्रम से चेतना में नहीं उभरती । वे कभी आगे और कभी पीछे याद आती हैं अत: चेतना के प्रवाह के अनुकूल ही उपन्यासकार ने स्मृतियों के वे अंश उपन्यास में दिये हैं । '**शेखर : एक जीवनी**' की टेकनिक का रहस्य है फाँसी, मृत्यु -- अथवा मृत्यु की अनिवार्यता का बोध । उस छाया में अपने जीवन को वह दुबारा जीता है । उपन्यास का रहस्य यही है और इसीलिए नये प्रयोग को अपनाना अनिवार्य हो गया है । स्मृतिपटल पर आए हुए इन चित्रों में घटनाओं और दृश्यों का क्रम नहीं, भावों और मन:स्थितियों का क्रम मिलता है । ये चित्र स्वतंत्र होने पर भी समन्वित प्रभाव पैदा करने में सक्षम हैं ।

बाणभट्टकी आत्मकथा

डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का उपन्यास **'बाणभट्ट की आत्मकथा'** भी वास्तव में हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक अभिनव प्रयोग है। यह कादम्बरी और हर्षचरित की प्राचीन शैली का नया संस्करण है, जो अपने आप में उस युग के भाव, शैली, और विचारों को ही नहीं बल्कि अपने युग की सस्कृति और सभ्यता को भी उन्हीं की वाणी के समान प्रेक्षणीय करनेवाला है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में डॉ. रमेशकुन्तल मेघ ने लिखा है– 'इसमें इतिवृत्तात्मकता के सभी माध्यमों–भाषण शैली, आत्मालाप, कथोपकथन, अन्तर्विश्लेषण, विभिन्न मनोदशाओं का इस्तेमाल करके एक जीवन्त जीवनभोग का मायावरण (illusion) उत्पन्न किया जाता है। कुछ चुनी हुई घटनाएँ, विशिष्ट सामग्री और व्यक्तित्व के चारित्र्यसूत्रों के आधारपर पात्र की स्मृतियाँ मनोदशाओं, अनुभवों, आत्मध्यान आदि के द्वारा वास्तविक जीवन की अनुकृति की जाती है। जीवनी में पात्र के अनुचिन्तन पर, उसकी जीवनी की महत्ता पर अधिक बल दिया जाता है, न कि घटनाओं पर या समाज के चरित्र पर। घटनाएँ तथा समाज जीवनी ही की पृष्ठभूमि होते हैं। **बाणभट्ट** की आत्मकथा एक कलात्मक जीवनी है, यद्यपि शीर्षक तथा शैलीसे आत्मकथा लगती है। वस्तुतः यह आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई एक कलात्मक जीवनी है। लेखक ने इसमें उपन्यास–गठन का आभास दिया है, किन्तु स्वयं ही उपसंहार में स्वीकार कर लिया है कि 'यह डायरी शैली पर लिखी गई है'[१] इसी तरह द्विवेदी जी ने सातवाहन युग पर आधारित **चारुचंद्रलेख** उपन्यास भी लिखा है। उनका तीसरा उपन्यास **पुनर्नवा** का कुछ अंश कल्पना में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ है।

सूरज का सातवां घोडा

धर्मवीर भारती का **'सूरज का सातवाँ घोडा'** कहानियों की पद्धति में लिखा गया एक नया उपन्यास है। इसमें सात कहानियां है, जो प्राचीन पद्धति से ही कही गई हैं किन्तु नवीनता यह है कि इस अनेकता में भी एकता बनी हुई है। अलग अलग कहानियों में अलग अलग पात्रों की कथाएं होने पर भी वे पात्र एक दूसरे से सम्बद्ध दिखलाए गए हैं। इन कहानियों में एकसूत्रता स्थापित करनेवाला काम इन कहानियों को कहने वाला पात्र माणिकमुल्ला

---

१. आलोचना २८ – पृ. १०७

करता है । मध्यवर्ग की समस्याओं को उभार कर रखना उपन्यास का लक्ष्य है जिसमें वह प्राचीन पद्धति को अपनाते हुए भी सफल हुआ है । इस उपन्यास की एक विशेषता यह भी है कि कहानियों के बाद श्रोताओं की चर्चावाला अनध्याय अंश ऐसा जोड़ दिया है जिसमें पात्रों के चरित्र की समीक्षा समाज के संदर्भ में कर दी गई है ।

बहती गंगा

'**बहती गंगा**' शिवप्रसाद रुद्र का एक नया प्रयोग है । इसमें बारह तरगें हैं । ये एक दूसरे से अलग होने पर भी काशी नगरी के कारण एक दूसरे से सम्बद्ध है । काशी के दो सौ वर्षों के मस्तीमय जीवन का इतिहास प्रस्तुत उपन्यास में अवतरित किया गया है । आचार्य सीताराम चतुर्वेदी जी ने इस ग्रंथ के परिचय में लिखा है-- "**बहती गंगा**' विश्वभर के उपन्यास जगत में एक नई शक्ति, एक नई आभा और एक नई कला लेकर अवतरित हुई है। राजवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के पात्र अपनी-अपनी कल्पना, भावना, प्रकृति और प्रवृत्ति की स्वाभाविक भूमिका में ऐतिहासिक घटना प्रवाह में बहते चले जा रहे हैं, इन्हें उपसन्यासकार छूता नहीं है, रंगता नहीं है, वरन् क्रिकेट मैच का रेडिओ पर विवरण देने वाले प्रवक्ता की भांति आखों पर दूरवीक्षण यंत्र लगा कर प्रत्येक पात्र की क्रिया का वर्णन सूक्ष्मता, सजीवता और भावुकता के साथ करता चला जाता है ।"[1] एक नगर के २०० वर्षों का इतिहास प्रस्तुत करने वाला यह प्रथम उपन्यास हिन्दी में लिखा गया है ।

समय सम्बंधी प्रयोग

हिन्दी में समय सम्बन्धी प्रयोग भी हुए हैं । इस दृष्टि से २४ घण्टों की कथा प्रस्तुत करनेवाले दो उपन्यास मिलते हैं । गिरिधर गोपाल का '**चांदनी के खण्डहर**' और नरेश मेहता का '**डूबते मस्तूल**', इससे भी कम बारह घण्टों पर आधारित एक लघु उपन्यास श्री सर्वेश्वर दयाल का '**सोया हुआ जल**' मिलता है । समय की सीमाओं के होते हुए भी जीवन के जिन खण्डों के चित्र उपन्यासों में प्रस्तुत किये गये हैं उन पर व्यापक और सूक्ष्म प्रकाश डाला गया है ।

---

१. बहती गंगा–शिवप्रसाद रुद्र –परिचय (आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा) पृ. ७.

चांदनी के खण्डहर

गिरिधर गोपालका उपन्यास '**चांदनी के खण्डहर**' में मध्यवर्गीय परिवार के एक दिन की कथा है। बसंत ५ वर्ष बाद लंदन से अपने घर आता है और उस दिन वह अपने परिवार का जो रूप देखता जाता है उसका चित्र उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति कितनी खोखली होती जा रही है, इसका आभास कराना उपन्यासकार का मुख्य लक्ष्य है। जो व्यक्ति स्वयं बदलने की प्रक्रिया में है वह इस परिवर्तन का अनुमान उतने सहज रूप में नहीं कर सकता, उस व्यक्ति की तुलना में जो ५ वर्ष बाद उस स्थिति को अपनी आँखों से देखकर अनुभव कर सकता है। इस को और तीखे रूप में दिखलाने की दृष्टि से कथाकार ने आरम्भ में बसंत के उत्साह उमंग को अतिरंजित रूप में प्रस्तुत किया है। २४ घण्टों की सीमा में लिखा गया यह लघु उपन्यास बड़ा ही प्रभावशाली है।

सोया हुआ जल

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का '**सोया हुआ जल**' एक दूसरे ही प्रकार का उपन्यास है। इसमें यात्रिशाला की एक रात्रि का केवल-बारह घंटों के बीच की कथा का वर्णन है। यह उपन्यास लघु होते हुए भी अपने आप में बहुत महत्त्व-पूर्ण है। इसमें विभिन्न पात्रों का समकालवर्तित्व (Simul taneity) मनः-स्थितियों का आन्तरिक और बाह्य विश्लेषण सांकेतिक और प्रतीकात्मक ढंग से किया गया है। इसमें यात्रिशाला की एक रात्रि का वर्णन है। बीमार बूढ़ा पहरेदार यात्रिशाला में पहरा दे रहा है। वह बेंच पर बैठे बैठे ऊंघता रहता है; बीच बीच में चक्कर काटता हुआ कमरों के पास से गुजरता है। वह यात्रिशाला के विभिन्न कमरों से और पास के ताल से कुछ स्फुट चर्चाएँ सुनता है इसी से उपन्यास का ढांचा बनता है। बूढ़ा पहरेदार जो बातचीत जिस स्थान से सुनता है, उसे उसी शीर्षक के अन्तर्गत लिखा गया है। जब सबेरा होता है, बूढ़ा मर जाता है। किन्तु उस बूढ़े की आत्मा ने जो कुछ अवलोकन किया उसका यथार्थ चित्र उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। पात्रों के बाह्य जगत को तो वह उनके संवादों को सुनकर समझ लेता है किन्तु उनके आन्तरिक जगत को जानने के लिये उसे काले पंखों वाले दूत से सहायता मिलती है। इसी की सहायता से पात्रों की भीतरी प्यास को भी वह जान जाता है। दिन निकलते ही उपन्यास समाप्त हो जाता है। राजेश और विभा पति-पत्नी के रूप में एक दूसरे को चेतन जगत में चाहते हुए दिखाए गए हैं।

उनके आपसी व्यवहार में माधुर्य है किन्तु अपने अन्तश्चेतन में वे दूसरों को चाहते रहते है। राजेश किसी गोरी लड़की को चाहता है और विभा मोहन को चाहती है । इसी तरह किशोर और रतना दोनों प्रेमी के रूप में दिखाए गए हैं । ये दोनों प्रेमी दिनेश से साफ कह देते हैं कि उनका विवाह नहीं हो सकता । वे झगड़ते हैं। किन्तु अन्तश्चेतन में वे दोनों ही एक दूसरे को बहुत चाहते हुए दिखाए गये हैं । दोनों को अपने-अपने संस्कारों और परिवेश का भय है जो उन्हें मिलने नहीं देता । उपन्यास के शिल्प में एक और नवीनता यह है कि यह नाटकीय पद्धति में लिखा गया है । कथानक का विकास संवादों के द्वारा ही होता है । स्वप्न दृश्यों को यदि छोड़ दें तो बाकी का सारा अंश नाटकीय ही है। कारण यह है कि पहरेदार पात्रों की बातचीत अपने कानों से ही सुनता है । उपन्यासकार अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। स्वप्नदृश्यों में भी प्रायः संवाद है । रूपविधान की दृष्टि से यह नाटक और उपन्यास के बीच की चीज है । थोड़े बहुत हेरफेर से इसे सफल रेडियो रूपक में परिवर्तित किया जा सकता है।

डूबते मस्तूल

नरेश मेहता का '**डूबते मस्तूल**' उपन्यास का समय तो २४ घण्टे ही है किन्तु इसमें कथा २४ घण्टे की नहीं है। इसमें उपन्यास की नायिका रंजना एक अजनबी से जिसे वह अपना प्रेमी अकलंक समझती है अपने जीवन की सारी कथा १४ या १५ घण्टे दिन रात जगकर सुनाती रहती है । समय सम्बन्धी प्रयोग इसको केवल इसी दृष्टि से कहा जा सकता है कि तथा-कथित अकलंक और रंजना दोनों २४ घण्टे के लिए मिलते हैं। वह अपने मित्र पुरी से मिलने के लिये आता है और उसकी भेंट रंजना से हो जाती है। दूसरी अस्वाभाविकता यह लगती है कि कोई स्त्री अपने जीवन का नग्न चित्र इस रूप में किसी पुरुष के सामने सत्यनारायणी ढंग वे सुनाती जाए और वह चुप-चाप सुनता जाए । फिर भी उपन्यास में रंजना ने अपनी जीवन की जो कथा सुनाई है वह बड़ी महत्त्वपूर्ण है । नारी के साथ समाज जिस प्रकार का व्यवहार करता आया है उसका नग्न और यथार्थ चित्र उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

धूमकेतु : एक श्रुति

नरेश मेहता का दूसरा उपन्यास '**धूमकेतुः एकश्रुति**' एक दूसरे ही ढंग का उपन्यास है। इसके विषय में जो नवीनता है वह तो है ही किन्तु

इसका प्रयोग भी नया ही है। बाल्यकाल पर आधारित यह उपन्यास लिखा गया है। सूरदासने वात्सल्यरस का वर्णन हिन्दी साहित्य में अनूठे ढंग से किया है उसी तरह नरेश मेहता ने भी इस काल के प्रसंगों को मुक्तक रूप में, श्रुति खण्डों के रूप में एवं स्मृत्यालोक के रूप में पूर्ण संवेदना के साथ चित्रित किया है। सूरदास का काव्य भक्त द्वारा लिखा गया काव्य है, साथ ही उसमें भगवान कृष्ण के बालजीवन के प्रसंगों में माता पिता और गोप–गोपी के पक्षों की ओर से भी बालजीवन का वर्णन है जबकि नरेश मेहता का यह उपन्यास केवल बालक की स्मृतियों पर आधारित है। इस उपन्यास के आरम्भ में स्वयं उपन्यास कार ने इस उपन्यास के शिल्प के संबंध में स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है– 'प्रथम पुरुष शैली प्रयुक्त हुई है। जीवनी का भ्रम हो सकता है लेकिन यह उपन्यास है। 'मैं' व्यक्ति है, लेखक नहीं। भावनाओं की तीव्रता के लिए यह शैली अपनाई गई है ... दूसरे इसमें खण्डचित्र हैं। इसका कारण यह है कि शिशु सम्पूर्ण नहीं ग्रहणता वरन् वह खण्डों में ही देखता है। स्थितियों, व्यक्तियों और सम्बन्धों को सूत्रित करना बहुत बाद में सीखता है। इसलिए इसमें कथा होते हुए भी कथात्मकता सम्भवतः उतनी नहीं होगी। लेकिन कथात्मकता से ऊपर भी कला का एक स्वत्व होता है।'[१] इसमें बालजीवन के कुछ ऐसे प्रसंग भी हैं जिन्हें बालक ने देखा भी नहीं केवल सुना है ऐसे प्रसंगो का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुए उस खण्डचित्र के अन्त में पात्र ने अपना स्पष्टीकरण दे दिया है– 'मैं इस श्रुति का साक्षी भर हूँ, व्यक्ति का नहीं।'[२] यह प्रयोग अपने आप में अनूठा है।

परन्तु

साहित्य की अन्य विधाओंकी तुलना में उपन्यास में काफी स्वतंत्रता का उपयोग उपन्यासकारों ने किया है। अपने विकास में उपन्यास आज कविता, आख्यान, लोककथा, उपदेश, रूपक, नाटक, निबन्ध, वार्ता, पत्र, डायरी, संस्मरण यहां तक कि उद्धरण (डा. प्रभाकर माचवे ने इसका बहुत अधिक प्रयोग किया है) सभी तत्त्वों को संग्रहीत किए हुए हैं। उपन्यासकार जब जी चाहता है कविता लिख लेता है और इच्छा हुई तो

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति श्री नरेश मेहता- आरंभ में दिए गए स्पष्टीकरण वाले अंश से।

२. –वही–पृ. ६.

कहानी सुना दी। इससे न बन पड़ा तो संस्मरण है, डायरी है, पत्र है। तात्पर्य यह है कि अपने पात्र की मन:स्थिति को यथार्थ रूपसे प्रस्तुत करने के लिए उसे जिस रूपविधान के अपनाने से सुविधा होती है उसको वह बड़ी स्वतंत्रता से अपना रहा है। इस सम्बन्ध में डॉक्टर प्रभाकर माचवे ने बड़ी स्वतंत्रता बरती है। उनका 'परन्तु' उपन्यास "उद्धरण पद्धति" में लिखा गया उपन्यास है। उपन्यास के पात्र अध्ययन करने वाले हैं और वे अपनी रुचि के अनुसार विविधि विषयों की पुस्तकें पढ़ते समय विविध उद्धरण नोट करते हैं। इन उद्धरणों से पात्रों की मन:स्थिति समझने में सहायता मिलती है। उपन्यास का एक–चौथाई भाग उद्धरणों से ही भरा हुआ है। पात्रों का मनोवैज्ञानिक यथार्थ को समझाने की दृष्टि से ही, उनके चेतन प्रवाह को यथार्थ रूपसे अवगत कराने की दृष्टि से ही उपन्यासकार ने उद्धरणों को ज्यों का त्यों दे दिया है।

द्वाभा

प्रभाकर माचवे का दूसरा उपन्यास है। "द्वाभा भीएक प्रयोग ही है। इसमें निबन्ध, गद्यकाव्य, रेखाचित्र, डायरी पूर्वस्मृतियों की झांकियां, पत्र, पौराणिक कहानी, उद्धरण आदि सभी का प्रयोग खुल कर किया गया है। उपन्यास में दो ही पात्र प्रमुख हैं 'श्री' और 'आभा'। इन दोनों के चरित्र को बाह्य और आभ्यंतरिक रूप से स्पष्ट करने के लिये इन दोनों पात्रों से सम्बन्धित पात्रों का चरित्र भी उपन्यास में चित्रित है। श्री का सम्बन्ध अनेक स्त्रियों से है और आभा का सम्बन्ध अनेक पुरुषों से। आपस में पति-पत्नी होकर भी वे सुखी नहीं हैं। अन्त में 'आभा' अपने पति को सैनिटोरियम से बुलाती है। 'श्री' आता है किन्तु पहुँचने की गड़बड़ में अस्पताल के द्वार पर पहुंचने से पूर्व दुर्घटना के कारण मर जाता है और इसी तरह आभा भी अस्पताल में मर जाती है। उपन्यास का मूल उद्देश्य स्त्री पुरुषों के आपसी सम्बन्धों को व्यक्त करना है। लेखक रूढ़िगत नैतिकता का विरोधी है। वह स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों में अधिक उन्मुक्तता का हामी है। मानसिक स्वास्थ्य के लिये वह स्त्री पुरुषों को परस्पर सहयोग और उनके उन्मुक्त व्यवहार को तरजीह देता है।

आंचलिक प्रयोग

स्थानीय रंग और आंचलिकता को व्यक्त करने के लिये आंचलिक उपन्यास भी बहुत से लिखे गये हैं। फणीश्वरनाथ रेणु का "मैला आंचल"

उपन्यास इस दृष्टि से हिन्दी का पहला महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। यह पूर्णिया जिले के एक गांव को आधार बना कर लिखा गया उपन्यास है। जिसमें गांव की जिन्दगी का वैविध्यपूर्ण चित्र गांव की सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ चित्रित है। इसी तरह के और भी उपन्यास लिखे गए हैं। रेणु जी का ही दूसरा उपन्यास "**परती परिकथा**" है। इसी तरह डाक्टर लक्ष्मीनारायण लाल का '**बया का घोंसला और सांप**' तथा नागार्जुन का बाबा बटेसरनाथ उपन्यास है। नागार्जुन का **बलचनमा** भी इसी प्रकार का उपन्यास है। ये सभी गांव की जिन्दगी को लेकर लिखे गये हैं। **बाबा बटेसरनाथ** में शिल्प सम्बन्धी नया प्रयोग यह है कि कथा का अधिकांश भाग बटवृक्ष कहता जाता है। एक प्रकार से यह बटवृक्ष की आत्मकथा है। उपन्यासकार ने इस वृक्ष के माध्यम से ग्राम के १००–१५० वर्षों के लम्बे काल में गांव के जीवन में होने वाले परिवर्तन का संक्षिप्त विवरण दिया है। बटवृक्ष की आपबीती ही यह उपन्यास है। उदयशंकर भट्ट का '**सागर लहरें और मनुष्य**' भी बम्बई के पास के बरसोबा गांव के मछुहारों के जीवन की यथार्थ और स्थानीय विशेषताओं से युक्त झांकी प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है। बम्बइया हिन्दी का प्रयोग इसमें बड़ी कुशलता के साथ किया गया है।

खाली कुर्सी की आत्मा

श्री लक्ष्मीकांत वर्मा का '**खाली कुर्सी की आत्मा**' व्यंग्यप्रधान और प्रतीकात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास का शिल्प नया ही है। सारा उपन्यास कुर्सीके माध्यमसे कहा गया है। उपन्यास का मूल कथानक है चन्दनपुर रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम की टूटी जिन्दगियों को प्रकाश में लाना। रेलवे दुर्घटना के कारण स्टेशन का जीवन जितना अस्तव्यस्त हो जाता है उसी का यथार्थ वर्णन उपन्यास में किया गया है। स्टेशन के वेटिंग रूम में कुर्सी रखी हुई हैं। वह अपने वर्तमान के यथार्थ को देखते हुए अतीत को भी याद करती जाती है। एक प्रकार से अपने अतीत की पूर्ण संवेदना को अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अनुभव करती है। ऐसी स्थिति में उपन्यास को नया ही रूप ग्रहण करना पड़ा है। वेटिंग रूम एक ऐसा स्थान होता है जहां सभी अजनबी रहते हैं। इन अजनबियों का कुर्सी से पूरा परिचय नहीं है। अतः इस समाज का चित्र उपन्यास की पुरानी परम्परा के अनुसार प्रस्तुत करना संभव नहीं है। कुर्सी बेचारी या तो वेटिंग रूम में उपस्थित पात्रों की वेशभूषा को देख कर या उनके मुख के भावों को पढ़ कर या वे लोग

स्फुट रूप से जो चर्चाएं करते हैं उनको सुन कर ही उस समाज का परिचय प्राप्त कर सकती हैं। अतः उपन्यास में इसी पद्धति को अपनाया गया है। वहाँ पर उपस्थित पात्र कुछ ऐसे भी थे जिनका कुर्सी से पूरा पूरा परिचय था। ये सभी पात्र चन्दनपुर के ही थे। इन पात्रों का परिचय कुर्सी अलग रूप से अपनी आत्मकथा के रूप में सुनाती है। वेटिंग रूम की कथा वर्तमान यथार्थ है, और चन्दनपुर के पात्रों की कथाएँ अतीत की स्मृतियों को वर्तमान के यथार्थ से जोड़ते हुए उन्हें अर्थ प्रदान करती चलती है। एक प्रकार से उपन्यास वर्तमान के यथार्थ और अतीत के स्मृत्यालोक में झूलता चलता है। दूसरे शब्दों में अतीत वर्तमान यथार्थ को आलोकित करता जाता है। सारा उपन्यास इसी शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास की एक और विशेषता यह है कि यह बेजान चीजों और प्राणियों के माध्यम से कहा गया है। यद्यपि विशेष रूपसे यह कुर्सी की ही कथा है किन्तु उसे अन्य जानदार और बेजान चीजों से समय समय पर सहायता मिलती रहती है। जैसे लोहे के तीन खिलौने और लौह पुरुष, इसी तरह महिम के घर पर 'अधूरा आदमी' और 'कैक्टस का फूल' उसकी दो रचनाएं; अगम पंडित के घर पर अश्व और गाय, वेटिंग रूम में खटमल और दीमक सभी तो उससे बातचीत करते हैं, या आपस में कुछ कहते हैं जिसे कुर्सी सुन लेती है। इस तरह सारा उपन्यास कुर्सी जिन-जिन माध्यमों से जानती जाती है, सुनाती जाती है। अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' की तरह यह भी स्मृत्यालोक की पद्धति को अपनाकर लिखा गया उपन्यास है। इसकी एक और विशेषता यह है कि यह प्रतीकात्मक है। इस उपन्यास का नाम ही अपने आप में एक प्रतीक है। कुर्सी है और वह भी खाली और उसकी आत्मा भी है। उसने अपने परिचय में यह बात पहले ही स्पष्ट कर दी कि न तो वह पुल्लिंग है और न वह स्त्रीलिंग, वह तो न्यूट्रल मात्र है। इसी में उसने अपना पूरा परिचय दे दिया है। इसके साथ साथ एक और महत्त्वपूर्ण बात उसने यह बतलाई है कि उसके शरीर का नीलाम हो सकता है किन्तु उसकी आत्मा स्वतंत्र है। यही नहीं अन्त में जब कुर्सी जला दी जाती है तब भी उसकी आत्मा जीवित रहती है और अपनी संवेदना को पूर्ण क्षमता के साथ व्यक्त करते हुए कहती है कि वह जिन्दा है। आत्मा मर नहीं सकती, इसी तरह उसकी संवेदना भी मर नहीं सकती, । उसकी पीड़ा उसकी वेदना जीवित है। प्रतीक अपने आप में स्पष्ट हो गया है। '**खाली कुर्सी की आत्मा**' आज के युग में मानव की लघु हस्ती का परिचय करानेवाली आत्मा का प्रतीक है। जैसे कुर्सी खाली है, वैसे हीं आज का मानव भी अपने को खाली-खाली अनुभव कर रहा है जैसे कुर्सी का

नीलाम होता है उसी तरह आज का व्यक्ति भी अपने शरीर की रक्षा के लिए ही अपने को नीलाम कर रहा है। कुर्सी की आत्मा स्वतंत्र है, उसी तरह व्यक्ति की आत्मा भी स्वतंत्र है। कुर्सी के शरीर की दुर्गति होती है। उसी तरह आजके व्यक्तियों की भी समाज में दुर्गति हो रही है। मानवीय संवेदना को पूर्णतः आत्मसात् किए हुए कुर्सी की आत्मा जीवित है और अपने जीवन दर्शन को प्रस्तुत करते हुए कहती है कि सहना .. सहना .. और सहना... वास्तव में यह मानव के वर्तमान स्वरूप को समझाकर उसको उसकी स्थिति का बोध कराने के लिए ही वह अपना सन्देश अन्त में सुनाती है। उपन्यास का नामकरण इस दृष्टि से पूर्णतः सार्थक है।

सहयोगी उपन्यास

हिन्दी में सहयोगी उपन्यास भी लिखे गए हैं। राजेन्द्र यादव और मन्नू भंडारी का '**एक इंच मुस्कान**' दो लेखकों द्वारा लिखा गया सहयोगी उपन्यास है। '**ग्यारह सपनों का देश**' इससे भी बढ़ कर १० लेखकों द्वारा लिखा गया सहयोगी उपन्यास है। पहले यह अलग अलग अध्यायों में ज्ञानोदय में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ और बाद में वह पुस्तकाकार रूप में भी ज्ञानपीठ से प्रकाशित हो गया है। इस उपन्यास के लिखने वालों में पुराने और नये दोनों ही पीढ़ी के उपन्यासकार हैं। इसका प्रथम और अन्तिम अध्याय डाक्टर धर्मवीर भारती ने लिखा है और बाकी के क्रमशः सर्वश्री उदयशंकर भट्ट, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, इलाचन्द्र जोशी, राजेन्द्र यादव, मुद्राराक्षस, लक्ष्मीचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे और कृष्णा सोबती ने लिखे हैं। सभी लेखकों ने पात्रों को भिन्न-भिन्न व्यक्तित्वों के रूप में ढाला है। यद्यपि उपन्यास पूरा हो गया और काफी हद तक सफल है फिर भी लेखकों की अपनी अपनी शिकायतें रह गईं। शिकायत यह है कि उनके पात्रों को दूसरों ने समझा नहीं है। कुछ लेखकों ने तो उपन्यास की असफलता की घोषणा भी की है। जैसे रांगेय राघव, प्रभाकर माचवे आदि। रांगेय राघव के अनुसार--"शुरु के तीन सपने थे, बाकी दुःस्वप्न मेरे आगे उपन्यास ही समाप्त हो गया, क्योंकि उसमें कुछ भी स्वस्थ नहीं रहा।"[1] .. इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य बात यह है कि कलाकृतियों के सृजन में सृजनकर्त्ता की अपनी अपनी

---

१. ग्यारह सपनोंका देश – सं. लक्ष्मीचंद्र जैन – पृष्ठ २७५.

कलात्मक विशेषताएँ होती हैं, जो अन्य कलाकारों से मेल नहीं खाती। इसलिये सृजन का कार्य जब सहयोगी रूप में शुरू होता है तो उसमें व्यक्तित्वों की भिन्नता के कारण उपन्यास के समग्र रूप पर प्रभाव पड़ना आवश्यक हो जाता है। उपन्यास में पाये जाने वाले पात्रों के चरित्रों को किसी ने भी पूर्ण रूप से देखा नहीं था अतः समग्र व्यक्तित्व को जाने बिना ही उनका निर्वाह करना उनके लिये कठिन था या यह उनके लिये एक समस्या ही थी। फिर भी हर लेखक ने चरित्रों को अपने अपने आदर्श और पूर्व निर्धारित प्रतिबद्धता के आधार पर ढालने का प्रयत्न किया है। अपनी-अपनी कठिनाइयों को लेखकों ने अपने-अपने वक्तव्यों में व्यक्त किया है। जिन लेखकों ने अपनी अपनी शिकायत या कठिनाई व्यक्त की है, वह उपन्यास के अन्त में प्रकाशित है। इसे देख लेने से लेखकों की अपनी कठिनाइयां समझ में आ जाती हैं। इन सब के बावजूद उपन्यास की सफलता हम इस आधार पर मान सकते हैं कि सारे उपन्यास में एक ही पात्र ऐसा है जिस पर सभी उपन्यासकारों का ध्यान विशेष रूप से रहा है और वह है —— मीनल के व्यक्तित्व के निर्माण में ही हर लेखक ने अपनी-अपनी दृष्टि मीनल के व्यक्तित्व को प्रदान की है। शोभन की प्रायः सभी ने उपेक्षा की है—— भले ही उसका चरित्र मौन रूप से अन्य पात्रों के माध्यम से विकसित होता रहा है। रोहितराय की तो बड़ी दुर्गति हुई है और हरींन्द्र के आरंभिक आदर्श बम्बई में योगीराज बनने के बाद कुछ और हो गये हैं। गुप्ता तो कुन्तल के साथ व्यभिचार करने के बाद दिखाई नहीं देता। विपिन राजेन्द्र यादव वाले अंश में ही आता है। अन्त तक रहने वाले पात्रों में शोभन परिवार ही है। मीनल के चरित्र-चित्रण में ही लेखकों के व्यक्तित्व का योग देखकर सृजनकर्ताओं के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों को परखा जा सकता है। अपनी कमज़ोरियों के बावजूद उपन्यास बहुत हद तक सफल प्रयोग है।

इस तरह हम देखते हैं कि अनक प्रकार के नये प्रयोग उपन्यासों में हो रहे हैं। इनके आधार पर मानव जीवन के विविध पहलुओं पर विभिन्न दृष्टि-कोणों से प्रकाश डाला जा रहा है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से या कथारस की दृष्टि से उपन्यास आज उतने सशक्त नहीं लग रहे हैं। इसके कारण हैं। आजका उपन्यासकार यह मानता ही नहीं कि किसी के पूर्ण चरित्र को समझने में हम समर्थ हैं। हम केवल चरित्र के खण्डों को ही जानते हैं अतः खण्डों के रूप में ही उनका चित्रण करते हैं। जो नई दृष्टि उपन्यासों में अपनाई जा

रही है वह है मन के विभिन्न स्तरों के आधार पर उसके व्यक्तित्व का विश्लेषण करना और इसीलिये अब पात्रों का चरित्र-चित्रण चेतन स्तर वाला नहीं मिलता। हिन्दी उपन्यास साहित्य अब नई दिशा की ओर मोड़ ले रहा है। उसमें स्वस्थ सामाजिक प्रवृत्ति के साथ-साथ यथार्थ के नये स्तरों का विकास हो रहा है।

● ●

(सप्तसिन्धु, चण्डीगढ़, अप्रेल १९६६ में 'हिन्दी उपन्यास : नये प्रयोग' शीर्षक से प्रकाशित)
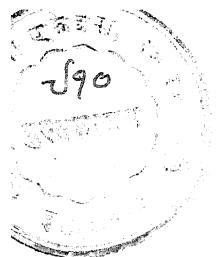
चारित्रिक प्रयोग

● चारित्रिक प्रयोग

परम्परा से मुक्ति

जीवन एक प्रयोगशाला है। मनुष्यके चरित्र का वास्तविक ज्ञान जीवन के आरम्भ में नहीं होता, उसे समझने के लिए उसकी जीवनी को जानना आवश्यक है। और यह जीवनी दो दिन की या चार दिन की या कुछ घण्टों की नहीं बल्कि उसके चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करनेवाली लम्बी जीवनी को जानना आवश्यक है। पात्रकी चारित्रिक विशेषताओं को बतलाने के लिए (चाहे कथाकार किसी पात्रका एक ही स्थलपर उल्लेख करे) कथाकार के सम्मुख पात्रका एक समग्र जीवन उसकी आँखों में या मस्तिष्क में होना आवश्यक है। किसी भी पात्र का चरित्र चित्रण उपन्यास में उसी समय सशक्त हो सकता है, जब कि उसकी चारित्रिक विशेषताओं के सम्बन्ध में कथाकार का ज्ञान पूर्ण एवं निर्णयात्मक हो। इसके लिए कथाकार को विस्तृत अनुभव होना चाहिए। केवल अनुभव मात्र ही नहीं बल्कि उन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के सम्बन्ध में उसके मनमें पक्की धारणाएँ होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में हीगल का कथन है—"कला में मनुष्य का चरित्र व्यक्त करते समय उस मनुष्य की सर्वसाधारण आध्यात्मिक दशा का प्रकाशित होना आवश्यक है। आध्यत्मिकता को जितना ही रूपके माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है, उतनीही कला सार्थक होती है। आध्यात्मिक शब्द से इस स्थान पर 'मनुष्यके अन्तरका समस्त भाव' अर्थ ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् प्रेम, वात्सल्य, वीरत्व, उत्साह तथा क्रोध आदिको ग्रहण करना चाहिए।"[1] पात्र का चरित्र चित्रण करने से पूर्व पात्र की आध्यात्मिक

१. सौंदर्य तत्त्व–डा. सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त (डा. आनंदप्रकाश दीक्षित)पृ. २७२

दशा का ज्ञान कथाकार को होना आवश्यक है। इस दृष्टि से आज हमें उपन्यासों में चरित्र नहीं मिलते। यह विशेषता स्वयं हीगल के ही शब्दों में प्राचीन कथानकों की है। वह कहता है -- "प्राचीन युग के चरित्रों में जिस प्रकारकी स्वतंत्रता पाई जाती है, आधुनिक युग के मनुष्यों में वैसी नहीं पाई जाती। वर्तमान युग के समस्त चरित्र समाज, रीतिनीति, नियम-कानून के द्वारा इस प्रकार जकड़े हुअे हैं कि उनके माध्यम से चिद्विलास की स्वतंत्रता की रक्षा करना कठिन है। इस कारण किसी आपत्ति के समय कला उसी चरित्र को अंकित करना चाहती है जो दुख के नि दारुण आक्रमण के बीच भी अपने को पराजित नहीं मानता। दुख के आक्रमण से शरीर का नाश हो सकता है, किन्तु उसके अन्तरात्मा की मर्यादा को तनिक भी हानि नहीं पहुँचती।"[1] पात्र की अन्तरात्मा का प्रकाश इस अर्थ में (हीगल के अर्थ में) आज के उपन्यासों के चरित्र में नही मिलता।

प्रश्न यह है कि आज के उपन्यासों में पात्रों का चरित्र चित्रण किस प्रकार हो रहा है ? इसी का समाधान देने की दृष्टि से यह लेख लिखने का प्रयास किया जा रहा है। आज के उपन्यासों में (प्रेमचन्दोत्तर लिखे गए उपन्यासों में) पात्रों का चरित्र प्रयोगात्मक रूप में भी मिल रहा है। मैं 'भी' इसलिए कह रहा हूं कि जब प्रेमचन्द की परंपरा के उपन्यास प्रेमचन्दजी के बाद भी लिखे गए हैं और उनमें चरित्र चित्रण प्रयोगात्मक रूप में नहीं है। हीगल ने अपने प्राचीन कथानकों की जो विशेषताएँ बतलाई वे प्रेमचंदजी में मिलती हैं और उनकी परंपरा में लिखे गए कुछ उपन्यासों में भी। किन्तु यह विषय से बाहर की बात होगी अत: प्रेमचन्दजीपर विस्तारपूर्वक न लिखकर आधुनिक उपन्यासों के चरित्र चित्रण के सम्बध में ही कहा जा रहा है।

व्यक्तित्व का बोध

हिन्दी उपन्यासों में प्रयोग हुए हैं। यह प्रयोग शैली अेवं शिल्प में जहाँ हुए हैं, वहाँ पात्रों के चित्रण में भी हुए हैं। कथानायक आज इस रूप में चित्रित हो रहे हैं कि उनके व्यक्तित्व का पूर्ण बोध नहीं होता। उनके व्यक्तित्व का पता लगाना अध्ययन का विषय हो गया है। इस अध्ययन के लिए हमें मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि से परिचित होना आवश्यक हो गया है। इनके आधार पर भी कथानायक का चरित्र स्पष्ट हो

१.- सौंदर्य तत्त्व-डॉ. सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त (अनु. डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित.) पृ. २७१

ही जायगा यह कहना कठिन है। क्योंकि एक ही पात्र बहुरूपिया बनाकर उपन्यास में चित्रित किया जा रहा ह। अत: पात्र के विभिन्न व्यक्तित्वों में से उसके असली व्यक्तित्व को जानने के लिए हमें समाज विज्ञान से परिचित होना आवश्यक हो गया है। और यदि जान भी लें तो निश्चित यही है ऐसा नहीं कहा जा सकता। यदि कह दें तो पात्र असली स्थिति में सामने आता हुआ कम मिलता है। पात्रों का व्यक्तित्व छद्म रूप में सामने आता है अत: कलाकार के (उपन्यास कार के) मूल आशय को या ध्वनि को समझने के लिए उसके असली व्यक्तित्व का उद्‌घाटन करना आवश्यक हो गया है। सार बात यह है कि आज उपन्यासों में कथा रस समाप्त होता जा रहा है और उसके स्थान पर अब उपन्यास अध्ययन का विषय हो रहा है। पात्रों का चित्रण अब आध्यात्मिक प्रकाश को दिखलाने के लिए नहीं बल्कि इस आध्यात्मिक प्रकाश की खोज करने के लिए किया जा रहा है। खोज की स्थिति में प्रयोग होते हैं और इसीलिए उपन्यासों में चरित्र चित्रण प्रयोगात्मक रूप में हो रहे हैं।

इस सम्बन्ध में रैल्फ फॉक्स ने लिखा है– 'व्यक्तित्व (उपन्यासों में) अब कहीं नहीं दिखाई देता, खुर्दबीन की स्लाइड पर चिपकी हुई रंगबिरंगी कतरनों के रूप में ही अब उसका अस्तित्व है। ये कतरनें बहुधा अत्यंत विचित्र, दिलचस्प या सुन्दर होती हैं, किन्तु वे जीवित स्त्री–पुरुष नहीं होते। व्यक्तित्व या चरित्र के विनाश के साथ, उसकी जगह पर औसत परिस्थितियों में औसत व्यक्ति को ला बिठाने, अथवा व्यक्तित्व के किसी एक पहलू को उसकी चेतना के एक अंश में यांत्रिक ढंग से अलग करके चित्रण करने के परिणामस्वरूप उपन्यास के ढाँचे का तथा उसके महाकाव्यात्मक गुण का भी विनाश हो गया है। मानव अब वह व्यक्तिगत इच्छाशक्ति न रहा जो अन्य इच्छाशक्तियों और व्यक्तित्वों के साथ द्वन्द्व–रत थी, कारण कि आज सभी द्वन्दों पर महान सामाजिक द्वन्द्व छा गए हैं जो आधुनिक जीवन को झंझोड़ और बदल रहे हैं। इसलिए, उपन्यासों में से द्वन्द्व भी गायब हो गया है और उसकी जगह आत्मा के भीतर संघर्षों यौन षड–यन्त्रों या हवाई विवादों ने ले ली है।'[१] रैल्फ फॉक्स का यह कथन हिन्दी उपन्यास को लक्ष्य में रखकर कहा हुआ कथन नहीं है। रैल्फ फॉक्स ने अंगरेजी

१. उपन्यास और लोकजीवन–रैल्फ फॉक्स– (अनुवादक : नरोत्तम नागर) पृ. ५० और ५१.

उपन्यासकारों को–विशेष रूप से हक्सले, डी. एच. लारेन्स या जेम्स जॉयस–लक्ष्य में रखकर यह बात कही है। हिन्दी उपन्यासों में भी अभी पूर्णत: नहीं तो अंशत: यह प्रवृत्ति मिल रही हैं। इस प्रवृत्ति को दोष माना जाय या गुण माना जाय यह अलग प्रश्न है किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि यह प्रवृत्ति उपन्यासों में (चरित्र चित्रण के सम्बन्ध में) मिल रही है।

चरित्र चित्रण की यह प्रवृत्ति उपन्यासकारों की कोरी कल्पना नहीं ह और न ही उनका नया आविष्कार है। यह तो आधुनिक जीवन से उत्पन्न अवस्था है। इसे स्वयं हीगल ने एवं रेल्फ फॉक्स ने स्वीकार किया है। दोनों ने ही ये बातें विभिन्न संदर्भों में स्वीकार की हैं। आज जब प्रयोगों का बोलबाला है तो कथाकार प्रयोग क्यों न करे? इन प्रयोगों में सफल होना आवश्यक क्यों मान लिया जाय? अब तक चरित्र चित्रण ऐसे किए जाते थे जिसमें में मानव आध्यात्मिक शक्तियों से प्रेरित रहता था। उस अवस्था में अंतरात्मा में प्रकाश होता था। इस प्रकाश से पात्र कठिन से कठिन विपत्ति में भी बल ग्रहण करता था। किन्तु अब स्थिति यह है कि पात्र को आध्यात्मिक बल प्राप्त नहीं है। आज का पात्र उस बल को पाने के लिए हाथ पाँव मार रहा है। वह स्वयं अपने आपको परिस्थिति के अनुकूल बनाने में प्रयत्नशील है। स्थिति पर विजय पाने का बल अब पात्रों में कहाँ? अब तो स्थिति पात्र को बदलने के लिए विवश कर रही है। नये परिवेश में, नये संदर्भों में, नये वातावरण में एवं नये आलोक में पात्र अपने आपको प्रयोग की स्थिति में अनुभव कर रहे हैं। प्रयोग की स्थिति अनास्था की स्थिति (एक प्रकार से) होती है। प्रयोगों के द्वारा हम सत्य के निकट पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। सच्चाई यह है कि बदली हुई परिस्थितियों में मानवीय मूल्यों में अन्तर हो गया है। पुराने मूल्यों को लेकर नई परिस्थितियों में जीना कठिन है।ऐसी स्थिति में आज नये मूल्यों की खोज हो रही है। ये खोज प्रयोगात्मक रूप में ही है। इसीलिए पात्रों का चरित्र चित्रण भी आज के कथाकार उसी रूप में कर रहे हैं।

अजनबी स्थिति

प्रयोग संभावनाओं के आधार पर होते हैं। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को संपर्क में आने पर जानता है। 'आदमी जानिए बसे और सोना जानिए कसे' कहावत ही है। समाज में व्यक्ति सदैव अन्य व्यक्तियों को जानने का प्रयत्न करता रहता है। इसी से उसके अनुभव के क्षेत्र में वृद्धि होती है और

वह अपने आपको समाज के अनुकूल बनाने का प्रयत्न कर सकता है। यदि व्यक्ति का अनुभव समृद्ध हो जाय या प्रौढ़ हो जाय तो वह औरों को अपने अनुकूल बनाना भी सीख जाता है। यह गुण व्यक्तिसापेक्ष है। इस दृष्टि से चरित्र के संबंध में भी जानकारी व्यक्ति के संपर्क में रहकर ही की जा सकती है। आज परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बदल गई हैं (औद्योगिकरण के कारण एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण) कि सभ्य व्यक्तियों का जीवन व्यस्त एवं जटिल होता जा रहा है (यहाँ सभ्य से तात्पर्य नागरिक जीवन से है) उसके पास अन्य व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करने के लिए समय नहीं। अतः वह अपने बहुत से साथियों के व्यक्तिगत जीवन से अपरिचित रहता है। इस स्थिति में उसका ज्ञान अन्य साथियों के सम्बन्ध में गहन नहीं होता। हम अपने गांव के लोगों को जितनी अच्छी तरह से जानते हैं, उतनी अच्छी तरह से किसी दूसरे गांव के व्यक्ति को नहीं। इसी तरह प्रांतीय स्तर पर, सांस्कृतिक स्तर, सामाजिक स्तर पर, राष्ट्रीय स्तर पर एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्ति व्यक्ति में भेद है। इस भेद को दूर नहीं किया जा सकता। यह तो रहेगा ही। प्रयत्न इस बात का हो रहा है कि सभी स्तरों पर व्यक्ति एक दूसरे से परिचित होने के लिए लालायित हो। उसकी यह आकांक्षा उसकी आवश्यकता के आधार पर समझी जा सकती है। आज व्यक्ति को अपने बीच नहीं, अजनबियों के बीच भी रहना है। ऐसे व्यक्तियों के बीच भी जिनकी भाषा संस्कृति एवं नैतिक मान्यताएं उससे भिन्न हैं। अतः व्यक्ति का चरित्र इन अजनबियों के बीच कैसा होगा ? वह उन्हें बिना समझे उनके साथ कैसा व्यवहार करेगा ? इस दृष्टि से विचार करना आवश्यक हो गया है। इस दृष्टि से आज के उपन्यासों में चरित्रों को नया मोड़ मिल रहा है। अजनबियों के बीच रहकर अजनबियों का चरित्र उसके दैनिक व्यवहारों को देखकर, उसकी मान्यताओं को परखकर, समझने का प्रयत्न किया जा सकता है।

वे दिन

निर्मल वर्मा का '**वे दिन**' उपन्यास में अजनबियों के बीच गुजारा हुआ जीवन चित्रित है। एक भारतीय विद्यार्थी प्राग के हास्टेल में रहता है। क्रिसमस की छुट्टियों में उसे वहाँ की टूरिस्ट एजेन्सी से दुभाषिए का काम मिलता है। आस्ट्रिया की (विएना की) एक महिलाको जो जर्मन एवं अंग्रेजी जानती है (चेक नहीं जानती) प्राग में घूमते समय चेक एवं अंगरेजी भाषा जाननेवाले की आवश्यकता होती है। यही काम कथानायक करता है। वह

तीन दिन तक उसके साथ गाईड के रूप में दुभाषिअे का काम करता है । इन तीन दिनों के अनुभव को, वह स्वयं होस्टल में उसे टूरिस्ट एजन्सी से फोन मिलने से उस महिला को बिदा करने तक की कथा को बड़े विस्तार से संवेदनमयी भाषा में सुनाता है । तीन दिन के बाद महिला विएना चली जाती है और उपन्यास समाप्त हो जाता है । यहाँ पर दोनों ही पात्र एक दूसरे के चरित्र को नहीं जानते। वे दैनिक व्यवहारों के आधार पर, जिनमें उनकी नैतिक मान्यताएँ भी व्यक्त होती रहती हैं, एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करते हैं। इस दिशा में महिला अधिक आयु की होने के नाते अधिक अनुभवी रहती हैं और वह अपने इसी थोड़े से संपर्क के आधार पर यह समझ लेती है कि शिकार अच्छा है, जब कि कथानायक महिला को समझने की स्थिति में पहुँचे तब तक तो विलग होने का समय आ जाता हैं । इन तीन दिनों के अनुभव को जिसमें दोनों ही पात्र एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करते रहते हैं, लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ संवेदनमयी भाषा में चित्रित्र किया हैं। क्षणों का विस्तार अनुभवों के रूप में बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया गया है। दोनों पात्रों के चरित्र की सीधी एवं स्पष्ट रेखाएँ लेखक ने नहीं खींची है और उसका खींचना भी संगत न होता क्योंकि दोनों ही पात्र प्रयोगावस्था में हैं, एक दूसरे को समझने की दृष्टि से । पूरे उपन्यास को पढ़ जाने के बाद अब यदि यह पूछा जाय कि आस्ट्रिया की महिला का (रायना का) चरित्र कैसा है या कथानायक का चरित्र कैसा है तो इसका उत्तर पूर्णतः नहीं बतलाया जा सकता । स्वयं उपन्यासकार ने दोनों के पूर्व जीवन पर (उन तीन दिनों को छोड़कर) विस्तृत प्रकाश नहीं डाला। कथाकार ने उनके जीवन से संबंधित तथ्यों की मोटी जानकारी भी नहीं दी । अतः पाठक को प्राप्त तथ्यों के आधारपर ही (उन तीन दिनों के जीवन के आधार पर ही) उनके चरित्र का अनुमान करना पडता है । 'वे दिन' उपन्यास का शीर्षक है। इसकी व्याख्या उपन्यास के जीवन को दृष्टि में रखते हुए यों की जा सकती है । (१) उन तीन दिनों का जीवन, जो कथानायक और रायना के बीच प्राग में प्रत्यक्ष रूप में गुजरा (२) यह जीवन उन्हीं तीन दिनों का रायना की दृष्टि से पुराने जीवन की स्मृति रूप में-यादें ताजा रखने की दृष्टि से-युद्धकाल के आवेगों को जीवित रखने की दृष्टि से-जिया हुआ जीवन । इस दृष्टि से उपन्यास में चित्रित प्रत्यक्ष जीवन महिला के अतीत जीवन की प्रतिच्छाया मात्र है और इस प्रतिच्छाया को देखकर पाठक से यह आशा की जा रही है कि वह उस महिला के मूल जीवन को उसकी प्रतिकृति के आधार पर पहचान ले। सच तो यह है कि इस अर्थ में प्रत्यक्ष रूप में

दिखलाए हुए तीन दिनों का जीवन " वे दिन ", महिला के पुराने "वे दिन" की छाया मात्र है । (३) एक तीसरे अर्थ में "वे दिन ' नायक की दृष्टि से स्मृति रूप में जीवित जीवन है, वह उन तीन दिनों के जीवन को भूलता नहीं। उपन्यास की शैली में तीनों पद्धतियोंका संमिश्रण है, जिनमें प्रथम प्रधान है । यहाँ इस प्रसंग को विस्तार देना नहीं है । चरित्र चित्रण की बात कहनी है और इस दृष्टि से देखें तो पात्रों का चरित्र चित्रण कथाकार ने उपन्यास में प्रयोगात्मक रूप में किया है यह बात स्वीकार करनी पड़ती है ।

शह और मात

कामायनी की पंक्तियाँ हैं-"मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ, भुज लता फँसा कर नर तरु से झोले सी झोंका खाती हूँ " यह बात नारी के संदर्भ में प्रसादजी ने कही है। नारी क्यों फँसती है ? इसलिए कि वह पुरुष के चरित्र को पूर्णतः नहीं जानती। वह पुरुष का अध्ययन करते करते स्वयं अध्ययन का पात्र हो जाती है। पुरुष एवं स्त्री दोनों में जो विपरीत व्यक्तित्व का अध्ययन अच्छी तरह कर लेगा वह उससे उतना ही लाभ उठा लेगा। प्रसादजी ने नारी की ओर से यह कहा कि वह पुरुष का अध्ययन करने के स्थान पर स्वयं पुरुष के अध्ययन का विषय हो जाती है। हम औरों से लाभ प्राप्त करने जाते हैं किन्तु वास्तव में होता यह है कि और लोग ही हम से लाभ उठा लेते हैं। उपन्यासों में ऐसे चरित्र भी मिलते हैं, जो एक दूसरे के चरित्र को समझने का प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रयत्न में कौन हारा और कौन जीता ? यह पाठकों पर छोड़ दिया गया है। दोनों ही पात्र अपनी ओर से पूर्णतः प्रयत्नशील दिखलाए गए हैं। राजेन्द्र यादव का उपन्यास '**शह और मात**' इसी ढ़ंग का उपन्यास है। यह उपन्यास डायरी शैली में लिखा गया है। प्रमुख रूप से सुजाता की डायरी है, अंत में उदय की डायरी के भी कुछ पृष्ठ हैं। प्रथमतः राजेन्द्र यादव की डायरी के भी कुछ पृष्ठ हैं। डायरी में व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन होता है यों कहिए कि पात्र का सही चरित्र इसमें अंकित होता है। पात्रों के व्यक्तित्व को समझने के लिए उसके चरित्र को जानने के लिए–डायरी सहायक होती है। इस माध्यम से एक पात्र दूसरे पात्र को किस रूप में समझ रहा है, उसके प्रभाव (इम्प्रेशन्स) अन्य पात्र के सम्बन्ध में क्या हैं ? आदि का ज्ञान डायरी देखने से हो जाता है। और फिर इस शैली से कथाकार व्यक्तिगत प्रभावों तक ही सीमित रह सकता है (अवान्तर प्रसंगों से बच गया है) यही नहीं इससे उपन्यास रोचक भी हो गया है। उपन्यास के दोनों ही पात्र 'सुजाता' एवं 'उदय' लेखिका एवं

लेखक है। दोनों ही एक दूसरे के व्यक्तित्व को जानने के लिए प्रयत्नशील हैं दोनों में से यह बात दोनों पर प्रकट नहीं होती कि वे एक दूसरे का अध्ययन कर रहे हैं। इसका पता अंत में उस समय चलता है, जब उदय की डायरी सामने आती है। उदय अपनी दृष्टि में स्वयं को सफल मानता है जब कि सुजाता की डायरी के अन्तिम पृष्ठ को पढ़ने से पता लगता है कि मात उसी ने दी है। अपर्णा की कथा बीच में आ गई, जिसको रचकर दोनों ही एक दूसरे का अध्ययन करते रहते हैं। बात यह है कि यहाँ पात्रों का चरित्र चित्रण प्रयोगात्मक रूप में है। दोनों ही पात्र एक दूसरे को अपने अध्ययन का आधार बना कर प्रयोग कर रहे हैं। चरित्र के इस अध्ययन में कलाकार की वास्तविकता कितनी होती है इस सम्बन्ध में उदय अपनी डायरी में कहता है– 'मुझे लगता है कि कलाकार सब कुछ हो सकता है–खुद वह 'आदमी' हो ही नहीं सकता। हाँ वह 'आदमी' का दूत होता हो तो, हो। वह 'आदमी' के रूप का वर्णन कर सकता है, उसकी यश गाथा गा सकता है, और 'आदमी' के नाम पर हर उल्टा–सीधा कर सकता है।'[1] यह स्थिति कलाकार स्वयं स्वीकार कर लेता है। यह तो उपन्यास के पात्र की बात हुई। राजेन्द्र यादव ने (इस उपन्यास के लेखक ने) भी वस्तुस्थिति को स्वीकार करते हुऐ लिखा है। 'क्या कहानी उपन्यास का लेखक लेखन–सामग्री से भरा निर्जीव बक्साही है? उसका काम 'भीतर भरे हुए' का केवल 'उलीचना' और 'उँडेलना' ही है? लेखक उसकी भी चिन्तन प्रक्रिया में वह रेडो–मेड विचार पाठक को दे ही नहीं, खुद मथे और पाये भी? हो सकता है इस दृष्टि से मैंने अपने को पात्रों के रूप में बाँटकर मुखर चिन्तन 'लाउड थिंकिंग' ही किया हो और लिखने के दौरान में पात्रों के साथ साथ या उनकी मार्फत अपनी उलझनें और समस्याएँ सुलझाने की कोशिश भी की हो'[2] लेखक का यह कथन प्रयोगात्मक स्थिति का ज्ञान करानेवाला है। लेखक को अपने सत्य पर विश्वास कहाँ है? वह अपने को भी पात्रों के बीच बाँट रहा है और उपन्यास का पात्र भी कलाकार के रूप में यह अनुभव कर रहा है कि वह और सब कुछ हो सकता है 'आदमी' नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में पात्रों का चरित्र चित्रण प्रयोगात्मकही हो सकता है। इस प्रयोग की उपयोगिता यही है कि 'आदमी' को पहचानने की एक दिशा मिलती है।

---

१. शह और मात–राजेन्द्र यादव–पृ. २८९.
२. शह और मात– राजेंद्र यादव पृ. १२.

ग्यारह सपनों का देश

हिन्दी में सहयोगी उपन्यास भी लिखे गए हैं। इन उपन्यासों के पात्रों के चरित्र चित्रण के सम्बध में यदि विचार करें तो ये प्रयोगात्मक ही मिलेंगे। क्यों ? इसलिए कि किसी भी लेखकने पात्र को समग्र रूप से देखा ही नहीं तो वे किसी पात्र का चरित्र कैसे बतला सकेंगे ? यह तो ऐसे ही हुआ कि एक एक पात्र को (उपन्यास में पाए जाने वाले) विभिन्न कलाकारों के हाथों से गुजरना पड़ता है। आगे आनेवाला कलाकार पीछेवाले कलाकार की दृष्टि को ध्यान में रखकर ही आगे बढ़ता हैं। अतः पीछे कहे हुए कथन के लिए आगे आनेवाला प्रतिबद्ध हैं। इस प्रकार के चरित्र 'ग्यारह सपनों का देश' उपन्यास में मिलेंगे। कलाकार की कठिनाइयों को उपन्यास के अन्त में (उन्ही के शब्दों में) प्रकाशित किया गया है। मुद्राराक्षसने लिखा है– 'इस उपन्यास की सारी दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सम्भावना में पहले गुप्ता और रोहित बटोरने लगते हैं पर बाद में वे माध्यम भर रह जाते हैं, वास्तविक तुला मीनल ही रह जाती है और कुछ अंशो में शोभना। राजेंद्र यादव ने मीनल को एक वर्ग की प्रतिनिधि माना है जिसमें बड़ी उम्र की अविवाहिता पढ़ी लिखी लड़कियाँ हैं पर मीनल व्यक्तित्व न होकर एक समस्या है, एक समाज मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि है।''[1] रांगेय राघव ने लिखा 'मैंने मीनल को एक उदात्त नारी बनाया था, यथार्थ में एक जीवन्त नारी, आप लोगों ने उसके ऊपर हमला किया, उसे नीचे गिरा दिया ... ... और मीनल एक प्रदीप्त नारी थी उसमें कितना पवित्र ममत्व था, कितना स्वाभिमान था। कहाँ मिली, फिर कहीं नहीं। मेरी मीनल में व्यक्तित्व था, वह औरों के लिए समस्या बन गया... ... '[2] लेखकों के ये कथन स्वयं कह रहे हैं कि पात्रों को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा गया।

एक इंच मुस्कान

इस तुलना में दो लेखकों द्वारा लिखा गया उपन्यास '**एक इंच मुस्कान**' (राजेन्द्र यादव एवं मन्नू भंडारी) अधिक सफल है। प्रयोग होने पर भी चरित्र चित्रण (प्रयोगात्मक रूप में तो है) स्पष्ट है। उपन्यास में

---

१. ग्यारह सपनों का देश—(दस लेखकों द्वारा)—पृ. २५९.

२. —वही—पृ. २७४.

अमर, अमला एवं रंजना प्रमुख पात्र हैं। इसमें जिस प्रकार का जीवन है और जिन समस्याओं का चित्रण इसमें हुआ है, वे आधुनिक जीवन की हैं। तथाकथित सभ्य समाज में डोलनेवाले वर्ग का चित्र अमला और उसके वर्ग के माध्यम से दिया गया है, इसका प्रतिनिधि पात्र कैलाश है। आधुनिक युग में प्रेम विवाह हो रहे हैं। इन विवाहों के पूर्व पक्ष एवं उत्तर पक्ष में क्या होता है, यह अमर एवं रंजना के माध्यम से बतलाया गया है। पूर्व पक्ष रोमांटिक होता है, एवं उत्तर पक्ष व्यावहारिक। आधुनिक जीवन के ढाँचे में प्रेम–विवाह आवश्यक तो समझा जा रहा है किन्तु उसमें दृढ़ता नहीं है, इसीलिए पात्र स्वयं परेशान हैं। व्यावहारिकता की सीमा यहाँ तक पहुँच जाती है कि अमर रंजना का गर्भ गिरवा देता है। रंजना की आन्तरिक वेदना रंजना स्वयं ही जानती है। विवाह के बाद उसने अमर से प्यार पाया ही नहीं। जूहू की भेंट से पूर्व का अमर उसे नहीं मिलता। यह अमर दूसरा ही अमर है। वैयक्तिक आदर्श और वैयक्तिक स्वप्न यथार्थ की भूमि पर कितने निरर्थक रह जाते हैं और इससे मानसिक यातना कितनी हो सकती है, यह इस उपन्यास में दिखलाया गया है। व्यक्ति जब यथार्थ की धरती पर आते समय अपने व्यक्तित्व को टटोलता है, तो उसे यह अनुभव होता है कि वह सही रूप में जी नहीं सकता। इस स्थिति में उसे अपने व्यक्तित्व को बाँटना पड़ता है। अमला का जीवन उपन्यास में इसी प्रकार का है। उसका वास्तविक रूप पशु सा है किन्तु बाहर से मुस्कान (एक इंच मुस्कान, उपन्यास का नाम है) के आवरण में वह मायाविनी, आकर्षक, सभ्य एवं सुसंस्कृत प्रतीत होती है। अपनी शक्ति पर उसे पूर्ण विश्वास है। सारे उपन्यास में नायक अमर पर वह (अमला) छायी रहती है किन्तु वह तो उसके मुस्कान वाला रूप था। अंत में जब उसके वास्तविक रूप का पता चल जाता है तो वह उस से (अमर से) हमेशा के लिए बिदा ले लेती है और फिर तो उपन्यास का अन्त हो जाता है। अमला अमर से कहती है– ' मै जैसी हूँ, जो कुछ सोचती हूँ, जो कुछ चाहती हूँ, वह सब प्रकट कर दूँ तो शायद तुम मुझसे नफरत करने लगो। कवच डालकर जीना कितना कष्टकर होता है, जानते हो ? जो जितने बड़े कवच डालकर रहता है, समझ लो कि वह उतना ही दुखी है, रात–दिन वह घुटता है, मुक्ति के लिए छटपटाता है। दुनिया को भरमाने के लिए जो कवच ओढ़े जाते हैं, उसमें आदमी पहले स्वयं को भरमाता है और जब..." (पृ. २९१-२९२)अमला के जीवन में कैलाश, कपूर आदि पात्र आते हैं और चले जाते हैं। वह फिर नये को खोज लेती है। रंजना अपनी भाभी को पत्र लिखते हुए लिखती है-"आप तो जानती

ही है कि लेखन अमर की सब से बड़ी कमजोरी है । इसन अमर को वहीं से पकड़ा है । न जाने कितने व्यक्तियों के जीवन से यह खेल चुकी है । अब अमर पर इसकी कृपादृष्टि है । पति ने इसे त्यागा और यह पुरुषों के साथ खिलवाड़ करके मानो इसका प्रतिकार ले रही है। अपनी इस मुस्कान की जादू से न जाने कितनों को बरबाद करेगी । सब कुछ बहुत स्वाभाविक भी है । जब मनुष्य स्वयं बरबाद होता है तो चाहता है कि सारी दुनिया को बरबाद कर डाले-- फिर स्त्रियों में तो यह भावना और भी प्रबल होती है "(पृ. २४५) दो लेखकों द्वारा लिखा होने पर भी कथानक एवं चरित्र चित्रण की दृष्टि से उपन्यास सफल ही माना जायगा । इस प्रयोग की सब से बड़ी विशेषता यह है कि पुरुष को पुरुष ने संभाला और स्त्री को स्त्री ने। यही नहीं दोनों में लिखते समय अपने अपने पात्रों को संभालने की कोशिश भी की है । ये उपन्यास के अंत में दिए गए दोनों के वक्तव्यों से ज्ञात होता है। एक दूसरे के चरित्र को संभालते हुए चलना, चरित्र के साथ प्रयोग करना ही है ।

अलगाव की समस्या

आधुनिक उपन्यासों के नायकों के चरित्र का अध्ययन करें तो उनमें प्रायः नायक अलगाव की समस्या से जूझते हुए दिखाए गए हैं । अलगाव की यह समस्या अत्याधुनिक नहीं है किन्तु उपन्यास जैसे जैसे आत्मकेन्द्रित होते जा रहे हैं, वैसे वैसे यह समस्या व्यापक रूप में अभिव्यक्त (कथानायकों में) होती दिखाई दे रही है। यहाँ तक कि उपन्यासों के नामकरण पर भी थोड़ी गहराई से विचार करें तो यह बात अपने आप स्पष्ट हो जाएगी । उदाहरण के लिए 'अन्धेरे बन्द कमरे' (मोहन राकेश)' 'दो एकान्त' (नरेश मेहता), 'अपने अपने अजनबी '(अज्ञेय), 'एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज' (लक्ष्मीकांत वर्मा, 'उखड़े हुऐ लोग' (राजेन्द्र यादव) आदि आदि । जैसे इनका नामकरण हुआ है, वैसा ही जीवन उपन्यासों में चित्रित हुआ हैं। प्रस्तुत में कथानायकों के संघर्ष का मूल आधार बतलाते हुए समस्या (अलगाव-की समस्या) जिससे वे बचना चाहते हैं किन्तु बच नहीं सकते अतः उन्हें जूझना पड़ता है, टूटना पड़ता है, बिखरना पड़ता है और सबसे बढ़कर संदर्भहीन होना पड़ता है और ऐसा होने में उनकी मानवीय संवेदना कराह कराह कर जो कुछ कहती है; उसका निरूपण करने का प्रयास किया जा रहा है।

अलगाव की समस्या क्या है ? इसका उत्तर सरल शब्दों में और कम शब्दों में यों होगा--'मूल्यों की विसंगति' को समस्या । इसी बात को विस्तार

के साथ इस प्रकार कहा जा सकता है। व्यक्ति के विचार (जिन पर व्यक्ति-की आस्था है और जिनके आधार पर व्यक्ति का दृष्टिकोण व्यक्त होता है) व्यक्ति के मूल्य हैं। इसी तरह सामाजिक मूल्य भी हैं (जीवन दर्शन सम्बन्धी सामाजिक मान्यताएँ एवं विचार जिनका सम्बन्ध प्रायः परम्परा और ऐति-हासिक संदर्भों से होता है)। जब इन मूल्यों में विसंगति होती है अर्थात् व्यक्ति सामाजिक मूल्यों को स्वीकार नहीं करता और अपने निजी मूल्यों की स्वीकृति (सामाज द्ववारा) के लिए प्रयत्न करता है तो उसे संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। उपन्यासों में भी इसकी अभिव्यक्ति हुई है। किन्तु संघर्ष या द्वन्द्व अलगाव का कारण होते हुए भी अलगाव नहीं है। अलगाव का प्रश्न उस समय उपस्थित होता है जब व्यक्ति समाज में अपने को बेगाना और अजनबी अनुभव करने लगता है या यों कहिए कि विश्वास और आस्था के सारे सहारे छूट जाते हैं। यह दशा बड़ी खतरनाक होती है। मूल्यों की विसंगति में जब व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है कि उसके मूल्यों का (निजी मूल्यों का) समाज में कोई आदर नहीं होता, साथ ही जब वह यह अनुभव करता है कि सामाजिक और राज-नीतिक जीवन में अराजकता व्याप्त है या जब व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर पाता और उसे जीवन निरर्थक लगने लगता है तो ऐसी स्थिति में 'अलगाव' की समस्या से जूझता है। आधुनिक उपन्यासों में इसकी अभि-व्यक्ति हुई है।

अंधेरे बंद कमरे

समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार है और परिवार भी अब पति-पत्नी के दायरे में सीमित होते जा रहे हैं। पति पत्नी का संबंध भी अब टूटता हुआ दिखाई दे रहा है। भारतीय समाज में अभी तलाक की चर्चा विरल सी है किन्तु पाश्चात्य प्रभावों के कारण अब स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में अंतर आता जा रहा है। नागरिक जीवन में, शिक्षित समाज में या यों कहिए कि नई सभ्यता से रंगे जनजीवन में पारिवारिक सदस्यों में अधिकार बोध की भावना बढ़ती जा रही है। फलतः पारिवारिक सदस्यों में संघर्ष हो रहा है। इसीलिए परिवार टूटकर सीमित होते जा रहे हैं। टूटने की सीमा पति-पत्नी तक पहुँच गई है। **अन्धेरे बंद कमरे** उपन्यास में एक ऐसे दम्पति का जीवन चित्रित है जो टूटने की सीमा पर है। टूटते टूटते जुड़ने का प्रयास भी होता है किन्तु जुड़ नहीं पाता। इस विवशता में दोनों ओर की महत्त्वाकांक्षाओं का दोनों ओर की विवशताओंका, दोनों ओर की व्यक्तिगत संवेदनाओं का चित्र

एक पत्रकार (मधुसूदन) आत्मकथात्मक शैली में कहता है। हरबंस और नीलिमा पति–पत्नी हैं। उपन्यास में आदर्श चरित्र हरबंस का ही है। वह नीलिमा में पूर्ण आस्था रखता है किन्तु उसकी अनुचित फरमाइशों और उसके कलाप्रेम और उससे संबंधित कलासमाज से वह बहुत परेशान रहता है। अन्त तक वह समायोजन (अडजस्ट) करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। नीलिमा का हृदय यद्यपि शुद्ध है फिर भी वह कलाजगत में पाई जानेवाली राजनीति को नहीं समझती और इसीलिए वह सारा दोष हरबंस को देती रहती है। एक महत्त्वाकांक्षी स्त्री के रूप में उसका चरित्र चित्रित हुआ है। उसे नृत्य का बड़ा शौक है। वह साधना करती है। दक्षिण पहुँच कर भरत नाट्यम का अभ्यास करती है। विलायत में भी पति का साथ छोड़कर उमादत्त की ट्रिप के साथ घूमती रहती है और जब भारत लौटकर आती है तो अपना 'शो' देती है। उस 'शो' से सम्बन्धित राजनीति को वह नहीं समझ पाती। हरबंस जब उसे समझाता है तो द्वंद्व की पराकाष्ठा हो जाती है और वह घर छोड़कर भाग जाती है दोनों की विवशता उन्हीं के शब्दों में देखिए। हरबंस की विवशता–'इतने बरसों से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि न वह मुझे कुछ दे सकती है और न मैं उसे कुछ दे सकता हूँ। इसीलिए उसने अलग करने का निश्चय कर लिया है, यह अच्छा ही है। नहीं तो वह चखचख जिन्दगी भर बनी रहती। वह दस साल पहले जो कुछ मुझे नहीं दे सकती थी, वह आज भी नहीं दे सकती और दस साल और भी गुजर जाते, तो भी न दे पाती' (पृ. ५५२) इसी तरह नीलिमा की विवशता– 'विवाहित जीवन में दो व्यक्तियों का शारीरिक सम्बन्ध ही सब कुछ नहीं होता, और मैं जानती हूँ कि मैं उसके लिए एक शारीरिक साधन से ज्यादा कुछ नहीं हूँ। इस आभास के कारण मुझे अपने आप कितना व्यर्थ और खाली खाली लगता है, यह मैं कभी किसी को ठीक बता ही नहीं सकती। हम लोगों में एक दूसरे के प्रति जो उत्साह होना चाहिए, वह उत्साह भी धीरे धीरे समाप्त हो गया है। हम लोग पति–पत्नी हैं, परंतु पति–पत्नी में जो चीज होती है, हममें कब की समाप्त हो चुकी है।' (पृ. ५२८) पति–पत्नी के दाम्पत्य जीवन के टूटने की इस कथा के साथ लेखक ने वर्तमान जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं, स्थितियों तथा तत्संबंधी जीवन मूल्यों के विघटन का भी मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। व्यक्ति सामाजिक प्राणी होते हुए वह कैसे असामाजिक होता जा रहा है और इसकी पीड़ा कितनी तीव्र होती है, इसका आभास इस उपन्यास को पढ़ने से हो जायगा। पत्रकार मधुसूदन सुषमा के कॉन्सीट्यूशन हाउस में उसके (सुषमा के) हलकी रोशनी जला देने पर यह अनुभव करता

है–' क्या वास्तव में अंधेरा जिस तरह की आत्मीयता को जन्म देता है, वह उजाले में नहीं बन सकती ? अंधेरे में शायद इन्सान दबे पैरों अपने अन्दर उतरता जाता है, जैसे वह किसी गैर के घर में चोरी के लिए दाखिल हुआ हो और अपने अन्दर से सब कुछ बाहर निकाल लाता है। और उजाला हो तो वह उस चोर गली की तरफ मुँह करते भी कतरा जाता है।' (पृ. ४६१) इसका तात्पर्य एक यह भी लिया जा सकता है कि व्यक्ति का वास्तविक रूप उजाले में नहीं बल्कि अंधेरे में दिखाई देता है। व्यक्ति जैसे बाहर दिखाई देता है, वैसे भीतर नहीं होता। उसके सही रूप को देखने के लिए हमें उसके 'अंधेरे बन्द कमरों' को खोलकर देखना चाहिए। संभवतः उपन्यास का नाम इसीलिए 'अंधेरे बन्द कमरे' रखा गया हो। पत्रकार मधुसूदन ने हरबंस और नीलिमा का ही नहीं बल्कि सुषमा के बन्द अंधेरे कमरे को भी झांककर देखा है और उनका सही रूप उपन्यास में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

दो एकान्त

विवशता का जीवन जिया जा सकता है क्योंकि उस जीवन में कम से कम स्थिति सापेक्ष परिस्थितियाँ होती हैं और उसमें व्यक्ति अपने मूल्यों पर दृढ़ रहता है। टूटता अवश्य है किन्तु मूल्यों की रक्षा करते हुए टूटता है किन्तु विवशता के आगे और एक सीढ़ी है, वह है अवशता की। इस स्थिति में व्यक्ति स्वयं कुछ नहीं कर सकता यों कहिए कि अपने को परिस्थितियों पर छोड़ देता है। इस स्थिति का जीवन बड़ा दुखद होता है। एक प्रकार से यह पराधीनता का जीवन ही है। इस स्थिति से भी आगे और एक स्थिति है और वह है हताश अवस्था। यह तो और भी दुखद है क्योंकि इस अवस्था में आशा की रही सही किरण भी समाप्त हो जाती है। अवशता का जीवन दया पर और अन्य की कृपा पर जिया जा सकता है किन्तु हताशावस्था में उसकी भी आशा समाप्त हो जाती है। इस स्थिति के बाद तो मृत्यु है। नरेश मेहता के उपन्यास 'दो एकान्त' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें उपन्यास का नायक विवशता, अवशता और हताशावस्था से क्रमशः गुजरता है। विवेक और वानीरा पतिपत्नी दोनों का जीवन दो एकान्तों का जीवन है। उपन्यास में तीन प्रमुख स्थल हैं–पुरी, डिब्रूगढ़ और इलाहाबाद। पुरी और डिब्रूगढ़ के बीच कलकत्ता आ जाता है, जो डिब्रूगढ़ जाने की श्रृंखला मात्र है। पुरी का प्रारम्भिक जीवन विवशता का जीवन है। (प्रारम्भ का जीवन सुखद रहा किन्तु विवेक जब गृहस्थी के कार्यों में जुट जाता है, तब का जीवन) विवशता की अनुभूति वानीरा के शब्दों में –– 'मैं तुम्हारी व्यस्तता और विवशता दोनों ही बूझती

हूँ विवेक .. अपने पर झल्लाहट भी होती है। तुम लोकप्रिय हो रहे हो। तुम्हारा नाम होता जा रहा है। जब मैं अपने से छिन्न हुआ तुम्हें पाती हूँ तो एकदम टूट जाती हूँ विवेक ... ... क्या कभी सोच सकते हो कि दिन, हफ्ता महीने हो जाते हैं। सबेरे जब जागती हूँ तो उस समय तक तुम सड़क पर जा चुके होते हो। केवल तुम्हारी पीठ देखते खिड़की में देखते खड़ी रहती हूँ ... रात में कब लौटते हो पता ही नहीं चलता है। हाँ, जब कभी औचक नींद खुल जाती है और तुम्हें निर्विकार सोते देखती हूँ तो मन कैसे उदास हो जाता है विवेक। लगता है कि एक अगम्य सिन्धु हमारे दो एकान्तों के बीच आ खड़ा हुआ है।' (पृ. ३६) विवेक और वानीरा के बीच यहीं पर मिस्टर क्लाइड का आगमन होता है। वानीरा को अपनी कलाओं की अभिव्यक्ति के लिए एक श्रोता मिल जाता है। यह सम्बन्ध बढ़ने लगता है यहाँ तक कि विवेक के बीमार हो जाने पर मिस्टर क्लाइड के कथनानुसार कलकत्ता जाने के लिए वह मजबूर हो जाता है। कलकत्ता में स्वस्थ होने पर मिस्टर क्लाइड के निर्देशानुसार विवेक और वानीरा डिब्रूगढ़ चले जाते हैं। डिब्रूगढ़ का जीवन अब विवेक का नहीं वानीरा के नियंत्रण का जीवन था। अपने कौशल से उसने विवेक को सभी प्रकार की सुविधाएँ दीं और उसको अपने सुख का साधन बना लिया। यहाँ पर और एक नये व्यक्ति का प्रवेश होता है। इतिहास प्रेमी मेजर आनन्द का प्रवेश इस दम्पति के बीच हो जाता है। फारेस्ट वाली घटना के बाद वानीरा बदल जाती है। इसके बाद वह विवेक की उपेक्षा करने लगती है। मेजर आनन्द के आने जाने को विवेक मौन भाव से देखता रहता है। एक दिन वह स्पष्ट एकान्त में बैठे दोनों की बातें सुन लेता है। वानीरा को आनन्द कहता है कि उसकी बदली इलाहाबाद हो गई है अतः वह भी विवेक को इलाहाबाद के लिए राजी करें। यहीं से दाम्पत्य जीवन में दरार आ जाती है। और दो एकान्तों का जीवन बीतने लगता है। यहाँ विवेक अवशता का जीवन बीताता है। मजबूर होकर, वानीरा की उपेक्षा को सहते हुए, अपने दायित्व का निर्वाह करने की दृष्टि से वह इलाहाबाद आता है। इलाहाबाद में विवेक पूर्णतः हताश रहता है। यहाँ वह स्थिति को और भी विपरीत अनुभव करता है। मेजर आनन्द से इलाहाबाद में भेंट होती है। वानीरा विवेक की उपेक्षा कर उसके साथ रात भर बाहर रहती है। यहाँ तक कि मेजर आनन्द के लद्दाख जाते समय वानीरा उसे स्पष्ट शब्दों में कहती है कि लद्दाख से लौट आने पर भावी शिशु को स्वीकार कर उसे लाछंन से बचाए। अपने कानों से इस बात को सुनकर विवेक के लिए अब सम्बन्ध निर्वाह करना कठिन हो गया। मेजर आनंद लद्दाख चले जाते हैं। यहाँ से वानीरा

की यातना का आरंभ होता है । विवेक ने समझदारी से काम लिया और पुरी लौट आया। यहाँ आने पर उसने अपना जीवन व्यवस्थित कर लिया । वानीरा को मौन यातना सहनी पडी । विवेक ने उससे कुछ नहीं कहा । मौन यातना के असह्य हो जाने पर वानीरा ने विवेक से कुछ कहना चाहा जिसके उत्तर में विवेक ने कहा – 'ठहरो वानीरा । मुझे कोई जिज्ञासा नहीं, इसलिए कि हमारे बीच पती–पत्नी का विश्वास नहीं शेष है । मैं सामाजिक मुखोश उतार फेंकने के लिए नहीं कहूँगा पर इतना मेरा आग्रह अवश्य है कि हम अपने घोषित रूप में सम्बन्धों को उतार फेंके लेकिन सम्बन्ध के रथ पर से पहले तुम्हें उतरना होगा इसलिए कि तुम्हारी सुरक्षा का दायित्व मैंने एक दिन लिया था।' (पृ. १७३) उपन्यास में विवेक का चरित्र श्रेष्ठ तो कहा जा सकता है किन्तु यह श्रेष्ठता प्रमुख रूप से सम्बन्ध निर्वाह तक ही । स्थितियाँ ऐसी होती है कि कहीं कुछ नहीं किया जा सकता । प्रेम में तनाव अपने आप आते जाता हैं । यह तनाव विवेक और वानीरा का ही है । बीच में क्लाइड और मेजर आनन्द आ जाते हैं । जहाँ तक वानीरा का चरित्र है, वह स्थितियों के वशीभूत हो जाती है और यदि विवेक के चरित्र को देखें तो वह अपने प्रति दृढ रहते हुअे भी स्थिति पर नियंत्रण नहीं कर पाता । स्थिति पर मनुष्य का वश नहीं होता अतः वह कितना विवश, अवश और हताश होकर स्थितियों को सहता या भोगता है इसे इस उपन्यास में वाणी मिली हैं ।

अपने अपने अजनबी

व्यक्ति का प्रयत्न स्वतंत्रता प्राप्त करने की ओर होता है क्यों कि स्वतंत्रता से सब मूल्यों की प्राप्ति होती है । किन्तु क्या वास्तव में व्यक्ति स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है ? यदि स्वतंत्रता का संबंध मृत्यु के साथ जोड दें तो समस्या और उलझ जाएगी । अस्तित्व की रक्षा में जहाँ हम अपने निजी सत्ता की रक्षा करते हैं । वैसे ही क्या मृत्यु से रक्षा संभव है ? और सच देखा जाय तो अस्तिव की रक्षा में मृत्यु से रक्षा का भाव निहित है । मृत्यु से अरक्षित होकर अस्तित्व क्या होगा ? अतः जीवन के अन्तिम सत्य को नकारा नहीं जा सकता और इस संबंध में यह स्वीकार करना ही पडता है कि मृत्यु अनिवार्य है । स्वतंत्रता के वरण के साथ मृत्यु का वरण भी करना होगा । इस सत्य का उद्घाटन अज्ञेय ने 'अपने अपने अजनबी' उपन्यास में किया है । स्वयं अज्ञेय ने नीहार रंजन राय के आग्रह पर इस उपन्यास के बारे कुछ विचार प्रकट करते हुए कहा कि यह पुस्तक सार्त्र की अस्तित्ववादी परिकल्पना का उत्तर है और वरण, मरण और स्वाधीनता को एक सर्वथा

भिन्न व आस्थावादी संदर्भ में प्रस्तुत करती है । 'मरण के स्वीकार' से ही 'वरण की स्वतंत्रता' मिल सकती है। (दिनमान–साहित्य स्तंभ पृ. ४१, ४ नवम्बर १९६६) इस उपन्यास की बूढी स्त्री सेल्मा का चरित्र बड़े कौशल से अंकित किया गया है। उपन्यास में कथा भाग गौण है। बुढ़िया सेल्मा, जो मृत्युशैया पर लेटी हुई है, (जिसने यह जान लिया ह कि मृत्यु समीप है) योके युवती के साथ समाज से दूर, निर्जन स्थान में बर्फ के दिन धूप की प्रतीक्षा में काटते रहती हैं। युवती योके के मन में मरनेवाले व्यक्ति के प्रति एक आंदोलन उठता है। इसका बड़ा ही सूक्ष्म अंकन उपन्यास में हुआ है। यह अंकन दैनिक कर्मों में, नित्यप्रति के कार्यों में (जीवन और मृत्यु के दृष्टिकोण के आधार पर) हुआ है। आश्चर्य की बात यह है कि बुढ़िया मृत्यु की वास्तविकता को जानने पर भी मृत्यु से उतनी भयभीत नहीं है। वह अपना दैनिक कार्य स्वाभाविक रूप से करती रहती है। अन्तिम क्षण तक उसमें जीवन की भावना बनी रहती है। जब कि इसके विपरीत युवती योके के सामने लम्बा जीवन होने पर भी मृत्यु की भावना से भयभीत रहती है। स्वतंत्रता के संबंध में योके और सेल्मा का यह प्रश्नोत्तर देखिए। योके– "लेकिन स्वतंत्रता मुझे भी चाहिए। यहाँ मैं अपनी इच्छा से कैद नहीं हुई और न ही बीमार आदमी से सेवा लेकर स्वस्थ आदमी अपने को स्वतंत्र महसूस कर सकता है।" उत्तर में सेल्मा कहती है–"मेरी बीमारी की बात बार बार दोहराने की जरूरत नहीं है–मै जानती हूँ कि मैं बीमार हूँ। मै जानबूझकर हुई हूँ या कि तुम्हें सताने के लिए हुई हूँ? और स्वतंत्रता? कौन स्वतंत्र है? कौन चुन सकता है? कि वह कैसे रहेगा मै क्या स्वतंत्र हूँ कि बीमार न रहूँ –या कि अब बीमार हूँ तो क्या इतनी भी स्वतंत्र हूँ कि मर जाऊं? मैंने चाहा था कि अन्तिम दिनों में कोई मेरे पास न हो। लेकिन वह भी क्या मैं चुन सकी? तुम क्या समझती हो कि इससे मुझे तकलीफ नहीं होती कि जो मै अपनों को भी नहीं देखना चाहती थी उसे देखने के लिए भगवान ने–एक–एक–अजनबी भेज दिया."(पृ. ४७) सेल्मा अपनी पूर्वकथा योके को सुनाती है, जिसके विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। यहाँ इतना ही कहना है कि योके बुढ़िया से मृत्यु के वरण का पाठ सीख लेती है। उपन्यास के अंत में अपनी मृत्यू से पूर्व योके कहती है -" मैने चुन लिया। मैंने स्वतंत्रता को चुन लिया है।" (पृ. ११५) इस उपन्यास में मृत्यु संबंधी दर्शन नकारात्मक रूप में नहीं है। मृत्यु को स्वीकार करने से स्वतंत्रता की रक्षा संभव है और स्वतंत्रता की प्राप्ति से अस्तित्व की रक्षा होगी और फलस्वरूप मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सकती है।

ऊपर तीन उपन्यासों की संक्षिप्त रूपरेखा उनमें पाए जानेवाले मूल दृष्टिकोण को दृष्टि में रखते हुए दी गई है। 'अलगाव' की समस्या सभी में दिखाई देगी। शिवदानसिंह चौहान के अनुसार संभवतः अलगाव Alienation का प्रयोग सब से पहले हीगल ने किया था। हीगल के अलगाव की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं–'अलगाव' से हीगलका तात्पर्य था मनुष्य के 'स्व' का कर्त्ता और 'वस्तु' इन दो रूपों में हो जाना, यानी उसका एक कर्त्ता भी होना, जो अपने भाग्य का निर्णायक बनने कि चेष्टा करता है और साथ ही एक वस्तु भी होना जिसे अन्य लोग मनमाने ढंग से इस्तेमाल करते हैं। इसलिए हीगल ने कहा कि मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य 'स्वतंत्रता' है, जिसमें उसे आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता हो और वह अपने तत्त्व का स्वामी हो और उसे अपना 'स्व' पुनः प्राप्त हो जाय।" (आलोचना ३७ के सम्पादकीय से) इस दृष्टिकोण से जहाँ व्यक्ति को अपनें 'स्व' की प्राप्ति नहीं होती, वहाँ वह 'अलगाव' की अनुभूति से ग्रस्त होता है। समाज में मनुष्य अपने 'स्व' का विस्तार करके ही जी सकता है। यदि व्यक्ति अपने 'स्व' में सीमित होता जायगा तो अलगाव की समस्या तीव्रतर होती जायगी। '**अंधेरे बन्द कमरे**' उपन्यास में यह दिखलाया गया कि व्यक्ति का 'स्व' अंधेरे बन्द कमरों में है। प्रकाश में व्यक्ति का 'स्व' दिखाई नहीं देता। अपने 'स्व' को प्रकाश में लाना (सामाजिक रूप देना) कितना कठिन है? इसी पीड़ा से उपन्यास के प्रमुख पात्र पीड़ित हैं। वे अलगावकी समस्या से ग्रस्त हैं। न हरबंस का 'स्व' नीलिमा के 'स्व' से मिल पाता है और इसके विपरीत भी। एक साथ जीवन गुजारते हुए भी, ऐसे संबंध से जो सामाजिक दृष्टि से सबसे निकट तर और मधुरतम है, दोनों अलगाव की समस्या से त्रस्त हैं। उपन्यासकार का कौशल इसी में है कि पीड़ा की तीव्रता का बोध करा दिया हैं। '**दो एकान्त**' की समस्या इसी कोटि की होती हुई अन्तर इस बात में है कि मनुष्य का 'स्व' स्वयं मनुष्य के हाथ में नहीं है। वह स्थिति के अधीन है। इस स्थिति पर वश पाना बड़ा कठिन है। इसीलिए व्यक्ति को एकान्त का जीवन जीना पड़ता है। एकांत का जीवन अलगाव का जीवन ही है। इसी पीड़ा से विवेक पीड़ित होता है। और वानीरा भी। तीसरे उपन्यास '**अपने अपने अजनबी**' में तीसरी बात है। यहाँ व्यक्ति अपने 'स्व' की रक्षा में समाज से कटकर रहना चाहता है किन्तु व्यक्ति को यह स्वातंत्रता कहाँ कि समाज से कटकर जीवित रह जाय? अपने से बचने पर अजनबी से सामना करना पड़ता है। 'स्व' की रक्षा यहाँ भी संभव नहीं। बुढ़िया इसीसे पीड़ित है कि यहाँ भी भगवान ने–एक–न–एक अजनबी भेज दिया। हम अपने 'स्व' को कहाँ तक

छिपाएँगे ? अपनों से छिपाने पर अजनबी जान लेंगे। इसलिए अपनों को अजनबी बनाने में अजनबियों को अपना बनाना पड़ेगा।

यहाँ केवल तीन उपन्यासों में ही अलगाव की चर्चा की गई हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्य उपन्यासों में इस समस्या की ओर संकेत नहीं है। '**खाली कुर्सी की आत्मा**' (लक्ष्मीकांत वर्मा), **एक कटी हुई जिनदगी : एक कटा हुआ कागज,** (लक्ष्मीकांत वर्मा), '**शह और मात**' तथा '**उखड़े हुऐ लोग**' (राजेन्द्र यादव) आदि उपन्यासों में भी यह समस्या विभिन्न रूपों में व्यक्त हुई है। आज आवश्यकता इस बात की है कि मानवीय संवेदना जिस गहन पीड़ा को अनुभव कर रही है उसे वाणी दी जाय जिससे मानवीय मूल्यों का बोध हो सकता है। हिन्दी के आधुनिक उपन्यास इस दिशा में पीछे नहीं है।

ऊपर कुछ उपन्यासों में चरित्र चित्रण की प्रवृत्तियाँ दिखलाई गई हैं। इन चरित्रों में 'आध्यात्मिक प्रकाश' का अभाव है। कारण स्पष्ट है और वह यह है कि ये चरित्र आपस में ही एक दूसरे का अंन्वेषण कर रहे हैं। उनके भीतर दृढ़ व्यक्तित्व वाला बल नहीं है। वे अध्ययन कर रहे और औरों के लिए स्वयं अध्ययन का पात्र बने हुए हैं। ऐसी स्थिति में उनके चरित्र प्रयोगात्मक ही हो सकते हैं। पूर्व संस्कारों से बहुधा वे मुक्त हैं (इस स्थिति में उनका चरित्र दृढ़तर होता), अपने को नये परिवेश में पाकर नई स्थापनाओं के बीच अनुभव कर, अजनबियों के बीच रहकर, जिज्ञासा एवं कौतुहल के भाव से जीवन में बढ़ता हुआ अनुभव कर, अपने चरित्र को नए ढ़ंग से संस्कारित करने में लगे हुऐ हैं। जीवन में यही हो रहा है और वही झलक उपन्यासों में भी देखने मिल रही है। आशा–निराशा दोनों ही हाथ आ सकती है। किन्तु यह पहले ही कैसे स्वीकार कर लें कि आशा हाथ आएगी या निराशा आएगी? इस तरह से कहना तो प्रयोग नहीं हुआ। प्राचीन कथाओं के पात्रों में आध्यात्मिक बल होता था। वहाँ पात्र को अनेक विपत्तियों के बीच रखकर यह दिखाया जाता था कि उन विपत्तियों में पात्र दृढ रहता है एवं जीवन की परीक्षा में खरा उतरता है। वहाँ वह हारकर भी जीत जाता था और चरित्र की दृढ़ता को सिद्ध कर

देता था। अब वह स्थिति नहीं रह गई है। विपत्तियों को अब वह कसौटी मानता ही नहीं। अतः वह विपत्तिजनक परिस्थितियों को देखकर अपने को बदलता है; नई परिस्थितियों को परखता है और उनके अनुकूल नये मूल्य स्थापित कर जीना चाहता है। मानव की आस्थाएँ डिग गई हैं। नई आस्थाएँ प्रयोग की स्थिति में हैं। इसीलिए चरित्र प्रयोगात्मक रूप में लिखे जा रहे हैं।

('नई धारा' पटना, जुलाई १९६७ में इस अध्याय का अन्तिम अंश 'अलगाव की समस्या से जूझते कथानायक' शीर्षक से प्रकाशित)

मानवीय मूल्यों में प्रयोग

मानवीय मूल्यों में प्रयोग

एच. जी. वेल्स ने आत्मसमालोचनात्मक विचारों को प्रकट करते हुए एक स्थान पर लिखा है-'चरित्र का विस्तार के साथ अध्ययन एक वयस्क धंधा है, एक दार्शनिक धंधा है।' वेल्स के इस कथन की टिप्पणी करते हुए रैल्फ फॉक्स ने लिखा कि–'यही वह गुण है जिससे कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रथम और द्वितीय कोटि की रचनाओं की परख होती है। यह सच है कि अनेक दार्शनिक उपन्यास लिखने में बुरी तरह विफल रहे हैं, किन्तु कोई भी उपन्यासकार अपने पात्रों की विशिष्टताओं से सामान्य नतीजे निकालने की उस क्षमता के बिना रचना नहीं कर सका है, जो कि जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण से पैदा होती है,'[1] जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाना एक प्रकार से मानवीय मूल्यों का सत्यान्वेषण करना ही है। धर्म, दर्शन और विज्ञान ये तीनों ही सत्य के आधार माने गए हैं। इनमें से अब धर्म की ओर से उपन्यासकारों का ध्यान हट सा गया है। जीवन के सत्यों का अन्वेषण अब धर्म के आधार पर नहीं विज्ञान और दर्शन के आधार पर हो रहा है। ऐसी स्थिति में मानवीय मूल्यों के आधार भी दर्शन और विज्ञान रह गए हैं। इन दोनों में भी विज्ञान का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। आज मनुष्य का अध्ययन समाज शास्त्री, अर्थशास्त्री, प्राणिशास्त्री, सौन्दर्यशास्त्री, मनोविज्ञानवेत्ता, मानसशास्त्री, सभी प्रस्तुत कर रहे हैं। इनके द्वारा मानव जीवन के जिन सत्यों का उद्घाटन हो रहा है उसका उपयोग आज के साहित्यकार और उपन्यासकार भी कर रहे हैं। उपन्यास, साहित्य की एक ऐसी विधा है जो जीवन की यथार्थ परिस्थितियों के साथ कदम से कदम मिलाते चलते हुए

---

१. उपन्यास और लोकजीवन–रैल्फ फॉक्स अनु. नरोत्तम नागर पृ. ४१.

रुढ़िगत नैतिकता के स्थान पर विमर्शात्मिक नैतिकता का समर्थन करता है। वह बदलती हुई यथार्थ परिस्थितियों में बदलते हुए मानव मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयत्न करता है। उपन्सास की महत्ता और उसके दायित्वों की चर्चा करते हुए श्री रामस्वरूप चतुर्वेदीजी ने लिखा है–'किसी भी समाज में पुरानी चली आनेवाली परंपराओं तथा रुढ़ियों की पर्तें उसके अधिकांश सदस्यों के मन पर चढ़ी रहती हैं, तथा मिथ्या भय और अहंकार की भी। समाज के विकास के साथ साथ 'प्रेजुडिस' को भी जन्म मिलता है। इस 'प्रेजुडिस' पर विजय पाने के लिए जिस व्यापक सहानुभूति की आवश्यकता होती है, उसे एक उपन्यासकार ही दे सकता है।'[1] इस दृष्टि से यदि हम आज के हिन्दी उपन्यास साहित्य पर विहंगावलोकन करें तो हम उसमें समाज की बदलती हुई यथार्थ परिस्थितियों की झांकी देखते हैं, उसमें मानव के– उसके लघु अस्तित्व के– वास्तविक चित्र को देखते हैं। मानव जीवन के सम्बन्ध में जिन नये सत्यों का उद्घाटन हुआ है, उसके प्रति व्यापक सहानुभूति पैदा करने में उपन्यास-कार प्रयत्नशील दिखाई दे रहे हैं।

१५ अगस्त १९४७ को भारतवर्ष स्वतंत्र हुआ। इस समय से हमारे देश ने भी विश्व के उन्नत और स्वतंत्र राष्ट्रों की भाँति विकास की ओर कदम बढाया है। आधुनिक दृष्टि से हम भी इस समय से विश्व के समसामयिक युग में शामिल हो गए। अब हमारे सामने देश को स्वतंत्र करने की समस्या नहीं थी। अब तो आवश्यक्ता इस बात की थी कि किसी तरह देश को समृद्धशाली और उन्नत बनाएँ। इसी दृष्टि से पंचवर्षीय योजनाएँ द्वारा देश में औद्योगिक विकास का कार्य आरम्भ हुआ। एक प्रकार से देश का लक्ष्य राजनैतिक स्वतंत्रता से हटकर आर्थिक स्वातंत्रता की ओर गया। इस के फलस्वरूप देश को नई नई समस्याओं का सामना करना पड़ा। अब तक का भारत अनेक कालों से पौराणिक, मध्यकालीन, सामंतकालीन, जमीदारयुगीन संस्कारों को ढ़ोता हुआ आ रहा था। अतः इनमें एकदम परिवर्तन संभव नहीं था। इस पर भी इन संस्कारों को दूर कर नये मानव मूल्यों की स्थापना के प्रयत्न भी तेजी से होते रहे। ऐसी स्थिति में देश में कई प्रकार के संघर्ष हुए। ये संघर्ष वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी प्रकार के रहे। इन सब को आधार बनाकर अनेक उपन्यास लिखे गए हैं। एक ओर जहाँ पुरानी पीढ़ी के उपन्यासकारों ने नये परिवेश के अनुसार नये उपन्यास लिखे

---

१. आलोचना १३–(उपन्यास विशेषांक) पृ. ४८.

हैं, वहाँ दूसरी ओर नई पीढ़ी के कथाकारों न भी युगानुरूप नय मूल्यों की स्थापना के लिए नये नये प्रयोग उपन्यासों के क्षेत्र में किए हैं।

जगत में इस समय दो प्रकार की विचारधाराएँ प्रमुख रूप से कार्य कर रही हैं। एक है जनतांत्रिक विचारधारा और दूसरी है साम्यवादी विचारधारा। आज के हमारे मानव मूल्य इन विचारधाराओं से प्रभावित हो रहे हैं। हमारे देश में इस समय जनतांत्रिक विचारधारा का प्रभाव अधिक दिखाई दे रहा है। एशिया में जनतंत्र का समर्थक सबसे बड़ा देश भारतवर्ष ही है। ऐसी स्थिति में हमारे मानव मूल्य जनतांत्रिक विचारधारा से अधिक प्रभावित हो रहे हैं और उसका प्रभाव हम उपन्यासों में भी देख रहे हैं। जनतंत्र और उपन्यास दोनों का सम्बन्ध स्थापित करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदीजी ने लिखा हैं --'जनतंत्र का आयोजन इसलिए किया जाता है कि व्यक्ति अपने स्वातंत्र्य का उपभोग कर सकें, तथा विभिन्न मूल्यों को मान्यता देनेवाले मनुष्य अपनी अपनी दिशा में आगे बढ़ सकें और इस पर भी समाज की उन्नति में वे अधिक से अधिक सहायता दे सकें। उपन्यास हमें बहुमुखी दृष्टि, अधिकाधिक सहानुभूति, सहिष्णुता तथा व्यक्तिगत दायित्व की भावना देकर, इस कार्य में हमारा हाथ बँटाता है। इस प्रकार उपन्यास और जनतंत्र सदैव एक दूसरे को प्रश्रय देते हैं। उपन्यासों का समुचित विकास जनतंत्र में ही सम्भव हो पाता है, तथा जनतंत्र को सुचारु रूप से चलाने की शिक्षा काफी हद तक उस राष्ट्र के उपन्यास देते हैं।'[१] जनतंत्रात्मक विचारधारा की दृष्टि से मानव जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया है, उसकी झलक हमें हिन्दी उपन्यासों में देखने मिल रही है। इस विचारधारा के साथ साथ देश में एक प्रबुद्ध वर्ग ऐसा भी है जो मार्क्सवाद के इतिहास दर्शन में विश्वास करते हैं। इनके अनुसार-- 'हमारी वैयक्तिक दुश्चिन्ताएँ और व्यक्तिगत अनिश्चतताएँ हमारी उपज न होकर बहिर्गत सामाजिक अव्यवस्थाओं का उत्पादन है। अतः बौद्धिक दृष्टि से इनका निदान सामाजिक विचारों की अनिवार्यता है। हम अपने बौद्धिक साजसामान के प्रति दिग्भ्रमित हो गए हैं। इसलिए हमें इतिहास-व्याख्या--आधुनिक इतिहास की व्याख्या--को लागू करना ही होगा "[२] कुछ उपन्यास इस विचारधारा से प्रभावित होकर भी लिखे गए

१-आलोचना-१३-(उपन्यास विशेषांक) - पृ. ४९
२. आलोचना ३४--पृ. २४.

हैं। दोनों ही प्रकार की विचारधाराओंमें उपन्यासों से सम्बन्धित एक मूल बात जो देखने मिलती है, वह है -- व्यक्ति के संघर्ष की गाथा। प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक रैल्फ फॉक्स ने उपन्यास को विश्व की कल्पना प्रसूत संस्कृति की बूर्जुआ अथवा पूँजीवादी सभ्यता की सब से बड़ी देन माना है।[1] इसका कारण भी है। और वह है -- उपन्यास व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है।[2] (ये शब्द भी रैल्फ फॉक्स के ही हैं।) तात्पर्य यह है कि उपन्यास जन-तांत्रिक विचारधारा के जितने अनुकूल हैं, उतने साम्यवादी विचारधारा के नहीं। साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित जो उपन्यास लिखे गए हैं, उनमें भी वैयक्तिक संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है। स्वयं यशपाल का उपन्यास 'झूठा सच' जो देश के विभाजन के उपरान्त भारतीय समाज का विराट चित्र युगीन इतिहास के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है, सही मानों में वैयक्तिक संघर्ष का महाकाव्य है। पुरी और तारा का जो संघर्ष उपन्यास में दिखलाया गया है, वह बहुत ही यथार्थ है और उसमें व्यक्ति के संघर्ष की गाथा है। अस्तु।

सार्त्र के अनुसार स्वतंत्रता सब मूल्यों की जननी है। मनुष्य वह वस्तु है, जिसके भीतर से सब मूल्य उदित होते हैं, इसीलिए मनुष्य यह कभी न चाहेगा कि वह मूल्य निर्माण की अपनी स्वतंत्रता खो दे। उपन्यासों में मनुष्य के-जिसके भीतर कि मूल्य उदित होते हैं-वैयक्तिक अनुभूतियों को वाणी मिलती है। वैयक्तिक अनुभूतियों के माध्यम से ही उपन्यासकार मानववाद तक पहुँचने का प्रयत्न करता है। सामाजिक व्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, जिसके भीतर रहकर मानव अपने अस्तित्व के लिए प्रयत्नशील है, अपनी स्वतंत्रता और अपने मूल्यों की खोज में निरत है, की अभिव्यक्ति उपन्यासों के माध्यम से हो रहीं है।

भारतवर्ष न तो फ्रान्स है और न ही रूस। अतः दोनों ही स्थानों की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ हमारे देश में उन देशों के समान प्रचलित नहीं हैं। भारतवर्ष की समस्याएँ उसकी अपनी हैं, जो उसके अपने इतिहास की उपज है। आधुनिक भारत की विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ समसामयिकता की चर्चा करते हुए डाक्टर रमेशकुंतल मेघ ने ठीक ही लिखा है-" भारत को आधुनिक

---

१. उपन्यास और लोकजीवन—रैल्फ फ़ॉक्स--अनु. नरोत्तम नागर-पृ. ३९.

२. -वही-पृ. २८.

होने में उपनिवेशवादी पिछड़ाव का शिकार होना पड़ा, सामाजिक विकास की दृष्टि से तत्काल सामन्तीय संस्कारों को ढोना पड़ा तथा परिपक्व पूँजीवादी व्यवस्था के घोर व्यक्तिवाद, औद्योगिक विकास और धर्मविहीनता से अपेक्षाकृत कम अन्तर्बद्ध होना पड़ा। भारत एशिया, (जापान को छोड़कर) अफ्रीका (दक्षिण अफ्रीका को छोड़कर) और लैटिन अमेरिका के देशों की तरह ही आधुनिक आर्थिक क्रान्ति का रंगमंच हो गया. "[1] देश की इन परिस्थितियों में देश की राजनैतिक पद्धति–जो कि जनतंत्रात्मक है–देश का विकास करने में प्रयत्नशील है। इस पद्धति के गुणदोष हो सकते हैं किन्तु इसका प्रभाव देश की समूची जनता पर है। हमारा देश इसी पद्धति को अपनाकर देश को समृद्ध और उन्नत बनाना चाह रहा है। आज के युग में राजनैतिक शक्ति का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। देश की सारी नीति का निर्धारण करनेवाला वर्ग यही है। इस ऐतिहासिक यथार्थ को झुठलाया नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में राजनीति में जो दाँवपेंच खेले जा रहे हैं, देश के उत्थान की जो नई वाणी सुनाई दे रही है और उसके पीछे इस देश की मिट्टी की अपनी जो समस्याएँ हैं, उन सब की अभिव्यक्ति हिन्दी उपन्यासों में हो रही है। **झूठा सच, बूँद और समुद्र, उखड़े हुए लोग, सत्ती मैया का चौरा, सागर लहरें और मनुष्य, अंधेरे बंद कमरे, खाली कुर्सी की आत्मा, बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, सूरज का सातवाँ घोड़ा, गुनाहों के देवता, साँचा** आदि उपन्यास देश की विभिन्न समस्याओं का विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में वर्तमान इतिहास के संदर्भ में यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं।

देश का जब इस तरह से कायापालट हो रहा ह और जब देश में औद्योगिक क्रान्ति गतिशील है तो उसका प्रभाव देश के सांस्कृतिक मान–मूल्यों पर पड़ना स्वाभाविक है। जीवन में भौतिकता का प्रवेश दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। इससे हमारे जीवन के पुराने मूल्यों के प्रति जो आस्था अब तक बनी हुई थी, वह बदलती हुई परिस्थितियों में विघटित हो रही है। स्त्री-पुरुषों के आपसी सम्बन्धों के सम्बन्ध में नैतिक धारणाएँ बदल रही हैं, पारिवारिक सम्बन्धों में विघटन हो रहा है, धार्मिक आस्थाओं का लोप होता जा रहा है, भौतिक समृद्धि जनसमाज का लक्ष्य होती जा रही है; वर्ग, जाति या सम्प्रदाय के आधार पर व्यक्ति को ऐतिहासिक संदर्भों के आधारपर अधिकार प्राप्त थ, उनमें परिवर्तन होता जा रहा है, दूसरे शब्दों में व्यक्ति संदर्भहीन होता जा

---

१. आलोचना – ३४ पृ. २९

रहा है; (जब तक उसे संदर्भ प्राप्ति नहीं होता तब तक उसकी स्थिति बड़ी शोचनीय और दयनीय बनी रहती है,) व्यक्ति अपनी योग्यताओं के आधार पर संदर्भों की खोज में लगा हुआ है, जीवन में प्रतियोगिता है, राजनैतिक दावपेंच हैं और इनमें प्रमुख उद्देश्य आर्थिक समृद्धि प्राप्त करने का लक्ष्य ही है, ये और इस तरह की अनेक समस्याओं है, जो वर्तमान सभ्यता की उपज है। इन समस्याओं में व्यक्ति इतना उलझ गया है कि उसके सामने अब अपने अस्तित्व का प्रश्न प्रमुख हो गया है। ऐसी स्थिति में मानव मूल्यों में विघटन होना आस्थाओं और धारणाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था। उपन्यासों में इन सभी समस्याओं का यथार्थ चित्रण हुआ है।

अब उपन्यासों में प्रेमचन्द युग की नारी दिखाई नहीं देती। आज नारी को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त हो गए हैं। उसकी आज की समस्याएँ दूसरी ही हैं। **झूठा सच** उपन्यास की नायिका तारा और कनक **बूंद और समुद्र** उपन्यास की नायिका वनकन्या, **अंधेरे बंद कमरे** उपन्यास की नायिका नीलिमा और सुषमा, **उखड़े हुए लोग की जया, अनदेखे अनजाने पूल की निन्नी, खाली कुर्सी की आत्मा** की प्रतिभा, अंजलि और दिव्यादेवी, **ग्यारह सपनों का देश** की मीनल, द्राभा की आभा के चरित्रों को देख लेने से सहज ज्ञात हो जाएगा कि स्त्री पुरुष के आपसी सम्बधों में नैतिकता के सम्बधों में जो मान-मूल्य पहले बने हुए थे, उनमें कितना परिवर्तन हो गया है। नारी समाज की बदलती हुई धारणाओं के सम्बन्ध में कुछ उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं।

> 'जिस तरह वह (हरबंस) दोनों वक्त खाना खाए बगैर नहीं रह सकता, उसी तरह मेरे बगैर भी नहीं रह सकता। उसके लिए यह सिर्फ एक भूख का सवाल हैं। मगर मैं अब उसकी भूख का सामान बनकर नहीं रहना चाहती। उसने आज तक यह नहीं समझा कि मैं एक चीज नहीं, एक इन्सान हूँ और मेरी भी अपनी जरूरतें हैं और आज जब मुझे पता चल गया कि मेरी जरूरतें जिन्दगी भर पूरी नहीं होंगी तो मैं उसकी जरूरत का सामान बनकर बिलकुल नहीं रहना चाहती।"
>
> (नीलिमा का कथन) अंधेरे बन्द कमरे – मोहन राकेश पृ. ५१०.
> "किसी भी व्यक्ति के साथ बन्धकर उसके शासन में रहना मुझे बहुत गलत लगता था। और तुम मुझे जानते हो कि हर पुरुष किसी

न किसी रूप में स्त्री पर शासन करना चाहता है। मैं सोचती हूँ कि मैं एक अपवाद बन सकती हूँ। पुरुषों के शासन से बचकर उन्हें अपने शासन में रख सकती हूँ ...... मैं आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहती थी, इसीलिए मैंने आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त की, अकेले रहना और खुद कमाना सीखा। पुरुषों में स्त्रियों के प्रति संरक्षणात्मक भाव रहता है वह मुझे बरदाश्त नहीं था, इसलिए मैंने ऐसा काम चुना जिसमें मैं अपने को किसी भी पुरुष के बराबर सिद्ध कर सकूं।"

(सुषमा का कथन) अंधेरे बन्द कमरे – मोहन राकेश – पृ. ४६२.

"आपने जिन्दगी भर तो तैयार किया है अपने आपको दिमागी परिश्रम के लिए या कहना चाहिए दिमागी परिश्रम को प्रमुख रखकर ही आपने सारा हाथ–पाँव का परिश्रम किया है और आपकी सारी दुनिया–ध्यान दीजिए – मैं कह रही हूँ, सारी दुनिया कैद कर दी जाती है शारीरिक परिश्रम में, इसके लिए कौन बेवकूफ तैयार होगी।"

(जया का कथन) – उखड़े हुए लोग – राजेन्द्र यादव – पृ. २२.

– और अनेक उद्धरण दिए जा सकते हैं। नारी अपने अधिकार के लिए सचेत हो गई है। नैतिकता के सम्बन्ध में धारणा बदलती जा रही है। इस नई व्यवस्था में नई समस्याएँ सामने आ रही हैं। जैसे विवाह की समस्या – प्रमुख रूप से आर्थिक दशा के कारण (विवाह न होने के कारण) जीवन में जो घुटनपूर्ण वातावरण पनपता है; नारी को इस समाज में नौकरी करते हुए कितनी कठिनाइयों से अपने स्वत्व की रक्षा करते हुए जीना पड़ता है; इनकी अभिव्यक्ति उपन्यासों में हो रही है। **अनदेखे अनजाने पुल** की नायिका निन्नी की मुख्य समस्या विवाह न होने की समस्या है और उसके दो मूल कारण हैं – कुरूप होना और आर्थिक दृष्टि से असमर्थता। ऐसी स्थिति में निन्नी की मानसिक स्थिति जो हो सकती थी उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। वर्किंग गर्ल की दूसरी समस्याएँ हैं। **ग्यारह सपनोंका देश** में मीनल बम्बई में काम करती दिखाई गई है। एक पुरुष कई स्त्रियों से प्रेम करता है और इसी तरह एक स्त्री कई पुरुषों से प्रेम करती है। प्रभाकर माचवे का **द्वाभा** उपन्यास इसी आधार पर लिखा गया है। श्री और आभा पति--पत्नी होते हुए जीवन में परस्त्री और पर पुरुष से सम्बन्ध रखते हैं। उन दोनों की मानसिक स्थितियों का विश्लेषण

उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के अन्त में अपने एक निबंध में माचवेजी ने अपना दृष्टिकोण भी व्यक्त किया है जिसमें उनका कहना है कि स्त्री-पुरुष दोनों ही पारस्परिक सम्पर्क में अधिक आएँ, कर्मक्षेत्र में दोनों एक दूसरे को अधिकाधिक सहयोग दें, इसीसे यौन प्रश्नोंपर जो घनीभूत पर्दा डाला गया है वह हटेगा। इसीसे कर्म तथा चिन्तन के क्षेत्र में मानसिक स्वास्थ्य बढ़ेगा।

कहा जाता है कि आज के उपन्यासों में सशक्त और दृढ पात्र नहीं मिलते। चरित्र की दृष्टि से भी एकरूपता सर्वत्र देखने नहीं मिलती। व्यक्ति का जीवन टूटा हुआ है, वह अंधेरे बन्द कमरों में बद्ध है, उखड़ रहा है, खाली खाली है आदि आदि। इसके कारण हैं। ये सब वर्तमान सभ्यता की उपज है। मानव आज संदर्भहीन हो गया है। वह अपने ऐतिहासिक-वर्ग जाति या सम्प्रदाय से सम्बद्ध-- संदर्भों से मुक्त हो गया है। अपनी योग्यता या क्षमता के आधार पर वह नये संदर्भों को प्राप्त करता जा रहा है। इसके लिए उसे बहुत संघर्ष करना पड़ता है। योग्यतम होने पर भी वह आवश्यक नहीं कि उसे अपनी योग्यता के अनुरूप संदर्भ मिल ही जाय। अतिजीविता (सर्वाइवल) केवल एक संभावना है या वह योग्यतमों में से किसी किसी को संयोगवश उपलब्ध होती है या इसकी भी संभावना है कि यह नितान्त अयोग्य को गौरवान्वित करें। ख्याति हो, पद हो, श्रेय हो पुरस्कार हो या और कोई सफलता। इसकी प्राप्ति के लिए योग्यतम होना शर्त मात्र नहीं हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष में वह परिस्थितियों से जूझता है, परिस्थितियों से समझौता करता है। अपने व्यक्तित्व की रक्षा हर व्यक्ति करना चाहता है किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में उसे विवश होकर अपने व्यक्तित्व को कुछ हद तक बदलना पड़ता है। जब अधिक झुकना असंभव हो जाता है; तो दबा हुआ व्यक्तित्व फूट पड़ता है। परिणामस्वरूप सीधा संघर्ष होता है। इससे व्यक्ति या तो परिस्थितियों को पूरी तरह बदल डालता है या स्वयं टूट जाता हैं। **उखड़े हुए लोग** उपन्यास में देशबन्धुजी ऐसे पात्र हैं जिनकी परिस्थितियाँ उन्नति करने के अनुकूल हैं। वे उन्नति के शिखर पर पहुंच जाते हैं। और इस प्रयत्न में रहते हैं कि अपनी वर्तमान परिस्थितियों को बनाए रखें। दूसरी ओर इस उपन्यास में एक ऐसा वर्ग है जो प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना कर रहा है। इनमें सूरजजी प्रमुख है। शरद और जया भी जमने के लिए आते हैं किन्तु उखड़े हुए रह जाते हैं। सूरजजी ने जीवन भर असफलता प्राप्त की है फिर भी समझौता करते गए। कपिल के व्यंग्य का उत्तर देते हुए वे कहते हैं---- "यह आज

के समाज की विवशता है कि उसने मनुष्य के व्यक्तित्व को इस तरह कई हिस्सों में तोड़ दिया है और वह किसी भी ओर अपनी पूर्ण निष्ठा नहीं दे पाता। हम समझ नहीं पाते कि हमारे व्यक्तित्व का सच्चा हिस्सा कौनसा है ?"[१] अन्त में सूरजजी गोलीकाण्ड की घटना से प्रभावित होकर देशबन्धुजी से अलग हो जाते हैं। उनका दबा हुआ व्यक्तित्व जाग जाता है। इसी तरह अन्धेरे बन्द कमरे उपन्यास में भी दिल्ली के जीवन का नये परिवेश में सामाजिक नैतिकता अनैतिकता तथाकथित अभिजात वर्ग का जीवन, राजनीति के राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दाँवपेंच आदि का वर्णन हुआ है। आज का व्यक्ति भीतर से कितना खोखला है, यह इस उपन्यास में दिखलाया गया है। धनी से धनी व्यक्ति और निर्धन से निर्धन व्यक्ति अशान्त और दुखी है। यह बात अब स्पष्ट हो गई है कि जिनके पास 'टैक्ट' और 'काँटेक्ट' हैं, वह सफल हो सकता है। परिश्रम, योग्यता और इमानदारी का अब कोई मूल्य नहीं रह गया है। इस बात को लेखक ने उपन्यास के माध्यम से वर्तमान युगीन परिस्थितियों में व्यक्त किया है। श्री लक्ष्मीकांत वर्मा का **खाली कुर्सी की आत्मा** में अनेक प्रकार के पात्र हैं जो वर्तमान जीवन पर व्यंग्य करते हैं। मानव जैसा दिखाई देता है, वैसा नहीं होता। वह भीतर से कुर्सी की तरह खाली है। जैसे कुर्सी नीलाम होती है उसी तरह वह भी अपने शरीर की रक्षा के लिए नीलाम हो रहा है। मानव मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया इस उपन्यास के कई पात्रों में मिलती है। उदाहरण के लिए डाक्टर संतोषी या महिम को लिया जा सकता है। डाक्टर संतोषी प्रसिद्ध दार्शनिक, मनोविज्ञानवेत्ता और वैज्ञानिक थे। उन्होंने सारा जीवन प्रयोगों मे गुजारा और अन्त में उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले उसके आधार पर उन्होंने यह अनुभव किया कि उनके निष्कर्ष सत्य होने पर भी उन्हें कोई स्वीकार नहीं करेगा। यदि वे बतला देंगे तो लोग उन्हें जिन्दा दफन कर देंगे। अपने दार्शनिक जीवन में उन्होंने हमेशा समझौते का प्रयास किया। किन्तु उनको अपने निष्कर्ष सदैव प्रिय रहे। अपनी आस्थाओं से वे चिपके रहे अतः उनके सम्बन्धो में भी अन्तर आते गये। दिव्या-देवी से प्रेम सौंदर्यप्रियता के कारण हुआ किन्तु सूक्ष्म और स्थूल के आधार पर मतभेद हो गया। परिणाम स्वरूप सम्बन्ध टूट गया। प्रतिभा के साथ विवाह समझौता ही था। दोनों ही स्वतंत्र थे। शरीर के पापमय और पुण्यमय होने में उन्होंने विश्वास नहीं किया। यही प्रतिमा भी चाहती थी। अतः यह सम्बन्ध भी एक टूटा हुआ संबंध था जिसका वही परिणाम हुआ जो होना था। अन्त में उनका व्यक्तित्व उखड़ जाता हैं और वे आत्महत्या की बात सोचते हैं। अपना

१- उखड़े हुए लोग-- राजेन्द्र यादव (दूसरा संस्करण) --पृ. २२४.

अन्तिम संदेश उन्होंने यही लिखा था कि–' मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि हैं अब जिन्दा रहूँ या आत्महत्या कर लूं क्यों कि मेरे लिए अब जिन्दा रहना उतना ही कठिन है जितना कि मरना। '[१] घर से चले जाने पर वे आत्महत्या का प्रयत्न करते हैं किन्तु विकलांग होकर रह जाते हैं। मौत नहीं होती। अपनी इस स्थिति का परिचय वे इन शब्दों में देते हैं– जिन्दगी इतनी सख्त होती हैं कि दुर्घटनाएँ आती हैं, निकल जाती हैं। हद से हद आदमी टूट जाता है। जिन्दगी दो टूक होकर रह जाती है लेकिन जिन्दगी मिटती नहीं, कभी नहीं ... और मैं जिन्दा हूँ '[२] यह है जिन्दगी का टूटना, मानव मूल्यों का विघटित होना। इसी तरह महिम के जीवन के दो पहलू दिखाए गए हैं एक है आस्था वाला पक्ष और दूसरा है अनास्था वाला पक्ष–जेल से छूटने के बाद का जीवन टूटा हुआ जीवन है। अन्त में वह दुर्घटना का शिकार होता है। इस तरह हम उपन्यासों में आज जिस प्रकार के पात्रों को देख रहे हैं वे वर्तमान परिस्थितियों की उपज है। मानव का यथार्थ रूप सामने आ रहा है। उसकी यथार्थ स्थिति का परिचय उपन्यासकार दे रहे है और उसके प्रति संवेदना पैदा करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

आज के उपन्यासकार इस प्रयत्न में है कि जीवन जैसा है, उसको उसी रूप में प्रस्तुत किया जाए। प्रेमचंदजी की तरह वे सोद्देश्य नहीं लिख रहे हैं। ये इस प्रयत्न में है कि व्यक्तियों तथा स्थितियों के प्रति सहानुभूति की भावना जगाऐ। इस प्रकार की संवेदना पैदा कर वे पाठकों को वर्तमान युग का नया भावबोध देना चाहते है। वास्तव में वे मानव को उसके––निजी अस्तित्व का––स्वरूप का ज्ञान कराना चाहते हैं। इस तरह वे मानवीय अनुभूतियों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए मानव का आन्तरिक और बाह्य विश्लेषण दिखलाते हुए मानववाद की स्थापना करना चाह रहे हैं। मानव जीवन के सभी रहस्यों का यथार्थ रूप में उद्घाटन करते हुए वे जीवन को देखने लिए एक दृष्टि प्रदान कर रहे हैं। हिन्दी उपन्यास साहित्य इस दिशा में प्रयत्नशील है। वह मानवीय मूल्यों की स्थापना मानवीय चिन्तन के आधार पर करने का प्रयत्न कर रहा है।

● ●

(साहित्य सन्देश, आगरा, जून १९६६, में 'आधुनिक उपन्यासों में मानवीय मूल्य' शीर्षकसे प्रकाशित)

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा–श्री लक्ष्मीकांत वर्मा पृ. २८०.
२. ––वही––प. ४०५.

पथ के चरण

जैनेन्द्र कुमार | मुक्तिबोध

खण्डित व्यक्तित्व का चिंतन

● खण्डित व्यक्तित्व का चिंतन

मुक्तिबोध जैनेन्द्रकुमार का लिखा हुआ उपन्यास है। पुरानी पीढ़ी के लेखकों में जैनेन्द्रकुमार हैं। उनका दार्शनिक व्यक्तित्व ख्यात है। इस उपन्यास में उन्होंने एक ऐसी समस्या को छूने का प्रयास किया है जो उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है। जैनेन्द्रजी चाहे स्वयं इस बात को स्वीकार करना पसन्द न करें किन्तु इस उपन्यास में उनका सहज चिंतन––उनका निजी चिंतन––सहाय (इस उपन्यास के प्रमुख पात्र) के चिंतन के रूप में व्यक्त हुआ है। वैसे उनके मूल चिन्तन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है, ऐसा नहीं लगता। हाँ, चिंतन कुछ प्रौढ़ हो गया है। और यह उनकी अवस्था के अनुसार विकसित चिंतन है, यह कहा जा सकता है। उनकी रचनात्मक प्रतिभा इस उपन्यास में जीवित है।

जैनेन्द्रजी पात्रों का व्यक्तित्व विश्लेषण करने में सिद्धहस्त हैं। इस विश्लेषण में वे पात्र के अन्तरंग का, बाह्य रूप से प्रभावित करनेवाले वातावरण का––स्थितियों का (Situations) विशेष रूप से उस वातावरण का जिससे व्यक्तित्व बनता और बिगड़ता है,– का मार्मिक चित्रण चिन्तनात्मक ढंग से करते हैं। **परख** से लेकर **मुक्तिबोध** तक उनके सभी उपन्यास व्यक्तित्व–विश्लेषण (पात्रों के) में लगे हुए हैं। यहाँ हम केवल **मुक्तिबोध** पर विचार कर रहे हैं। इस उपन्यास में सहाय के व्यक्तित्व का विश्लेषण '**मुक्तिबोध**' चिन्तन के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। सहाय का चिन्तन '**मुक्तिबोध**' का चिन्तन है। मुक्तिबोध किसका ? दायित्व से मुक्ति का, अधिकारों से मुक्ति का, सांसारिकता से मुक्ति का, मंत्रीपद से मुक्ति का (कामराज योजना के अनुसार) और इस मुक्ति का बोध व्यक्ति के चिंतन को प्रभावित करता

है। इस मुक्ति से व्यक्तित्व प्रभावित होता है। यह प्रभाव (मुक्तिबोध का) व्यक्तित्व को खण्डित करता है। यों कहिए कि व्यक्ति बिखर जाता है। इस बिखराव में आत्मबल का विश्लेषण होता है और यह विश्लेषण मानसिक चिन्तन के रूप में ही होता है। अतः मुक्तिबोध का चिन्तन, खण्डित व्यक्तित्व का चिन्तन है, ऐसा कहा जा सकता है। सहाय का चिन्तन, इस उपन्यास में इसी रूप में व्यक्त हुआ है।

सच तो यह है कि मुक्तिबोध का चिन्तन कबीर के शब्दों में जैसे व्यक्त हुआ है, वैसे होना चाहिए। कबीर ने इस सम्बध में कहा है :—

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जाको कछु न चाहिए, सोई साहंसाह ।।

सहाय भी वास्तव में यही चाहता है। यदि वास्तव में इस प्रकार का चिन्तन उसका हो जाता तो फिर उसका व्यक्तित्व खण्डित नहीं होता और तब कोई समस्या ही नहीं होती। किन्तु बात यह नहीं है। मुक्ति का बोध वास्तव में सहाय का उद्देश्य है किन्तु मुक्तिबोध के इस लघु अन्तराल में (कुछ दिनों के) वह अनुभव करता है कि स्थिति पर उसका नियंत्रण नहीं है। उपन्यास के अन्य पात्र अपने अपने व्यक्तित्वों के अनुरूप उसके (सहाय) व्यक्तित्व को प्रभावित करते रहते हैं। सहाय का व्यक्तित्व इन व्यक्तित्वों में (अन्य पात्रोंके व्यक्तित्वों में) स्थिति विशेष में, बिखर जाता है। व्यक्तित्व का (सहाय के) प्रभाव—मुक्तिबोध के पूर्व के व्यक्तित्व का प्रभाव—अन्य सब पात्रों पर है और सब पात्र उसी दृष्टि से सहाय को देखते हैं। मुक्तिबोध के प्रभाव से सहाय में जो परिवर्तन होता है, उसे अन्य पात्र स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। इसीलिए हर पात्र अपने अपने ढंग से सहाय को मुक्तिबोध से बचाना चाहते हैं और इस बचाने में सहाय से उनकी अपनी अपेक्षाएँ हैं। इन अपेक्षाओं के अनुरूप वे सहाय पर दबाव डालते हैं। इस दबाव में सहाय का मुक्तिबोध बिखर जाता है और इस बिखरने की कथा उपन्यास में प्रमुख रूप से कही गई है।

अब हम उपन्यास के अन्तरंग को देखें और सहाय के खंडित व्यक्तित्व का विश्लेषण करें। खण्डित इस अर्थ में कि सहाय का व्यक्तित्व स्थिति विशेष में अपना नियंत्रण खो चुका है। उपन्यास में सहाय मुक्तिबोध का चिंतन करता रहता है और यह चिंतन निष्कर्ष की स्थिति में नहीं है। मुक्तिबोध के चिंतन से जहाँ सहाय को मुक्ति मिल जाती है—जैसे ही

वह मंत्रीपद (मिनिस्टरी) स्वीकार कर लेता है - उपन्यास का अन्त हो जाता है ।

उपन्यास रात के तीसरे पहर से-- सहाय के मुक्तिबोध के चिंतन से— आरंभ होता है और उस रात के अगले चार दिनों की कथा उपन्यास में है। चौथे दिन की रात में यह उपन्यास समाप्त हो जाता है । यों कहिए कि एक सप्ताह से भी कम समय का उपन्यास है । कुल चार दिन की ही कहानी है । यह चारों दिन एक मिनिस्टर के हैं। ऐसे मिनिस्टर के हैं, जिसका दबदबा है और जिसकी साख से बड़े बड़े काम आसानी से हो जाते हैं। उपन्यास में अन्य पात्रों में सहाय की पत्नी राजश्री, सहाय की प्रेमिका नीलिमा, सहाय का पुत्र वीरेश्वर, सहाय की पुत्री अंजलि, अंजलि की सखी और रुसी युवती तमारा, अंजलि के पति कुंवरसाहब, असेंबली के सदस्य (सहाय के इलाके के) ठाकुर महादेवसिंह, राजनीतिक मित्र भानुप्रताप और बी. पी. महोदय हैं। इन सब पात्रों में पारिवारिक पात्र महत्त्वपूर्ण हैं। समस्याएँ पारिवारिक पात्रों की है । प्रमुख रूप से सहाय अपने पुत्र वीरेश्वर के प्रति चिन्तित हैं । सहाय की दूसरी पारिवारिक समस्या कुंवरसाहब के व्यवहार की है । समस्या की कथा उपन्यास में कम है । इस तुलना में समस्या का चिंतन अधिक दिया गया है और इस चिंतन को देखकर समस्या की गंभीरता को समझना पड़ता है । राजनैतिक दृष्टि से जो पात्र इस उपन्यास में आए हैं, वे केवल सहाय के मुक्तिबोध—राजनैतिक मुक्तिबोध— को दिखलाने के लिए आए हैं। इस मुक्तिबोध के कारण भानुप्रताप और बी. पी. दोनों चिन्तित दिखलाए गए हैं। इस से सहाय की शक्ति–राजनैतिक शक्ति–अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाती है । अन्त में सहाय मुक्तिबोध से मुक्ति पा जाता है और यह मुक्ति मंत्रीपद के स्वीकार करने में है । यों कहिए कि राजनैतिक दाँव-पेंच उपन्यास के कथानक में पर्दे के पीछे की कहानी है । लेखक ने यह कथा केवल इसलिए लिखी है और उसी सीमा तक लिखी है जिससे मुक्ति-बोध का चिंतन समझ में आ सके। वास्तविक कहानी मुक्तिबोध के उस चिंतन से संबंध रखनेवाली है जिस कारण सहाय का व्यक्तित्व बिखरता है और यह बिखराव पारिवारिक ढाँचे को प्रभावित करता है । इसमें सहाय के व्यक्तित्व का विश्लेषण पत्नी एवं प्रेमिका को लेकर जितना किया गया है, उसी तरह पुत्र और पुत्री के नाते कुंबरसाहब को लेकर भी किया गया है । अन्य पात्रों को इसी संदर्भ में स्थान मिला है जैसे वीरेश्वर के संदर्भ में ठाकुर को स्थान मिला है और अंजलि के संदर्भ में तमारा को स्थान मिला है ।

' मुक्तिबोध ' एक प्रकार से राजनैतिक ' मुक्तिबोध ' है। अतः राजनैतिक संदर्भ में सहाय के व्यक्तित्व के दोनों रूप उभर कर आए हैं। सहाय का राजनैतिक व्यक्तित्व नेगेटिव रूप में व्यक्त हुआ है। सहाय की राजनैतिक शक्ति से उपन्यास का हर पात्र परिचित है और उनके मुख से (उपन्यास के अन्य पात्रों के मुख से) सहाय के राजनैतिक व्यक्तित्व का उल्लेख हुआ है। यह सहाय के व्यक्तित्व का एक रूप है। सहाय के व्यक्तित्व का संबंध–उपन्यास के वर्तमान में (उन चार दिनों के वर्तमान में)—मुक्तिबोध से है और यह मुक्किबोध राजनैतिक संन्यास है। अतः सहाय का व्यक्तित्व बराबर है राजनैतिक व्यक्तित्व माइनस किया हुआ व्यक्तित्व अर्थात् मुक्तिबोध का व्यक्तित्व। ऐसी स्थिति में चारों ओर से दबाव पड़ना स्वाभाविक था और दबाव प्रमुख रूप से पत्नी एवं प्रमिका का है। इसी तरह पुत्र और दामाद का है। और इनके नाते अन्य पात्रों का है। सहाय के व्यक्तित्व की ये दोनों धाराएँ—राजनैतिक व्यक्तित्व एवं मुक्तिबोध का व्यक्तित्व—विपरीत दिशाओं में बहती रहती है। दोनों ही धाराएँ सहाय के व्यक्तित्व में विकल्प का निर्माण करती है। विकल्पों में संकल्प का अभाव है अतः संकल्प की ओर आने में सहाय का व्यक्तित्व विकल्पों से जूझता है और इस जूझने में वह चिन्तन करता रहता है और यही चिन्तन मुक्तिबोध का चिन्तन है और यही उपन्यास का मुख्य चिंतन है।

अब उपन्यास के चिन्तन को देखें। चिन्तन जैनेन्द्रजी के उपन्यासों का प्राण है। जैनेन्द्रजी इसी कारण ख्यात हैं और इसीलिए कुछ सीमा तक आलोचकों के शिकार भी हुए हैं। उनका चिन्तन दुरूह माना गया है। इस चिन्तन के कारण उनके उपन्यासों की रोचकता कहीं कहीं सूख गई है और कथा प्रवाह रुक गया है। इस चिन्तन में उनकी विचारधारा व्यक्त हुई है। अतः इस विचारधारा से सभी सहमत होंगे यह नहीं कहा जा सकता। यहाँ पर इस विवाद को विस्तार नहीं देना है। जैनेन्द्र के चिन्तन को मुक्तिबोध के संदर्भ में लिखना है।

चिन्तन के सम्बन्ध में लिखने से पूर्व चिन्तन का व्यक्तित्व से सम्बन्ध देखें। व्यक्तित्व का प्रमुख आधार और बल व्यक्ति का चिन्तन होता है। चिन्तन के अभाव में व्यक्तित्व का विश्लेषण संभव नहीं। किसी पात्र के चिन्तन में व्यक्तित्व के बनने और बिगड़ने की प्रक्रिया होती है। किसी पात्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उस समय तक नहीं किया जा सकता जब

तक कि हम उसके चिन्तन से परिचित नहीं हों और इस अर्थ में जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं।

इस उपन्यास में सहाय का चिन्तन प्रमुख होते हुए भी वीरेश्वर, राजश्री एवं नीलिमा के चिन्तन को भी दिखलाया गया है। व्यक्तित्व का निर्माण स्वतंत्र चिन्तन से होता है और स्वतंत्र चिन्तन को जीवित रखने की समस्या बहुत बड़ी समस्या है। वीरेश्वर पिता से सब कुछ पाकर भी स्वतंत्र चिन्तन नहीं कर सकता। उसका व्यक्तित्व दबा हुआ है और इसीलिए वह विद्रोही हो गया है और यह सहाय की एक समस्या है कि वीरेश्वर को अन्य प्रभावों से मुक्त रख अपनी इच्छानुरूप उसके व्यक्तित्व का निर्माण करें। इसी तरह कुंवरसाहब रिश्तेदार हैं... दामाद हैं... जिस पर सहाय का वश नहीं है। अतः कुंवरसाहब अपने श्वसुर के राजनैतिक प्रभाव से लाभ उठाकर व्यवसाय करना चाहता हैं। यह एक ऐसी समस्या है जिसमें सहाय का व्यक्तित्व नैतिक रूप से कुंवर के साथ नहीं रहता किन्तु दामाद होने के नाते उस पर उसका वश नहीं है. अतः सहाय का चिन्तन इस स्थिति में अनिर्णित रहता है और जब निर्णय हो जाता है (मंत्री बन जाने के बाद) तो वह कुंवरसाहब का साथ नहीं दे सकता।

जैनेन्द्र के चिन्तन में 'नारी' को स्थान प्राप्त ह। प्रमुख रूप से नारी के दो रूप जैनेन्द्र के उपन्यासों में मिलते हैं—पत्नी और प्रेयसी। और नारी के ये दोनों रूप नर के व्यक्तित्व को प्रभावित करनेवाले होते हैं। उनका यह त्रिकोण इस उपन्यास में भी है। सहाय, राजश्री एवं नीलिमा तीनों का त्रिकोण यहाँ है। इस प्रमुख त्रिकोण के साथ साथ गौण रूप से एक दूसरा त्रिकोण भी इस उपन्यास में है और यह त्रिकोण कुंवरसाहब, अंजलि और तमारा का है। जैनेन्द्र के त्रिकोण की खूबी यह होती है कि त्रिकोण के व्यक्तित्व व्यक्तिगत रूप से कहीं न कहीं खण्डित होते हैं। आपस में सहयोग के द्वारा खण्डित व्यक्तित्व एक दूसरे के लिए पूरक सिद्ध होते हैं और इसमें भी खूबी यह है कि नर का सम्बन्ध त्रिकोण की अन्य दो नारियों से पत्नी एवं प्रेयसी रूप में होता है और नारी के ये दोनों रूप नर के व्यक्तित्व के पूरक होते हैं। इनके अभाव में नर का व्यक्तित्व खण्डित रहता है। मुक्तिबोध में यही दिखलाया गया है। इस बात का प्रमाण यह है कि पत्नी सहाय के मुक्त क्षणों में जब वह मुक्तिबोध का चिन्तन गंभीर रूप से पत्नी के सामने प्रस्तुत करता है, उस समय राजश्री सहाय के सम्मुख उसकी (सहाय की) सच्चाई को व्यक्त कर देती

है। सहाय खुले रूप में पत्नी की बात तो नहीं मानता किन्तु उसका अन्तरंग इस बात को स्वीकार कर लेता है कि राजश्री के कथन में सच्चाई है। सहाय का मुक्तिबोध सहाय को निश्चित रूप से निर्णय लेने नहीं देता ऐसी स्थिति में कुछ निर्णय पत्नी करती है और कुछ निर्णय प्रेयसी नीलिमा करती है। और सहाय स्थिति विशेष में दोनों के विवेक को स्वीकार करते हुए अपने व्यक्तित्व को संभाल लेता है।

खण्डित एवं अखण्डित व्यक्तित्व चिन्तन सापेक्ष होते हैं। किसी पात्र के चिन्तन को देखकर ही उसके व्यक्तित्व को खण्डित एवं अखण्डित कहा जा सकता है। चिन्तन यदि दृढ़ है और पात्र यदि चिन्तन के अनुरूप आचरण करता है और यदि यह चिन्तन स्वतंत्र चिन्तन है, साथ ही पात्र में चिन्तन के आधार पर निर्णय लेने की शक्ति है तो हम यह कह सकते हैं कि व्यक्तित्व पूर्ण है या अखण्डित है। इस स्थिति के अभाव में व्यक्तित्व खण्डित होगा। वैसे तो व्यक्ति का व्यक्तित्व अखण्डित बहुत कम देखने में आता है। यह एक प्रकार से पूर्णता की स्थिति होती है। राम जैसे पात्र का व्यक्तित्व परिस्थिति विशेष में डिग गया है अतः साधारण मानव की कथा क्या ? संसार में प्रायः खण्डित व्यक्तित्व ही मिलते हैं। मानव अपूर्ण होने पर भी उसका प्रयास पूर्णता की ओर बढ़ने का होता है। पूर्णता की ओर बढ़ने में स्वतंत्र चिन्तन हो सहायक ही सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि व्यक्तित्व का निर्माण चिन्तन से होता है। और चिन्तन के ही आधार पर खण्डित एवं अखण्डित व्यक्तित्व की पहचान की जा सकती है।

अब हम मुक्तिबोध के चिन्तन को इस दृष्टिकोण से देखें। सहाय का चिन्तन इन शब्दो में देखें :– "मैं व्यक्तित्व चाहता हूँ, प्रत्येक में अपना व्यक्तित्व। कोई सम्बन्ध नहीं जिसमें व्यक्तित्व की हानि का समर्थन हो सके। लेकिन वह सब तत्त्वदर्शन जाने मेरे भीतर कहाँ सिमट रह गया था। मुझे विस्मय हुआ जब देखा कि मेरा मन भरा आ रहा है। हर भावुकता को मैं कमजोरी समझता हूँ। कमजोरी वह चरित्र की है, व्यक्तित्व की है। विधान निर्मम होता है, विधाता भी निर्मम होता है। उनके तले हम सब को भी ममताहीन और दृढ होकर चलना है। व्यक्तित्व को किसी हालत में कीमत में, नही दिया जा सकता। लेकिन यह सारा तर्कनिष्ठ भाव किसी तरह भी मेरे भीतर सिर नहीं उठा सका। और मैं अवसन्न रह गया यह अनुभव करके कि पत्नी ने स्वयं में निस्स्व बन कर मेरे स्व को ऐसे पराजित

कर दिया है कि मै कृतज्ञता में भीग उठा हूँ। [1] " इस चिन्तन का विश्लेषण करें। सहाय की इच्छा हैं कि सब का अपना अपना व्यक्तित्व हो। व्यक्तित्व का हनन सम्बन्धों को लेकर न हो। यह वह जितना अपने लिए चाहता है उतना औरों के लिए भी फिर वह पत्नी ही क्यों न हो? यह सहाय के चिन्तन का वह पक्ष है, जिसे वह अपने और औरों के व्यक्तित्व के लिए आवश्यक समझता है। इस चिन्तन में यदि वह दृढ़ रह सकता है तो उसका व्यक्तित्व खण्डित नहीं होगा। किन्तु उसका चिन्तन दृढ़ नहीं रहता। सहाय की उस रात की परेशानी यह थी कि (उपन्यास के आरंभ वाली रात) वह दायित्व से (मंत्रीपद से) मुक्त हो गया था। अत: मुक्तिबोध ने उसके जीवन को अस्तव्यस्त कर दिया। उसकी यह अस्तव्यस्तता रात के तीसरे पहर में भी नीन्द न आने से व्यक्त होती है और उस समय का चिन्तन उसका अपना मानसिक विश्लेषण है। वह अपने असन्तुलित व्यक्तित्व को सन्तुलित करने के प्रयास में है। इस प्रयास में पत्नी बीच में आकर उसके चिन्तन को प्रभावित करती. है। मुक्तिबोध का निर्णय पत्नी को पूछ कर नहीं किया गया फिर भी वह निर्णय जब पत्नी को ज्ञात हो जाता है तो पत्नी सब प्रकार से पति के व्यक्तित्व से एकता रखने के भाव से कह देती है–"विश्वास रखना, राजी तुम्हारी हैं और धरम–पत्नी कभी अलग से गिनती के लिए नहीं हुआ करती। उसका सब धरम पति के साथ होता है। " [2] इस प्रतिक्रिया से सहाय का चिन्तन और गहन हो उठता है और यही चिन्तन ऊपर की पंक्तियों में है। मुक्तिबोध की परेशानी भीतर की परेशानी है। व्यक्तित्व असन्तुलित हो गया है और वह सन्तुलित करने के प्रयास में हैं। बीच में अपने इस प्रयास में (सन्तुलित अवस्था में लौटने के प्रयास में) वह यह चाहता है कि पत्नी अपने विवेक द्वारा, जिसमें पत्नी का व्यक्तित्व बोल सके; उसको ऐसा बल प्रदान करें, जिससे वह मानसिक रूप में शान्त हो सके। अर्थात् पत्नी विरोध व्यक्त करे, प्रबल तर्क दें और अपने विवेक से उसे सन्तुलित बनाए। किन्तु पत्नी ऐसा कुछ नहीं करती। प्रथम तो आश्चर्य व्यक्त करती है फिर भावुक होकर समर्पित हो जाती है और पति का निर्णय उसका निर्णय है। इस स्वीकृति के साथ छुट्टी पा जाती है। इससे सहाय की परेशानी और बढ़ जाती है। यह इसलिए बढ़ जाती है कि उसका अपना निर्णय कमजोर है और इस कमजोरी को रोकने के बजाय पत्नी न उस

---

१. मुक्तिबोध-जैनेन्द्रकुमार (प्रथम संस्करण)–पृ. १६ और १७.
२. मुक्तिबोध–जैनेन्द्रकुमार (प्रथम संस्करण)-पृ. १६.

निर्णय को बलवान बना दिया। अतः अब उसे अपने आप से तो लड़ना ही ह, पत्नी के निर्णय से, जो कि उसके अपने कमजोर व्यक्तित्व का निर्णय है जो वास्तव में उसकी कमजोरी को और दुगना कर देते हैं, लड़ना पड़ता है। इस तरह यहाँ पर सहाय के चिन्तन का द्वन्द्व और गहन हो जाता है वह पत्नी के प्रति कृतज्ञ हो जाता है। उसकी यह कृतज्ञता सम्बन्ध के प्रति समर्पित भाव के लिए है। वह यह मानता है कि भावुकता कमजोरी है, चरित्र का पतन है और व्यक्तित्व का हनन है किन्तु यह सब मानकर उसका दर्शन स्थिर नहीं रहता। निष्कर्ष यह है कि समस्या का हल वह बाहर नहीं देखता। स्थिति कुछ ऐसी है कि उसकी दृढ़ता समाप्त हो जाती है। भीतर ही भीतर उसका व्यक्तित्व डगमगाता है। इस डगमगाने की व्याकुलता उसके चिन्तन में व्यक्त हुई है। सहाय का यह चिन्तन उसके उस क्षण के व्यक्तित्व की सच्चाई है और मानवीय दृष्टि से स्थिति सापेक्ष सत्य है। जैनेंद्रजी व्यक्ति के स्थिति सापेक्ष सत्य का उद्‌घाटन अनुभूत चिन्तन के रूप में करते हैं।

अब उपन्यास के शिल्प एवं उसकी रूपरेखा को देखें। यह भी देखें कि चिन्तन को कथानक में कैसे बाँधा गया है। उपन्यास का कथानक चार दिन का है। वैसे तो आज प्रयोग की दृष्टि से चौबीस घण्टे और बारह घण्टे के उपन्यास भी लिखे गये हैं और उनको देखते हुए चार दिन के कथानक में कोई विशेष बात नहीं लगती। चार दिन के इस कथानक का मूल आधार मुक्तिबोध (मंत्रीपद से त्याग) है। और उसमें भी मुक्तिबोध का चिन्तन प्रमुख है। अतः कथानक घटना प्रधान नहीं, चिन्तन प्रधान है। यों कहिए कि चिन्तन की (मुक्तिबोध के चिन्तन की) कहानी उपन्यास में है और उपन्यास का शिल्प इस चिन्तन से प्रभावित है।

उपन्यास में घटित घटनाओं को कम लिखा गया ह। यही नहीं कथानक के बहुत से संदर्भ लिखे नहीं गये हैं और उपन्यासकार ने उन सब को लिखने की आवश्यकता नहीं समझी। कथानक का आरम्भ कैसे होता है, सहाय रात के तीसरे पहर में अपने कमरे में चिन्तन कर रहे हैं। कुछ लिखना चाहते हैं, अध्ययन करना चाहते हैं। इस चिन्तन की प्रक्रिया में ही चिन्तन के कारण जो सहाय के अनुभूत विचार हैं, भावात्मक रूप में व्यक्त हुए हैं। 'एक' की संख्या में लिखे इस प्रथम अध्यांय में प्रमुख रूप से चिन्तन व्यक्त हुआ है और इस चिन्तन की बारीकियो में कथानक का विश्लेषण हुआ है। यह कथानक घटित कथानक नहीं है। कथानक समस्या का अंग

हैं और चिन्तन का कारण है, जो सहाय के अपन आत्मावलोकन में एवं पत्नी, एवं पुत्री के प्रतिक्रियात्मक रूप में व्यक्त हुआ है। पत्नी और पुत्री भी इस बात से चिन्तित है (सहाय के मुक्तिबोध से) और फलस्वरूप उनका चिन्तन उनके व्यक्तित्वों के अनुरूप है। और लेखक ने उसी को कथानक का रूप दिया है। और बाद का कथानक देखें तो उसमें विचारों के आदान प्रदान के रूप में जिसमें व्यक्तित्व आपस में टकराते रहते हैं, कथा लिखी गई है। ठाकुर के साथ हो या वीरेश्वर के साथ हो; तमारा हो या अंजलि हो, नीलिमा हो या कुंवर साहब हो सभी सहाय के मुक्तिबोध से कहीं न कहीं अपने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप चिंतित हैं। वे अपनी अपनी अपेक्षाओं को लिए हुए सहाय से सम्पर्क में आकर सहाय के चिंतन को प्रभावित करते हैं। इस तरह सारा उपन्यास चिंतन के रूप में लिखा गया है और उपन्यास का शिल्प इसीलिए बदला हुआ है।

अब अन्त में यह देखें कि व्यक्तित्व का बिखरना, टूटना या खण्डित होना उपन्यास में कैसे दिखलाया गया है। वैसे इस विषय में कुछ संकेत ऊपर दे दिए गए हैं किन्तु यहाँ उदाहरण देते हुए इस बात को स्पष्ट करना है। सहाय मंत्री था (इस उपन्यास की घटित घटनाओं से पूर्व)। उसे यह मंत्री पद छोड़ना पड़ा। यों कहिए कि पदमुक्त होना पड़ा। इस पदमुक्ति का बोध उसे केवल चार दिन तक रहा। चार दिन के बाद वह फिर मंत्रीपद स्वीकार कर लेता है अतः चार दिन के बाद पदमुक्ति का बोध समाप्त हो जाता है। उपन्यास में चार दिन के जीवन का विस्तार है और विस्तार मुक्तिबोध के चिन्तन का परिणाम है। इस काल में सहाय का व्यक्तित्व बिखरा हुआ है, टूटा हुआ है। अपने इस बोध को वह चिन्तन के आधार पर सही रूप देना चाहता है, जैसे ठाकुर से कहता है कि वह गांव में पहुँचना चाहता है और मानसिक शान्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाह रहा है। मुक्तिबोध को वास्तव में अन्तरंग में अनुभव करने के लिए वह मध्यरात्रि में गांधीजी की समाधि के पास जाता है और 'हे राम' शब्द के वास्तविक चिन्तन को गले उतारने का प्रयत्न करता है। किन्तु यह चिन्तन कितना क्षणिक है और इसमें दृढता कितनी कम है यह समझने में देर नहीं लगती अतः मुक्तिबोध का चिंतन अखण्डित व्यक्तित्त्व का चिंतन है, यह कदापि नहीं कहा जा सकता। ऐसा प्रयास एक बार वह नीलिमा के साथ सूरजकुंड पहुँचकर भी करता है। मुश्किल से एक कप काफी पीने के बाद मुक्तिबोध के चिंतन को यथार्थ रूप में अनुभव करने के लिए नीलिमा का साथ छोड़कर

लौट आता है। किंतु उसके व्यक्तित्व की यह स्थिरता कितनी क्षणिक है यह समझने में देर नहीं लगती। उसका व्यक्तित्व बिखर जाता है और अपनी बिखराहट को वह स्वीकार करना नहीं चाहता। उसकी पत्नी इस बात को पहचान लेती है और उसी के माध्यम से नीलिमा से फिर संपर्क होता है। फोन पर एवं पत्र द्वारा अंत में सहाय अपने किए को भूल जाने के लिए नीलिमा से कहता है और नीलिमा का उस समय का उत्तर है– 'चलिए पतन से आपने. अपने को बचा लिया'[1] इससे स्पष्ट है कि मुक्तिबोध का व्यक्तित्व बिखरा हुआ है। उसमें इतना साहस नहीं कि वीरेश्वर को या कुंवरसाहब को अपने पास आने के लिए कहें। वीरेश्वर की धृष्टता को वह सह लेता है और इसी तरह कुछ सीमा तक नीलिमा भी उस पर अधिकार प्राप्त कर लेती है। पत्नी उसके व्यक्तित्व की कमजोरी से परिचित है और वह जानती है कि नीलिमा से ही ये ठीक होंगे। यदि नीलिमा इन्हें (सहाय के) ठीक नहीं कर सकीं तो फिर इनका सन्तुलन और बिगड़ जायगा। पत्नी का नीलिमा से सहयोग इस नाते है कि पति का सन्तुलन बना रहे। किन्तु इसी तरह नीलिमा भी हार मानना नहीं चाहती। उसका विश्वास है कि पत्नी से प्रेयसी बलवान होती है और पत्नी उदार हो ही नहीं सकती। यहाँ नारी के इन रूपो पर विस्तृत लिखना नहीं है। संक्षेप में इतना कहना है कि सहाय का व्यक्तित्व टूटा हुआ है और उसके इस खण्डित व्यक्तित्व में नारियों का योगदान (पत्नी एवं प्रेयसी का) होता है। यह योगदान इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि सहाय के अपने निजी एवं मौलिक क्षणों मे जब कि सहाय की सहज प्रवृत्तियाँ जागृत रह सकती है, एसे क्षणों में उसका चिन्तन उसे सहज जीवन से दूर ले जानेवाला सिद्ध होता है। ऐसे समय व्यक्तित्व को संतुलित बनाने के लिए सहज जीवन की ओर आना आवश्यक हो जाता है और इन क्षणों में नर के व्यक्तित्व को नारी ही पूर्णता प्रदान कर सकती है। नारी के अभाव में नर का व्यक्तित्व टूटा हुआ या अखण्डित रहता हैं। कम से कम मुक्तिबोध में यह दिखलाई देता है। इसी तरह पत्नी का (राजश्री का) और प्रेयसी का (नीलिमा का) व्यक्तित्व खंडित है। पत्नी अपने पत्नी रूप को बनाए रखने के लिए ही नीलिमा से सहयोग करती है। किसी पत्नी का प्रेयसी से सहयोग असाधारण बात है किन्तु यह यहाँ उपस्थित है अर्थात् पत्नी स्वंय अपने में कुछ कमी का (अपने व्यक्तित्व में) अनुभव करती है और वह जानती है कि इसी कमी के कारण सहाय नीलिमा के पास दौड़ता है अतः अपने खण्डित व्यक्तित्व के

---

१. मुक्तिबोध—जैनेन्द्रकुमार (प्रथम संस्करण) पृ. ७५.

कारण वह नीलिमा से सहयोग करती है । इसी तरह नीलिमा का व्यक्तित्व भी खण्डित है । खण्डित इस अर्थ में कि वह पत्नी से पराजित अनुभव करती है और चाहती है कि अपने मुक्त क्षणों में सहाय के साथ रहकर अपने सपनों को पूरा करें । सहाय को मुक्त क्षणों में पाना बहुत मुश्किल है । उसकी अनन्त समस्याएँ हैं अतः वह सहाय के कारण और सहाय के लिए सहाय की उन समस्याओं में अधिकारपूर्वक हस्तक्षेप कर सहाय को अपने अनुरूप पाने का प्रयास करती रहती है। सहाय नीलिमा को दरसाहब (नीलिमा के पति) से जितना मुक्त देखता है उतना वह अपने को राजश्री से मुक्त अनुभव नहीं करता । (वास्तव में राजश्री उसे मुक्त रखती है किन्तु सहाय का अन्तर्द्वन्द्व इस बात को स्वीकार नहीं करता) इसका प्रमाण यह है कि राजश्री का मजाक उसे अच्छा नहीं लगता । नीलिमा स्वयं जितनी मुक्त है उतनी मुक्त वह प्रेमी को नहीं देखती। अतः अपने व्यक्तित्व को बाँटकर वह सहाय से समझौता कर अपने व्यक्तित्व को पूर्ण बनाने का प्रयास करते रहती है । नीलिमा वर्तमान में जीती है । उसका दृष्टिकोण लौकिक और भौतिक है । आदर्शों से वह दूर है । ऐसी स्थिति में उस जैसा प्रेमी न मिले तो उसका व्यक्तित्व भीतर टूटता ही है और फिर समझौता होता ही है । सहाय का जो व्यवहार नीलिमा के प्रति है, वह एक प्रेमी का जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं है । इसीलिए अपने सपनों को पूर्ण करने के लिए सहाय को राजनीति से सन्यास लेने देना नहीं चाहती । कथा लम्बी होगी । सार बात यह है कि उपन्यास के पात्र एक दूसरे के व्यक्तित्वों को प्रभावित करते हैं । अपने आप में खण्डित हैं और खंडित होने का चिन्तन प्रमुख रूप से उपन्यास में उभरा है । अतः यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध खण्डित व्यक्तित्वों का चिंतन है ।

● ●

(मराठवाडा यूनिवर्सिटी जरनल, वाल्यूम ९, सख्या १, जुलाई १९६९ ई. में, प्रकाशित)

हजारीप्रसाद द्विवेदी | बाणभट्ट की आत्मकथा

ललित भावोच्छ्‌वासों की कथा

● ललित भावोच्छ्वासों की कथा

बाणभट्ट की आत्मकथा हजारीप्रसाद द्विवेदीजी का प्रसिद्ध उपन्यास है। यह उपन्यास नामकरण की दृष्टि से 'आत्मकथा' है और शैली इसकी डायरी शैली है, (स्वयं लेखक ने उपसंहार में इस कथन को स्वीकार किया है), द्विवेदीजी द्वारा बाणभट्ट की आत्मकथा लिखी गई है अत: जीवनी है (आत्मकथा स्वयं की लिखी जाती है औरों की कथा लिखना जीवनी लिखना है), यह सब होने पर भी जिस रूप में यह ख्यात है, वह उपन्यास है। कथावस्तु, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, शैली एवं उद्देश्य सभी तत्त्व मिल जाएँगे और आखिर उपन्यास ही कहा जायगा। जायगा क्या ? कहा जा रहा है। उपन्यास के आरम्भ में कथा मुख है और अन्त में उपसंहार है। इस अथ और इति के बीच बीस उच्छ्वासों में यह आत्मकथा (उपन्यास) लिखी गई है। इस उपन्यास का गठनात्मक विश्लेषण डॉ. रमेशकुन्तल मेघ ने प्रस्तुत कर दिया है अत: उसी विषय को फिर से नहीं दोहराना है। उनका यह विश्लेषण विस्तृत है और अध्ययन की दृष्टि से अनेक आयामों को छूनेवाला है।[1] बाणभट्ट की आत्मकथा की तरह मेघजीने चारुचंद्र लेख पर भी " मध्यकालीन इतिहासखंड अेक बत्तुल दर्पण " लेख लिखा है और इस लेख के अन्त में 'पुनश्च' के अन्तर्गत मेघजी लिखते हैं-- " लेखक के दोनों उपन्यासों को पढ़ने के बाद हमें यह लगता है कि वे गल्प (फिक्शन) की एक नई विधा की खोज कर रहे हैं ·· लेखक की विषयवस्तु में कथा, चारुत्व (लालित्य) और निबन्ध (आलोचना, भावोच्छ्वास, भाषण आदि) का मेल है। इसीलिये उनकी दोनों कृतियों के

---

१. देखिए अलोचना २८-पृ. १०४ से १२३. और आलोचना २९ पृ. १०७ से १२८.

आधार पर हम यह प्रपत्ति दे सकते हैं कि उन्होंने उपन्यास के आगे और समानान्तर अेक काव्यात्मक विधा की भूमि खोजी है। इस नई विधा को हम 'चारु कथा लेख' कहें—— उपन्यास नहीं। दोनों कृतियों में चारुत्व अर्थात् सृजनात्मक साहित्य का सौंदर्य गुण है, कथात्मकता (गल्प) भी है एवं लेख (निबन्ध की विविध विधायें, जैसे भाषा, आलोचना, पत्र, डायरी आत्मालाप आदि) भी। हिन्दी में इस नई विधा के प्रथम अंकुरण के प्रति सजगता की अपेक्षा है। उपन्यास के चौखटे में फिट करनेपर लेखक की दोनों कृतियों के प्रति अपेक्षित मीमांसालोचन नहीं खुल सकेंगे, क्योंकि उनकी रूप-संरचना बदली हुई है।"[1] दोनों उपन्यासों पर विस्तृत रूप से लिखने के बाद मेघ-जीने यह अनुभव किया है। मेघजीके इस कथन को आधार बनाकर ही बाण-भट्ट की आत्मकथा का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी से जब यह पूछा गया कि "आप अपने उपन्यासों को गप मानते हैं?" तो उनका उत्तर यह था——'शुद्ध गप। गप ही गल्प है। सूखा रिसर्च लिखना पड़ता है। क्या करें, रोजगार यही है। लेकिन लिखते हुए कलम कसमसाते रहती है। अपने लेखन को भावप्रवण होने से बचाना दुष्कर प्रतीत होने लगता है, किन्तु किसी तरह बचाना ही पडता है नहीं तो वे शोध-छात्र जिन्हें हम भावप्रवण होने की शिक्षा देते रहते हैं, यही कहें कि 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'। जब मैं शान्ति-निकेतन में था तो ऐसा आदेश हुआ कि प्राचीन भारत के कला-विनोद के विषय में कोई ऐसी पुस्तक लिखो जो दर्शन-चिंतन से बोझिल न हो, सरस और सुग्राह्य हो। मैंने पुस्तक लिखी जो बाद में प्रकाशित भी हुई। लेकिन लिखते हुए रह-रहकर मन में यह कचट उठती थी कि सूखा हो गया। आखिर शोध प्रबन्ध सरस हो तो कैसे और कितना? इसलिए सोचा कि अब इसी विषय में गप बनाओ। यही गप बाणभट्ट की आत्मकथा के नामसे प्रकाशित हुई।"[2] उपन्यासकार की इस आत्मस्वीकृति में सहज रचना की अन्तःस्फूर्त प्रवृत्ति का उल्लेख है। परिश्रम शोध की दृष्टि से किया गया। भारत के प्राचीन कला-विनोद पर पुस्तक लिखनी थी। अतः उपन्यास का मुख्य उपजीव्य विषय 'कला-विनोद' है, इस बात में सन्देह नहीं किया जा सकता। और यह कलात्मक विनोद इस युग का नहीं, मध्यकालीन है। कालिदास के समय से लेकर बाणभट्ट के समय तक फैला हुआ है।

१, आलोचना ३०-पृ. १३७.

२. आलोचना ३९- पृ. ४४.

इस समय के कलात्मक विनोद का अध्ययन पहले शोध की दृष्टि से किया गया और जब यह अध्ययन पुस्तक रूप में बद्ध हुआ तो फिर भी कहने योग्य बहुत कुछ रह गया जो शोध की सीमा में–निबन्धों के रूप में–नहीं समा सकता था और वही भाग जो व्यक्तित्व का अंग बन गया था फिरसे बाणभट्ट के रूप में अवतरित हो (यहाँ द्विवेदीजी स्वयं बाणभट्ट हो गए हैं) अपनी आत्मकथा के रूप में बाहर आया।

कथामुख और उपसंहार के बीच बीस उच्छ्वासों में यह आत्मकथा लिखी गई है। यहाँ और सब वातों के साथ साथ उच्छ्वास का शीर्षक भी अपने आप में विशेष अर्थ रखनेवाला है। उच्छ्वास का सीधा सा अर्थ है ऊपर खींची या छोड़ी जानेवाली साँस और इस आधार पर और भी अर्थ हैं जैसे आह भरना, प्रोत्साहन, ढाढ़स, मरण, जीवन आदि। ग्रंथका अध्याय अर्थ भी है और इस अर्थ में 'आत्मकथा' में प्रयुक्त है। कहना यहाँ यह है कि कलात्मक विनोद का अध्ययन करते करते द्विवेदीजी ने जो साँस (कलात्मक विनोद की साँस) भीतर ले ली थी उसे उच्छ्वासित (मुक्त इस अर्थमें) करने का अवसर उन्हें, इस उपन्यास में मिला और इस अर्थ में उच्छ्वास शीर्षक उपयुक्त है।

अब इन उच्छ्वासों का जीवन देखें। आत्मकथा बाणभभट्ट की है अतः उच्छ्वास उसी के माने जाएँगे। तर्क ही तो है और गलत भी नहीं। ये उच्छ्वास बाणभट्ट के अपने उच्छ्वास होनेपर भी इनमें अन्य पात्रों के उच्छ्वास भी हैं। बाणभट्ट कवि हैं, उसकी वृत्ति ललित है, वंशानुगत संस्कारों से युक्त है, नारी के प्रति उसका दृष्टिकोण उदात्त है, नारीवर्ग के भीतर अर्थात् उनके बीच वह रहता है और अपने दृष्टिकोण के कारण वह स्त्री शरीर को देव मन्दिर के समान पवित्र मानता है। बाण की इस आत्मकथा में नारी-कथा है। और नारी की यह कथा (उपन्यास की समस्या की दृष्टि से) मुख्य कथा सी लगती है। निपुणिका, भट्टिनी, सुचरिता एवं महामाया इन चार प्रधान नारियों की कथा इस उपन्यास में है। ऐसी स्थिति में बाण के उच्छ्वास नारी पात्रों के उच्छ्वास लगने लगते हैं और वास्तव में ऐसा हुआ भी है।

आत्मकथा के उच्छ्वास भावों के उच्छ्वास हैं। भावनाएँ प्रधान रूप से नारी की हैं और उन भावनाओं को वाणी बाणभट्ट द्वारा (आत्मकथा उसी की होने के नाते) प्राप्त हुई है। इन भावनाओं में प्रेम तत्त्व प्रधान

है । प्रेम के कारण भावनाएँ ललित हो गई हैं और इसीलिए इस उपन्यास के उच्छवास, ललित भावोच्छ्वास, हो गए हैं । बाणभट्ट की यह आत्मकथा ललित भावोच्छ्वासों की कथा हो गई है ।

अब उपन्यास के प्रेम-तत्त्व को समझें । इस भावकी विशेषताएं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लोभ और प्रीति निबंध में बतलाई हैं । इसी निबंध के अन्त में वे लिखते हैं- " यही एक ऐसा भाव है जिनकी व्यंजना हँसकर भी की जाती है और रोकर भी, जिसके व्यंजक दीर्घ निःश्वास और अश्रु भी होते हैं तथा हर्षपुलक और उछल-कूद भी । इसके विस्तृत शासन के भीतर आनंदात्मक और दुःखात्मक दोनों प्रकार के मनोविकार आ जाते हैं । साहित्य के आचार्यों ने इसी से शृंगार के दो पक्ष कर दिये हैं-संयोगपक्ष और वियोगपक्ष । कोई और भाव ऐसा नहीं है जो आलम्बन के रहने पर तो एक प्रकार की मनोवृत्तियाँ और चेष्टाएँ उत्पन्न करें और न रहने पर बिलकुल दूसरे प्रकार की... मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों पर लोभ या प्रेम के शासन का यही दीर्घ विस्तार देखकर लोगों ने शृंगार को रसराज कहा है । "[1] '**बाणभट्ट की आत्मकथा**' उपन्यास एक अर्थ में प्रेम तत्त्व की महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं को व्यक्त करनेवाला उपन्यास है । डॉक्टर देवराज उपाध्याय ने साहित्य कोश में 'उपन्यास-रोमांस' शीर्षक के अंतर्गत रोमांटिक उपन्यास की कुछ विशेषताएँ बतलाई हैं । उनका कहना है कि हिंदी में विशुद्ध रोमांस (उपन्यास) नहीं है । रोमांस की विशेषताएँ उनके अनुसार ये है ' रोमान्स (उपन्यास) में जो पात्र होंगे वे, ऐसे तो न होंगे, जो इस पार्थिव जगत में पाए ही न जा सकें, पर वे लाखों में एक होंगे और उनका दर्शन विरल होगा । रोमान्स (उपन्यास) में कथा काव्य के उपकरणों के सहारे अपने स्वरूपको प्रकट करती है । काव्य के क्षेत्र में जब कथा साग्रह प्रवेश कर, वहाँ के तत्त्वों को अनुरूप बनाकर उन्हें अपनी सेवामें नियोजित करती है तो रोमान्स (उपन्यास) की नींव पड़ने लगती है । उसमें कथा थोड़ी बहुत जटिल हो जाती है । पात्रों की अधिकता रहती है । अनेक कथाएँ आकर जुड़ने लगतीं हैं पर कवित्वपूर्ण और भावपूर्ण वातावरण भी बना रहता है । वीरों की, अलंकृत साज-सज्जा की, रणक्षेत्र प्रयाण की तथा युद्ध की झंकार की विस्तृत विवृति पाठक की कल्पना को तृप्त करती रहती है । रोमान्स

---

१. चिन्तामणि-प्रथम भाग-आचार्य रामचंद्र शुक्ल-पृ. ९६. (१९६२ ई. का संस्करण)

उपन्यासों की वर्ण्यवस्तु बहुत हो सीमित होती ह । पात्र व्यक्ति नहीं, टाईप (प्रकार) होते हैं। नायक उच्च वंशोत्पन्न राजा अथवा धर्मात्मा होता है तथा नायिका सुन्दरता की देवी-देखनेवालों के हृदय में शौर्यभाव को जागरित करनेवाली देवी। पात्र किसी महत्त्वपूर्ण वस्तु की खोज में रहते हैं, वीरव्रती होते हैं, विपन्नों, विशेषतः नारियों का उद्धार करना तथा प्रेम की कठिन परीक्षा में अपने प्रतिद्वन्द्वियों को मात देना उनका व्रत होता हैं। क्रीडा समारोह, रणप्रयास, श्मशान-यात्रा के दृश्य धार्मिक युद्व इत्यादिका वर्णन होता है। इन सब के बीच एक सुन्दरी कन्याकी प्रतिष्ठा होती है। यही रोमान्स के उपकरण हैं"[1] रोमांस के इन तत्त्वों को लिखने के बाद उपाध्यायजी का यह कहना है कि हिन्दी में विशुद्ध रोमांस एक भी नहीं है। चण्डीप्रदेश हृदयेश का नाम लेना वे इस दृष्टि से उपयुक्त समझते हैं।[2] प्रेम तत्त्व एवं रोमांस के सम्बन्ध में ऊपर जो कुछ लिखा गया है, इस आधारपर यदि इस उपन्यास को देखा जाय तो यह उपन्यास अपनी कुछ विशेषताओं के कारण रोमांस कहा जा सकता है और रोमांस में प्रेम-तत्त्व है। कम से कम डाक्टर देवराज उपाध्याय ने रोमांस की जिन कतिपय विशेषताओं का उल्लेख किया, वे विशेषताएं इस उपन्यास में पाई जाती हैं। रोमांस के उपकरण बाणभट्ट की आत्मकथा में हैं। यों कह सकते हैं कि रोमांस के कारण ही उपन्यास ललित हो गया है।

रोमांस (इस उपन्यास का प्रेम-तत्त्व) की दृष्टि से इस उपन्यास को परखें। रोमांस में प्रेम का सौंदर्य पक्ष प्रधान होता है, यह स्वीकार करना पड़ेगा। इसी तरह सौंदर्य का बोध कलाओं से होता है, यह भी मानना पड़ेगा। इन सब का मेल इस उपन्यास में है। सौंदर्य का प्रधान पात्र नारी है और इसी आधार पर स्त्री-महिमा एवं स्त्री-सौंदर्य दोनों का यह उपन्यास (बाणभट्ट की आत्मकथा) विश्वकोश है ऐसा रमेशकुन्तल मेध का कहना है।[3] उनका यह कथन उपयुक्त ही है।

नारियों का उद्धार करना एवं उन्हें उचित स्थान दिलाना यह उपन्यास की मुख्य समस्या है। कथावस्तु एवं घटनाएँ इसी बात को स्पष्ट करती हैं। उद्धार करने का अर्थ ही यही है कि नारी अपहृत है, समाज का, धर्म का एवं राजशासन का उस पर (नारी पर) अत्याचार हो रहा है।

---

१. साहित्यकोश भाग १-पृ. १६७ (द्वितीय संस्करण)
२. -वही-पृ. १६७,
३. आलोचना-२८-पृ. १२१.

युद्ध उसी के लिये होते हैं। अन्तःपुर में एक बार जिसका प्रवेश हो जाता है फिर उसका छुटकारा सहज संभव नहीं। भट्टिनी एवं महामाया दोनों ही अन्तःपुर में थीं और दोनों के उद्धार की कथा उपन्यास में है। निपुणिका यद्यपि इस रूप में अपहृत नहीं तथापि वह विधवा है, समाज की सताई हुई है और भागी हुई है। इसी तरह सुचरिता यौवनावस्था में परित्यक्ता है। वेश्या रूप में तीन नारियाँ है—मदनश्री, चारुस्मिता और विद्युतपांगा। इन नारी पात्रों में (अपहृत, उपेक्षित, व्यावसायिक एवं पीड़ित) नारी धर्म के सर्वसामान्य गुणों की प्रतिष्ठा करने का प्रयास उपन्यास में हुआ है। इस प्रयास में सौंदर्यपक्ष (नारी का सौंदर्य पक्ष) प्रधान रूपसे उभर आया है और इसीलिए ये उपन्यास रोमांटिक हो गया है।

नारी, सौन्दर्य का मूर्त रूप है और उसे उस रूप में (सौन्दर्य के मूर्त रूप में अभिव्यक्त रूप में) आंका जाना चाहिए। इस मूल्यांकन की ओर रचना का झुकाव दिखलाई देता है। इस सम्बन्ध में उपन्यास से कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं:

'सारे जीवन मैंने स्त्री शरीर को किसी अज्ञात देवताका मन्दिर समझा है।' (बाणभट्ट का कथन, द्वितीय उच्छ्वास)

'भट्ट तुम मेरे गुरु हो, तुमने मुझे स्त्री धर्म सीखाया है'। (निपुणिका का कथन, वही उच्छ्वास)

'भट्ट अबतक तुमने नारी में जो देवमन्दिर का आभास पाया था, वह तुम्हारे भोले मन की कल्पना थी। आज मैं तुम्हें सचमुचका देवमन्दिर दिखाऊँगी। परन्तु उसके लिए तुम्हें छोटे राजकुल में मेरी सखी बनकर प्रवेश करना होगा और कीचड़ में धँसे हुए उस मन्दिर का उद्धार करना होगा।' (निपुणिका का कथन, वही उच्छ्वास)

'पुरुष वस्तुविच्छिन्न भावरूप सत्यमें आनन्दका साक्षात्कार करता है, स्त्री वस्तु—परिगृहीत रूप में रस पाती है। पुरुष निःसंग है, स्त्री आसक्त; पुरुष निर्द्वन्द्व है, स्त्री द्वन्द्वोन्मुखी; पुरुष मुक्त है, स्त्री बद्ध। पुरुष स्त्री को शक्ति समझकर ही पूर्ण हो सकता है; पर स्त्री, स्त्री को शक्ति समझकर अधूरी रह जाती है ... स्त्री प्रकृति है। वह, उसकी सफलता पुरुष को बाँधनेमें है किन्तु सार्थकता पुरुष की मुक्ति में है' (महामाया का कथन, षष्ठ उच्छ्वास)

'मैं यदि कवि होता, तो क्या करता, आप जानती हैं ? मैं ऐसा गान लिखता कि इस कोनेसे उस कोने तक देवपुत्र की नयनतारा का धवल यश फैल जाता और इस पवित्र देवप्रतिमा को अपमानित करनेका साहस किसी को न होता। पर देवि, मैं कवि नहीं हूँ' (बाणभट्ट का कथन, अष्टम उच्छ्वास)

'नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। यह धर्म—कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य व्यवस्थापन सब फेन–बुद्बुद्की भाँति विलुप्त हो जाएँगे, क्यों कि नारी का इसमें सहयोग नहीं है। यह सारा ठाट–बांट संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा।' (महामाया का कथन, एकादश उच्छ्वास)

'पिण्डमें शिवका प्राधान्य ही पुरुष है और शक्तिका प्राधान्य नारी है... यह जड़ मांस–पिण्ड न नारी है, न पुरुष। वह निषेध रूप तत्त्व ही नारी है... जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की, अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है वही नारी है। जहाँ कहीं दुःख–सुखकी लाख—लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं नारी तत्त्व है, या शास्त्रीय भाषा में कहना हो तो 'शक्ति तत्त्व' है। (महामाया का कथन, एकादश उच्छ्वास)

'तुम महाशक्ति का प्रतीक हो, मैं तुम्हें त्रिपुरभैरवी के रूप में देखकर कृतार्थ हूँगा। मैं सारे जीवन नारी की उपासना करता रहा हूँ। मेरी साधना अपूर्ण रह गई है। तुम विशुद्ध नारी बनकर मेरा उद्धार करो––विशुद्ध नारी––त्रिपुरभैरवी।' अवधूतका कथन पंचदश उच्छवास

"नारी से बढ़कर अनमोल रत्न और क्या हो सकता है, पर उससे अधिक दुर्दशा किसकी हो रहीं है ? मुझसे निपुणिका क्या अशा रखती है ? अवधूतपाद की साधना इसलिए अधूरी है कि उन्हें विशुद्ध नारी का सहयोग नहीं मिला और निपुणिका की बलिदाना–कांक्षा इसलिये अपूर्ण है कि उसे पुरुष का करावलम्ब नहीं मिला। सत्य क्या है ?" (बाणभट्टका कथन, षोडश उच्छ्वास) ... ...आदि।

नारी के प्रति कुछ महत्त्वपूर्ण कथन ये हैं। इस तरह के कथन और भी हैं। इन कथनों को संदर्भ विशेष में रखकर मीमांसा करने के लिए यहाँ स्थान नहीं। यहाँ इतना ही कहना है कि कीचड़ में फँसी हुई अेवं अपहृत नारी धर्म को देखने का प्रयास उपन्यास में है और इस नाते नारियों का उद्धार करना आवश्यक माना गया है।

नारी धर्म की दृष्टि से निपुणिका का चरित्र देखें। निपुणिका विधवा है, भागी हुई है। जिस समाजके बीच निपुणिका रहती हुई दिखलाई गई है, वह समाज पतित है, यों कहिए कि कीचड़ में फँसी हुई नारियों के बीच वह रहती है। नाटक—मण्डली में (बाणभट्ट के साथ), स्थानेश्वर में पान की दूकान में तथा अन्तःपुर में रहना (छोटे राजकुल के अन्तःपुर में) उसके चरित्र को समझने के लिअे काफी प्रमाण है। यही नहीं, वेश्याओं अेवं नर्त–कियों से उसका परिचय है, कंचुकी एवं क्षीबा बालाओं को वह जानतीं है। यों कहना चाहिअे कि पंक में फंसी हुई नारियों के बीच रहकर अपना निर्वाह करते हुए उसने अपने, आपको उनमें बहाया है। एक प्रकार से अपहृत नारियों को उसने समझा है। निपुणिका पुरुष को समझने में भूल नहीं करती। उज्जयिनी में रहकर, बाणभट्ट की नाटक मण्डली में काम करते हुए उसकी श्रद्धा बाणभट्ट पर हो गई। बाणभट्ट नारी– देह को देवमन्दिर के समान पवित्र मानता है। उसके इस मानने का प्रमाण निपुणिका को उज्जयिनी में मिल गया। बाणभट्ट ने निपुणिका को कलुषित नहीं समझा। निपुणिका के नारीधर्म की उसने प्रतिष्ठा की। इस प्रतिष्ठा के पुरस्कार में निपु-णिका ने बाणभट्ट के प्रति अपने को होम किया। यह कथा बहुत लम्बी है। कथा न कहकर निपुणिका के नारीधर्म के सम्बन्ध में कहें। इसे पहचानने के लिए निपुणिका और बाणभट्ट के सम्बन्ध को समझना होगा। बाणभट्ट के प्रति निपुणिका का विचार है –– "मैं जो कुछ हूँ, उसके सिवा कुछ और हो ही नहीं सकती थी। परन्तु तुम जो कुछ हो, उससे कहीं श्रेष्ठ हो सकते हो। इसलिअे तुम्हें कहती हूँ, तुम यहाँ मत रुको। मैं पश्चात्ताप करूँ तो जिस नरक में पड़ी हूँ, वहाँ भी स्थान नहीं मिलेगा। तुम सम्हल जाओ, तो जिस स्वर्ग में स्थान पाओगे, उसकी कोई कल्पना मेरे मन में भी नहीं है। मैंने दुनिया कम नहीं देखी है। इस दुनिया में तुम्हारे जैसे पुरुषरत्न दुर्लभ हैं।" (द्वितीय उच्छ्वास से) निपुणिका के इस कथन से स्पष्ट है कि वह अपने को बाणभट्ट के योग्य नहीं समझती। इस पर भी बाणभट्ट उसकी प्रतिष्ठा नारी के रूप में (देव–मन्दिर मानकर) करता रहता है, तो उस वातावरण

में रहते हुए भी (उसके शब्दों में वह नरक ही है) वह नारी धर्म का निर्वाह करती रहती है। इस का प्रमाण यह है। बाणभट्ट नारी–देह को देव–मंदिर के समान पवित्र मानता है। किन्तु निपुणिका ऐसा नहीं मानती थी। निपुणिका ने नारी-देह को हाड़-मांस का माना और इसीलिए अपना सर्वस्व लेकर बाण के आगे गई और वहाँ वह असफल हो जाती है। उसकी असफलता बाण की सफलता है। निपुणिका की यह असफलता निपुणिका को बाण से अलग कर देती है। किन्तु इसके साथ साथ स्वयं निपुणिका का नारीधर्म जागृत हो जाता है। और वह इस बात को स्वीकार कर लेती है कि बाण ने उसे नारीधर्म सीखाया है। छः वर्ष बाण से अलग रहने के बाद उसका नारी धर्म फिर जागृत होता है। यों कहना चाहिए कि इस अन्तराल में वह इस आशा को लिए हुए जीवित रही कि उसकी प्रतिष्ठा नारी के रूप में करनेवाला कोई न कोई है। निपुणिका को अपने बाण पर अभिमान था। उसके इस अभिमान से मदनश्री आहत होती है और बाण को पराजित करना चाहती है किन्तु उसे निराश होकर लौटना पड़ता है। निपुणिका कहती है " उसने (मदनश्री ने) जीवन में पहली बार ऐसा पुरुष देखा था, जो स्त्री का सम्मान तो करता है; पर तलवा नहीं चाटता " (अष्टम उच्छ्वास) और वह कहती है कि उसी दिन से वह अपने को हाड़–मांसकी गठरी से अधिक समझने लगती है। बाण के कारण उसे इस मुक्ति का अनुभव होता है। मदनश्री के पराजित होने का प्रमाण यह है कि वह बाण का चित्र बनाती है। मदनश्री निपुणिका से कहती भी है कि यह उसके देवता का चित्र है (बाण का चित्र है)। शार्विलक के यहाँ बाण निपुणिका की खोज में जाता है और वहाँ जब उसे इस बात का पता चलता है कि निपुणिका नहीं है तो वह वहाँ नगर–प्रतिहार से कहता है कि नाटक का लिखा हुआ प्रकरण उसने शिप्रा में फेंक दिया है और जब तक निपुणिका नहीं मिलेगी तब वह नाटक नहीं लिखेगा। इस बात को निपुणिका ने वहाँ पर (शार्विलक की दूकान पर) बाण के मुख से सुना था। वह बाण से न मिलने का संकल्प उसी समय कर लेती है क्योंकि उसका न मिलना बाण के हित में है, ऐसा उसका विश्वास था। (ज्योतिषी के कथन के आधार पर) न तो निपुणिका मिलेगी और न ही वह लिखेगा। कविता लिखना जिस दिन वह आरंभ करेगा उसी दिन से उसकी (बाणकी) आयु घटने लगेगी। इसीलिए निपुणिका बाण से नहीं मिलती। कहना यह है कि बाणभट्ट के कारण नरक में रहनेवाली निपुणिका का नारीधर्म जागृत हो जाता है और बाण को वह देवता, पुरुष–रत्न मानती है और भट्टिनी का उद्धार बाण द्वारा करवाती है। इस उद्धार में निपुणिका

भट्टिनी एवं बाण के साथ रहती है। भट्टिनी के अन्तःपुर से उद्धार में निपुणिका को आत्मबल बाणभट्ट से मिलता है। प्रश्न यह है कि इस निपुणिका में यह आत्मबल आया कहाँ से ? उसका यह आत्मबल उसके नारीधर्म का द्योतक है और इसका कारण स्वयं बाणभट्ट है। भट्टिनी और बाणभट्ट के साथ रहते हुए उसका यह आत्मबल (नारीधर्म) बढ़ता जाता है और अन्त में वह नारीधर्म के चरम मूल्य को प्राप्त कर लेती है। अपने को निःशेषभाव से दे देना वह सीख जाती है। अभिनय करते हुए वह इस लोक से चल बसती है। अभिनय उसने वासवदत्ता का किया था और उस चरित्र का उसने पूर्ण निर्वाह अपने आप को निःशेष भाव से समर्पित करते हुए किया। उसका वह अभिनय अन्तिम और सत्य रहा। उसने अभिनय के लिए स्वीकृति देते हुए कहा था– "जो वास्तव है उसको दबाना और जो अवास्तव है, उसका आचरण करना–यही तो अभिनय है। सारे जीवन यही अभिनय किया है (अष्टादश उच्छ्वास)।" उसका यह कथन उसकी मनःस्थिति को स्पष्ट करने-वाला है। उसके मर जाने पर सुचरिता कहती है– "निपुणिका धन्य हो गई आर्य, उसकी चिन्ता छोड़ो परन्तु उसका बलिदान तभी सार्थक होगा जब तुम उसके दान का सम्मान करो। कौन जानता था कि निपुणिका अपने दुःखी जीवन से स्त्रीत्व की मर्यादा स्थापित कर जायगी।" (बीसवाँ उच्छ्वास)

इस तरह हम देखते हैं कि निपुणिका अपने को निःशेष भाव से आत्मदान करना सीख जाती है। निपुणिका का उद्धार, वास्तव में उसके अपने आत्मबल के जागरण के कारण हुआ है और यह आत्मबल उसे बाणभट्ट से ही मिला था। अपने उद्धार के साथ वह औरों का उद्धार भी करती है। भट्टिनी का उद्धार उसी ने करवाया किन्तु औरों में वह इस आत्मबल को पैदा करती है। मदनश्री, चारुस्मिता, सुचरिता आदि भी उससे प्रभावित हैं। नारी को वह पंक से पंकज बना देती है। उसका चरित्र इस बातका द्योतक है।

भट्टिनी देवपुत्र तुवरमिलिन्द की नयनतारा चन्द्रदीधिति है। राज-कुलोचित गौरव उसे जन्म से प्राप्त हुआ है। उसके लिए युद्ध होते हैं। और उसके गौरव की रक्षा में राजनीतिक शक्तियाँ उद्यत दिखलाई देती हैं। उसका अपहृत होना एवं फिर उसका उद्धार होना इस उपन्यास की मुख्य कथा का भाग है। इसमें भी अपहृत होने की कथा नेपथ्य की कथा है, उद्धार की कथा मुख्य है। वह अशोक वन की सीता है। भट्ट उसका अभि-भावक भी है और सेवक भी है। राजकुल से सम्बन्धित होने के नाते उसका

अपहृत होना राजनीतिक शक्तियों की हार है। उसका उद्धार होना राज-नीतिक शक्तियों की जीत है। किन्तु इन राजनीतिक शक्तियों से हटकर भट्टिनी के नारीधर्म पर विचार करें और भट्टिनी के मानस का विश्लेषण करें तो उपन्यास का वास्तविक रहस्य स्पष्ट होने लगता है। अपहृत होने और सामान्य पतित नारियों के बीच रहने से उसका राजकुलोचित गौरव भीतर ही भीतर ढह जाता है। वह वस्तुस्थिति को स्वीकार करते हुए कहती है -- 'जिस दिन नगरहार के मार्ग में दस्युओंने इस अभागे शरीर का स्पर्श किया, उस दिन तक मुझ देवपुत्र की कन्या होने का अभिमान था। मैं एक मास तक पिता का नाम ले-लेकर रोती रही। बाद में मुझ में से वह अभिमान चला गया। आज भगवान की बनाई और लाखों कन्याओं की भाँति मैं भी एक मनुष्य कन्या हूँ। उन्हीं को भाँति सुःख-दुख की पात्र मैं भी हूँ। उन्हीं की भाँति मेरा जन्म भी अपनी सार्थकता के लिए नहीं है। मेरा अहंकार मर चुका है। अभिमान नष्ट हो गया है, कौलीन्यगर्व विलुप्त हो चुका है। मैं घर्षिता, अपमानिता, कलंकिनी, सौ-सौ मानवियोंकी भाँति सामान्य नारी हूँ।' (अष्टम उच्छ्वास) यह भट्टिनी की वास्तविक स्थिति है। निपुणिका सामान्य नारी से ऊँची उठती है, जब कि भट्टिनी असामान्य होने पर भी सामान्य के स्तर तक पहुँच जाती है। कम-से-कम वह उन स्थितियों से गुजरती है, जिसकी कल्पना कुलोचित कन्याएँ नहीं कर सकती। बाणबट्ट जब निपुणिका के नारीधर्म का सम्मान करता है, मदनश्री का सम्मान करता है, तो भट्टिनीका क्यों नहीं करेगा ? निपुणिका अपने को निःशेष भावसे समर्पित करती है। मदनश्री आहत होती है। इसी तरह यदि भट्टिनी को देखें तो उसके मन में भी बाण के प्रति सम्मान का भाव है। बाणभट्ट के प्रति अपने मनोभावों को स्पष्ट करते हुए भट्टिनी महामाया से कहती है - "जिस दिन भट्टने मुझसे प्रथम वाक्य कहा था, उस दिन मेरा नवीन जन्म हुआ; ... मैंने उस दिन अपनी सार्थकता को प्रथम बार अनुभव किया ... ... राज भवन में अपने सौंदर्य की चाटुक्तियाँ मैंने सुनी थी, किन्तु सत्यवाणी मैंने पहली बार सुनी। मैंने प्रथम बार अनुभव किया कि मेरे भीतर एक देवता है, जो आराधक के अभाव में मुरझाया हुआ छिपा बैठा है। मैंने प्रथम बार अनुभव किया कि भगवान ने नारी बनाकर मुझे धन्य किया; मैं अपनी सार्थकता पहचान गई।" (दशम उच्छ्वास) भट्टिनी देवी होने पर भी हाड़-मांसकी नारी भी थी। नदी में जब वह कूद पड़ी थी उसमें उस समय यह भाव था कि बाण उसे अवश्य बचाएगा। अपने अपराध को स्वीकार करते हुए वह स्वयं कहती है— "मन के किसी अज्ञात कोने में यह भावना

जरूर थी कि तुम मुझ डूबन नहीं दोगे— तुम मुझे बचा लोगे। तुमने मेरा शरीर, मन, लाज–शर्म सब–कुछ बचाया है। मैं भाग्यहीना अपने सबसे बड़े हितकांक्षी को विपत्ति में झोंक देनेकी अपराधिनी हूँ। (द्वादश उच्छ्वास) भट्टिनी के माध्यम से उपन्यासकार ने समस्याओंका हल प्रस्तुत किया है और अपने मानवतावादी दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। इस अर्थ में भट्टिनी का कार्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है। नारी धर्म की दृष्टि से देखें तो उसके भीतर का देवता जाग जाता है और वह जीवनको सार्थक बना लेती है। निपुणिका की मौन–साधना भट्टिनी के लिये है और भट्टिनी की साधना और व्यापक रूप ग्रहण करती है। भट्टिनी नारी–सौन्दर्य का अपने आप में विश्वकोश है। इस सौंदर्य का सम्मान बाणभट्ट करता है। भट्टिनी बाण के सहयोग से उसके कविधर्म को जाग्रत कर मानवतावादी विचारों को फैला कर जीवन को सार्थक करनेका प्रयास करती है।

निपुणिका और भट्टिनी की तरह सुचरिता, महामाया, मदनश्री चारुस्मिता विद्युतपांगा का विश्लेषण भी किया जा सकता है। सब की स्थितियाँ अलग अलग हैं फिर भी उपन्यासकार सभी नारी पात्रों के नारीधर्म की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास करता है। बाणभट्ट की आत्मकथा होने के नाते सभी नारी पात्र बाण की अपनी कथा के रूप में व्यक्त होते हुए दिखलाए गए हैं। इन सब पात्रों से बाण का आत्मीय सम्बन्ध है। बाणभट्ट वेश्या का सम्मान भी देव–मन्दिर की तरह करता है। निपुणिका, भट्टिनी का तो करता ही है। बाण नारी–देह को देवता का मन्दिर मानता है। इस नाते जो भी नारी पात्र इस उपन्यास में आए, उनके नारीधर्म का सम्मान बाण ने किया और अपने इस व्यवहार से नारीपात्रों में आत्मसम्मान का भाव जगाने में समर्थ हुआ। वह उनके जीवन को सार्थक बनाता है। वह उनमें ऐसा भाव उत्पन्न करता है, जिससे नारियाँ ये समझने लगती हैं कि नारी जीवन पाना धन्य है।

अब रोमान्स (प्रेम–दर्शन) की दृष्टि से इस उपन्यास को फिर देखें। पुरुष यदि नारी का सम्मान करें (नारी के नारीधर्म का सम्मान करे) और इसी तरह नारी पुरुष को देवता मानकर पूजने लगे एवं अपन को निःशेष बनाने का प्रयास करे, अपनी सार्थकता पुरुषको मुक्त करने में माने, तो ऐसी स्थिति, में नर एवं नारी का यह सम्बन्ध, प्रेमभावना की दृष्टि से रोमांटिक हो जाता है। इस उपन्यास का रोमांस इसीलिये उत्तम कोटि का रोमांस है।

इस उपन्यास की नारियाँ अपहृत, उपेक्षित, परित्यक्त, एवं पीड़ित हैं। उन्हें नारी होना मात्र अधम होना लगता है। नारी होने का गौरव उनके मन में नहीं है। ऐसी स्थिति में उनके मन में रोमांस का उदय कैसे हो सकता है? बाणभट्ट इन नारियों के उद्धार में सहायक होता है, वह उनकी इस भावना का परिहार करता है और इन नारियों के सौंदर्य का सम्मान करता है। नारी सौंदर्य में वह नारीधर्म के सौंदर्य का सम्मान करता है। उसका यह सम्मान और देवता का मन्दिर मानना बाणभट्ट की रोमांटिक प्रवृत्ति है। सौंदर्य का प्रशंसक, गुणोंका ग्राहक, होते हुए भी वह अपने को अलिप्त रखता है और इस नाते स्त्रियोचित धर्म की रक्षा करने में सहायक होता है। इस सहायता में उसकी जो वृत्ति तृप्त होती है वह वृत्ति रोमांटिक है। इसी तरह निपुणिका, भट्टिनी, चारुस्मिता आदि नारियों में भी रोमांटिक वृत्तियाँ इस उपन्यास में मिलती हैं। नारी जीवन को सार्थक मानकर जब वे पुरुष को पूजने लगती हैं तो उनके इस तरह से पूजने में उनकी रोमांटिक वृत्ति ही दिखलाई देती है।

अब बाणभट्ट का विश्लेषण करें। आत्मकथा उसीकी है। नारी के प्रति उसके विचार और नारियों के उसके प्रति विचार पर स्पष्ट हो गये हैं। रोमांटिक प्रवृत्ति बाणभट्ट में है। यह प्रवृत्ति उपन्यास में सर्वत्र दिखलाई देती है। इस प्रवृत्ति के कारण भावनाएँ ललित हो गई हैं। आत्मकथा में आत्माभिव्यक्ति होती है। बाणभट्ट मूलतः कवि है अतः उसकी आत्माभि-व्यक्ति में काव्यत्व है। साथ ही इस आत्माभिव्यक्ति में उसके इच्छित प्रयत्नों का विवरण है। यह विवरण कलात्मक है। कलाकार के सृजनका आवेग इन विवरणों में है। बाणभट्ट अपनी रुचि एवं प्रवृत्ति के अनुसार कार्य करता रहता है। अपने को वह आवारा कहता है। स्थान-स्थान पर वह भटकता है। नाटकमण्डली बनता है। उसकी रुचि कला में है। इस बात का आभास आरंभ से ही मिलने लगता है। निपुणिका से उसका परिचय होता है। और यह परिचय घनिष्टता में बदल जाता है। यहीं से बाणभट्ट का नारी के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट रूप में दिखलाई देने लगता है। निपुणिका असफल होकर (अपने प्रेम में) भाग जाती है। और बाद में बाण के ही हित में बाण से नहीं मिलती। इसका परिणाम यह होता है कि बाणभट्ट स्वयं नाटक मण्डली को भंग कर देता है। यह पूर्व कथा है। बाद की कथा में भी हम देखते हैं कि बाणभट्ट निपुणिका से फिर मिलने के बाद भट्टिनी का उद्धार करता है। ऐसा लगता है कि वह निपुणिका एवं

भट्टिनीका सेवक है। नारी-पात्र उसे अपना अभिभावक (उद्धारक भी) मानते हैं। और वह स्वयं अपने को सेवक मानता है। अभिभावक –सेवक इन दोनों का निर्वाह बाणभट्ट के व्यक्तित्व के अंग हैं। उसकी (भट्टकी) वैयक्तिक अनुभूति सेवक की हैं और सामाजिक अभिव्यक्ति अभिभावक की है। (अभिभावक होने का उसे गर्व है।) उसका अभिभावक वाला व्यक्तित्व कृष्णवर्धन के सामने दिखलाई देता है। नारी–पात्रों से हटकर जब भी वह औरों के सम्मुख उपस्थित होता है। (नारी पात्रों का उद्धार करने के हेतु ही) तब वह अभिभावक के रूप में दिखलाई देता है। और विपरीत इसके नारी–पात्रों के बीच जब वह आता है या उनसे सम्बद्ध रूप में आता है। तो वहाँ वह सेवक के रूप में (नारी के सेवक के रूप में) दिखलाई देता है। इन दोनों स्थितियों के बीच में ही बाण के व्यक्तित्व की वास्तविकता का मूल्यांकन करना उपयुक्त होगा। वैयक्तिक रूप में नारी के मूल्यों को वह जिस रूप में स्वीकार कर लेता है और जिन मूल्यों के प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा है, उन्हीं मूल्यों का समाज में विपरीत स्थान देखकर वह उन मूल्यों की (अपने मान्य मूल्यों की) प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करता है। उसके वैयक्तिक मूल्य का (नारी के प्रति) कोई अर्थ नहीं होता, यदि वह उन मूल्यों की रक्षा के लिए संघर्ष न करता। एक प्रकार से बाणभट्ट के व्यक्तित्व में नारी के मूल्यों का बोध है; सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं वैयक्तिक भी। विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में बाणभट्ट नारी को देखता है और तदनुकूल उनके (नारी के) व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है। अपनी आत्मकथा में वह नारी की आत्मकथा भी कहता है। निपुणिका, भट्टिनी, सुचरिता सभी तो उसे अपनी कथा सुनाते हैं। इन सब को सुनकर ही वह उनके सुख–दुख में साथ देता है। महामाया की कथा महामाया नहीं सुनाती। उसका बोध आर्य वाभ्रव्य के माध्यम से होता है। अतः महामाया का व्यक्तित्व भी अन्य नारियों सदृश नहीं है। उसने अपना उद्धार स्वयं किया है किन्तु जिन नारियोंका उद्धार बाणभट्ट ने किया है वे सब अपनी कथा कहती हैं। और बाणभट्ट उनकी रक्षा में (नारीधर्म की रक्षा में) सहायक होता है। इस तरह हम देखते हैं कि बाणभट्ट की इस आत्मकथा में नारी की आत्मकथा है और नारी की इस आत्मकथा में नारी के मूल्यों का वैयक्तिक एवं सामाजिक बोध है।

बाणभट्ट के ये बीसों ही उच्छ्वास प्रधानतः ललित हैं (आत्मकथा के रूप में व्यक्त होने के नाते) ललित इस अर्थ में कि बाण का वैयक्तिक

–स्वर मुखरित है। आत्मकथा में जो समाज और युग आया है (अपन पूरे सांस्कृतिक परिवेश में) वह बाणभट्ट के वैयक्तिक स्वर का अंग बनकर आया है। ऐसी स्थिति में आत्मकथा का यह वैयक्तिक–स्वर ललित न हो तो और क्या हो? एक कलाकार, एक संगीतज्ञ, एक चित्रकार, एक विद्वान एक कवि एवं एक सहृदय अपने युग को जिन संवेदनाओं के साथ आत्मसात् करता है और युग की गहन पीड़ा को अनुभव कर सकता है, वह ...वह सब कुछ बाणभट्ट में है और इन सब की अभिव्यक्ति ललित भावोच्छ्वासों के रूप में इस उपन्यास में हुई है।

अब अन्त में विषय का उपसंहार करते हुए समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि आत्मकथा रूप में लिखा हुआ, यह जीवनी से सम्बन्धित होते हुए भी––बाणभट्ट की जीवनी से––अपने भीतर (अपने वैयक्तिक–स्वर के भीतर) अपने युग के सांस्कृतिक, सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक प्रवृत्तियों को पूरे परिवेश में लिए हुए, प्रधान रूप से कलात्मक रूप में भावोछ्वासों के रूप में, यह उपन्यास लिखा गया है। यहीं पर एक बात और कह दें और वह यह कि सृजन का रूप अपने विषय के कारण बदला हुआ है। उपन्यास का मुख्य विषय नारी के मूल्यों से सम्बन्धित हैं। इन मूल्यों के बोध बाणभट्ट के अपने वैयक्तित बोध हैं। बाणभट्ट का यह वैयक्तिक बोध कलात्मक स्तर का है। अतः उपन्यास कलात्मक स्तर पर उन मूल्यों का परिचय देता है। इस बोध के प्रति सामाजिक एवं राजनीतिक प्रतिक्रिया का सामना बाणभट्ट को करना पड़ता है। यह सामना वह इसलिए करता है जिससे अपने वैयक्तिक मूल्यों की (नारी के प्रति) प्रतिष्ठा कर सके। इस अर्थ में सारा युग इस उपन्यास में (बाण की आत्मकथा में) साकार हो गया है। इन मूल्यों के प्रति (नारी मूल्यों के प्रति) उसके इच्छित प्रयत्नों का विवरण वह भावा–त्मक स्तर पर देता चलता है, जो अपने आप में एक सृजन है। इसीलिए उपन्यास चारु हो गया है। यह एक नई विधा है, नामकरण चाहे जो हो। उपन्यास, जीवनी, आत्मकथा, चारुलेख, ललित लेख, भावोच्छ्वास या और कुछ कह लें; इतनी बात अवश्य है कि इस उपन्यास (उपन्यास ही कहा जाता है, इसीलिए) का प्रभाव पाठकों पर जिस रूप में अन्ततः रह जाता है, वह प्रभाव भावात्मक उच्छ्वासों का है। ये उच्छ्वास ललित हैं और इसीलिए बाणभट्ट की आत्मकथा ललित भावोच्छ्वासों की कथा है।

● ●

(मराठवाडा यूनिवर्सिटी जरनल वाल्यूम ९, संख्या २, जुलाई १९७० में प्रकाशित)

अज्ञेय | अपने अपने अजनबी

मृत्यु से साक्षात्कार का दर्शन

● मृत्यु से साक्षात्कार का दर्शन

'अपने अपने अजनबी' अज्ञेय का लघु उपन्यास है, यह उपन्यास हिन्दी साहित्य में अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है, शैली एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से इसमें नवीनता मिलेगी, प्रयोग की दृष्टि से भी इसमें नवीनता है, सबसे बढ़ कर बात यह है कि इसका विषय अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है। विषय है-मृत्यु से साक्षात्कार! इस उपन्यास के सभी पात्र किसी न किसी रूप में मृत्यु से सम्बद्ध हैं, मृत्यु को सामने उपस्थित देखकर मानवमन में जो प्रतिक्रिया होती है, उसका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थ विवेचन उपन्यास में किया गया है। कबीर ने मृत्यु के भीतर ही जीवन का दर्शन किया था, उसी तरह अज्ञेय के इस उपन्यास में भी कबीर का दृष्टिकोण—जीवन के प्रति आस्था पैदा करनेवाला दृष्टिकोण—व्यक्त हुआ है, कबीर ने कहा है :

१) **जिस मरनै थै जग डरै, सो मेरे आनंद,**
कब मरिहूं कब देखिहूं, पूरन परमानंद[1]

२) **मरता मरता-जग मुवा, औसर मुवा न कोइ,**
कबीर ऐसे मरि मुवा, ज्यूं बहुरि न मरना होइ।[2]

कबीर की इन पंक्तियों में जो भाव ह वह उपन्यास में प्रमुख रूप से व्यक्त हुआ है, नीचे इसी भाव का विश्लेषण उपन्यास की कथा को दृष्टि में रखते हुए किया जा रहा है।

---

१. कबीर ग्रंथावली—सं. श्याम सुन्दरदास-सूरातन कौ अंग-दोहा संख्या-१३

२. – वही-जीवन मृतक कौ अंग-दोहा संख्या-५

उपन्यास में कथा भाग गौण है, वह परिस्थितियों एवं पात्रों का ज्ञान कराने के लिए ही है, उपन्यास में दो पात्र प्रमुख हैं, योके और सेल्मा। योके युवती है और सेल्मा बुढ़िया। योके बर्फ की सैर करने घर से निकलती है। सैलानी तबियत की है। पॉल सोरेन उस का सह-साहसिक साथी है। बर्फ की सैर में वह अपने साथी से बिछुड़ जाती है। उसकी भेंट सेल्मा से होती है, सेल्मा उसे वस्तुस्थिति का ज्ञान करा देती है कि वे दोनों जाड़ों-भर के लिए बन्द हो गए हैं। सेल्मा गड़रियों की मां है। उसके दो लड़के अब भी गड़रिये हैं। एक लकड़हारा हो गया है और तीनों नीचे गये हुए है। सेल्मा के लड़के जाड़ों में नीचे चले जाते हैं और बसंत में लौट आते हैं, यह उनका हर साल का क्रम है। सेल्मा भी चली जाती थी, पर इस वर्ष रह गई। दोनों ही पात्र एक दूसरे के लिये अजनबी हैं। साथ ही दोनों ऐसे घिरे हुए हैं कि दोनों को मिलकर रहना पड़ रहा है। इनमें एक मृत्यु की गोद में है और दूसरा अकेले में मृत्यु को अपनी आंखों से निकट से देख रहा है। मरनेवाले की अनुभूति एवं किसी को मरते हुए देखनेवाले की अनुभूति, दोनों में अन्तर होता है, इस अन्तर को कथाकार ने सधी हुई कलम से लिखा है और वही उपन्यास का प्रमुख भाग है। कथा की दृष्टिसे इसमें एक और छोटा कथानक है। आण्टी सेल्मा योके को २८ वर्ष पुरानी अपने जीवन की कथा सुनाती है। उसने उस समय भी ऐसी ही परिस्थिति का सामना किया था। कथा इस प्रकार है। सेल्मा एक कस्बे में रहती थी। कस्बा कहलाने पर भी उसमें शहर के लक्षण थे। सैलानियों के लिये यह आकर्षक स्थल था। कस्बे के आगे सीधा-सपाट मैदान था। इसी मैदान में बाग था। उसके पार नदी थी। और नदी किनारे सड़क थी। नदी पर पुल बना हुआ था। नदी में हर साल बाढ़ आती थी। सेल्मा जिस समय की कथा सुना रही है, उस समय नदी में बहुत बाढ़ आई थी। पुल का कुछ भाग टूटने से बच गया और उस पर की तीन-चार दुकानें और उनमें बसे हुए तीन चार लोग। सेल्मा का चायघर था। पास में एक फोटोग्राफर था और सूवेनिर रूमालों, खिलौना आकार के चाय के प्यालों और पुल की प्रतिकृतियों की दुकान में यान एकेलोफ था। ये तीनों ही बच गये थे। इन तीनों को भी मृत्यु का सामना करना पड़ा, जिसमें फोटोग्राफर तो स्वयं अपने अस्तित्व को खतरे में अनुभव कर अपनी दुकान को जलाकर जल में कूद जाता है और दोनों में उस समय सिद्धांतों की लड़ाई होती है किन्तु यान एकेलोफ के मानवीय पक्ष की अन्त में विजय होती है और सेल्मा अपना सब कुछ यान को सौंपने के लिए तैयार हो जाती है और वह विवाह का प्रस्ताव भी करती है। एक नाव उनको बचाने के लिए

आती है और वे बच जाते हैं। सेलमा को नया जीवन मिलता है। विवाह, नयी गृहस्थी, तीन सन्तानें सुख – दुख का साझा और फिर यान नहीं रहा। यही संक्षिप्त कहानी है। यह कहानी सेलमा योके को सुनाती है। इसके बाद सेलमा की मृत्यु हो जाती है। योके का यह नया अनुभव है। बाद में पॉल आ रहा है, योके को ऐसा अनुभव होता है और योके की रक्षा हो जाती है। कथा को एक नया मोड़ इसके बाद मिलता है। योके के जीवन के अन्तिम क्षणों की कथा दी गई है। वह जगन्नाथन से मिलती है और उसी को अच्छा आदमी समझ उसके समीप अपने प्राण त्याग देती है। उपन्यास के अन्त में भी मृत्यु का दृश्य है। स्वयं जगन्नाथन और उसके अनेक अजनबी साथी रसद की दुकान से रसद खरीदते हैं। रसद खरीदना जीवन खरीदना ही है। युद्धकालीन स्थिति होने के कारण। वह तीन दिनों के लिये पनीर ले लेता है। उसी पनीर को योके विक्षिप्तावस्था में खराब कर देती है। जगन्नाथन की स्थिति भी बड़ी दयनीय है। किन्तु उस स्थिति में भी वह मानवीय सन्तुलन बनाये रखता है। इसीसे योके उसको अच्छा आदमी समझती हैं और उसी के सामने अपनी इच्छा से मरना चाहती है। उसके प्राण निकलने के साथ उपन्यास का अन्त हो जाता है।

ऊपर उपन्यास का कथानक संक्षेप में लिखा गया है। यों कहिये कि कथा के तथ्यों को ध्यान में रखकर कथा लिखी गई है। इस कथा में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण भाग नहीं आ सका हैं। फिर भी इतनी बात स्पष्ट हो गई कि कथा के तीन मोड़ हैं। प्रथम वह भाग जिसमें सेलमा और योके घिर गये हैं। दूसरे में सेलमा का २८ वर्ष पुराना जीवन, जिसमें उसने वैसी ही परिस्थिति का सामना किया था और तीसरे में स्वयं योके का अन्त। तीनों ही स्थितियां मृत्यु से साक्षात्कार की स्थितिया हैं। इन स्थितियों में पात्र जो अनुभव करते हैं, वही उपन्यास का मुख्य कथ्य है। इस कथ्य में क्षणों की अनुभूतियों का विस्तार है, चेतना के स्पन्दन की आवाज है और सबसे बढ़ कर मानवीय मूल्यों की मर्मभरी कहानी है। मानव मूल्यों की सही पहचान मृत्यु के साक्षात्कार के समय होती हैं और वही इस उपन्यास में है।

अब उपन्यास के मुख्य कथ्य का विश्लेषण करें। अज्ञेय ने पात्रों की अन्तरतम की अनुभूतियों का विश्लेषण किया है। जीवन की भावना और मृत्यु की भावना यह मनुष्य के दैनिक कर्मो में उसके बोलने–चलने में एवं अन्य व्यवहारों में व्यक्त होती रहती है। परिस्थितिवश हम भीतर से मरे हुए होते हैं और बाहर से जीवित होते हैं और इसके विपरीत भीतर से जीवित होते

हुए बाहर मृत्युन्मुख हो सकते हैं। भौतिक रूप में जीना और मरना एवं मानसिक रूप में जीना और मरना अलग अलग बाते हैं, इन सबका यथार्थ, सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उपन्यास में है। उदाहरणों से इसे दिखलाया जा सकता है। योके भौतिक रूप से जीवित है, वह युवती है उसके सामने लम्बा जीवन है किन्तु बुढ़िया सेल्मा को मृत्यु की गोद में देखकर स्वयं मृत्यु की भावना से ग्रस्त रहती है और जीवित होते हुए भी मृत्युबोध से पीड़ित रहती है, इसके विपरीत सेल्मा बुढिया है, जानती है कि उसे अगला बसंत नहीं देखना है, अबतब की मेहमान है फिर भी वह भीतर से जीवित है। उसका मानस मरता नहीं। उसके भीतर खिला हुला बसंत और निखरी, स्निग्ध हंसती धूप है इसीलिए वह अंतिम क्षणों तक मरती नहीं। उसने जीवन मृत्यु से लड़कर प्राप्त किया है वह मृत्यु से भयभीत नहीं है। उसने यह पाठ अपने गत अनुभव से प्राप्त किया था और यही सीख वह योके को भी देती है। योके ने उस पाठ को मृत्यु का वरण कर अपनाया। उपन्यास के अन्त में यही दिखलाया गया है कि योके ने सेल्मा के बतलाए अनुसार अपनी इच्छा से मृत्यु को वरण करना चाहा। मृत्यु का वरण कर उसने स्वतंत्रता को चुना। किन्तु सेल्मा ने कहा था कि "वरण की स्वतंत्रता कहीं नहीं है, हम कुछ भी स्वेच्छा से नहीं चुनते हैं।"[1] स्वयं सेल्मा चाहती थी कि मरते समय उसके पास कोई न हो और उसका दुख किसी को न हो। अपनों से बचकर वह अकेले रहना चाहती थी किन्तु एक-न-एक अजनबी आ ही गया। योके के सम्मुख उसे मरना पड़ा। क्या ठीक यही स्थिति योके की हुई ? योके स्वतंत्रता का वरण करना चाहती है अजनबी-अपना अजनबी-चुनना चाहती है। उसकी यह इच्छा मृत्यु को वरने से पूरी होती है। जगन्नाथन उसे अच्छा आदमी मिला। अजनबी था किन्तु उसमें मानवीय भाव था। उसने जर्मनों की तरह उसके साथ वेश्या समझकर व्यवहार नहीं किया। योके के अनुसार योके तो पहले ही मर गई। अब उसका जीवित रूप मरियम हैं। मरियम कौन ? ईसा की माँ का नाम मरियम है। वह चुनी हुई माँ है और वह कभी मर नहीं सकती। वह जर्मनी की वेश्या है। योके मर गई है। मरियम कभी नहीं मरती। इसी भाव से वह जगन्नाथन अजनबी से मिलती है और उसको अच्छा समझ कर उसके सम्मुख माफी मांग कर और स्वयं सब को माफ कर उसको पॉल को माफ कर एवं अन्तिम अस्पष्ट शब्द ईश्वर कह कर प्राण त्याग देती है। यह उपन्यास का मर्मभरा अन्त है।

---

१. अपने-अपने अजनबी-अज्ञेय (द्वितीय संस्करण) पृ. १०४.

उपन्यास का सार अज्ञेय के शब्दो में ही यह है–'जीवन सर्वदा ही वह अन्तिम कलेवा है जो जीवन देकर खरीदा गया है और जीवन जलाकर पकाया गया है और जिसका साझा करना ही होगा क्योंकि वह अकेले से गले उतारा ही नहीं जा सकता––अकेले वह भोगे भुगता ही नहीं। जीवन छोड़ ही देना होता है कि वह बना रहे और भर––भर कर मिलता रहे। सब अश्वासन छोड़ देने होते हैं कि ध्रुवता और निश्चय मिले। और इतर सब जिया और मरा जा चुका है, सब की जड़ में अंधेरा और डर है; यही एक प्रत्यय है जो नये सिरे से जिया जाता है और जब जिया जाता है तब फिर मरा नहीं जाता जो प्रकाश पर टिका है और जिसमें अकेलापन नहीं है।'[1] यह अपने आप में एक रूपक है। इसका सम्बन्ध उस कथानक से है, जो सेल्मा योके को सुनाती है। इसी अनुभव से सेल्मा वह बल प्राप्त करती हैं कि मृत्यु को यथार्थ रूप में सामने उपस्थित देखकर भी नहीं मरती और अन्तिम क्षण तक जिए जाती है। मृत्यु के प्रति यह दृष्टिकोण आशावादी दृष्टिकोण है। यह अस्तित्ववाद के भय से मुक्त करनेवाला दृष्टिकोण है। कबीर के दोहों में यह दृटिकोण व्यक्त हुआ है।

अब उपन्यास के नामकरण पर विचार करें। नाम है 'अपने–अपने अजनबी' जिन स्थितियों में उपन्यास के पात्रोंको रखा गया है, उन स्थितियों में कौन अपना है और कौन अजनबी है, इस की पहचान हो जाती है। अपने भी अजनबी हो जाते हैं और अजनबी भी अपने हो जाते हैं। स्थिति मृत्यु से साक्षात्कार की है। इस समय सबको अपने प्राण की रक्षा की चिन्ता होती है। ऐसे समय में प्रियजन भी अजनबी सा व्यवहार कर सकते हैं और अजनबी भी अपना-सा व्यवहार कर सकते हैं। मानवीय मूल्यों की सही पहचान इसी समय में होती है। इस दृष्टि से उपन्यास के पात्रों को देखा जा सकता है। योके का ही विश्लेषण इस दृष्टि से करें। वह सेल्मा के साथ रहने के लिए विवश है। इस समय में एक अजनबी का भय उसके मन में बना हुआ है। बुढ़िया सेल्मा उसके इस भय को पहचान लेती है और वह उससे कहती है –– "खतरे में डर के दो चेहरे होते हैं, जिनमें से एक को दुस्साहस कहते हैं; कई लोग इसी एक चेहरे को देखते हुए बड़े-बड़े काम कर बैठते हैं और कहीं के कहीं पहुंच जाते हैं। लेकिन धीरज में डर का एक ही चेहरा होता है, और उसे देखे बिना काम नहीं चलता। उसे पहचान लेना ही

---

१. अपने अपने अजनबी––अज्ञेय (द्वितीय संस्करण) पृ. ९५।

अच्छा है-तब उतना अकेला नहीं रहता। निरे अजनबी डर के साथ कैद होकर कैसे रहा जा सकता है ? नहीं रहा जा सकता है--बिल्कुल नहीं रहा जा सकता ."[1] बुढ़िया के इस कथन में सच्चाई है। युवती योके का यह अजनबी के प्रति भय का भाव बड़े विस्तार से लिखा गया है। बुढ़िया अपने अजनबी साथी योके को अपना बनाना चाहती है और उसका यह भाव सर्वत्र व्यक्त हुआ है क्योंकि वह जानती है कि अजनबी के साथ कैद होकर रहा नहीं जा सकता। इसीलिए वह कहती भी है-- "अभी तो हम-तुम भी अजनबी से हैं, पहले हम लोग तो पूरी पहचान कर लें।"[2] किन्तु योके का व्यवहार इसके विपरीत है। योके का भय, मृत्युबोध, आत्मपीड़न एवं उसके त्रासपूर्ण क्षण विशेष रूप से १५ दिसम्बर से १४ जनवरी तक की डायरीवाले भाग में अंकित है। ऐसा इसलिये हुआ कि बुढ़िया के प्रति उसका व्यवहार अजनबी सा बना रहा। बुढ़िया भीतर बाहर एक बनी हुई है जब कि योके ऐसी नहीं है। वह बुढ़िया से अपने आपको छिपाती रहती है किन्तु अनुभवी आंखों से कुछ भी छिपाना संभव नहीं होता। यहाँ तक कि जब योके बुढ़िया के अस्तित्व से घबराकर उसको समाप्त कर देने के इरादे से उसकी ओर बढ़ती है उस समय बुढ़िया उससे कहती है-- "मेरा तो खुद कई बार मन हुआ कि तुमसे कहूँ मेरा गला घोंट दो --कहने का साहस नहीं हुआ। लेकिन तुम रुक क्यों गई"।[3] द्वन्द्व योके के मन में है। वह भीतर से और बाहर से एक नहीं। योके की यह समस्या, योके मात्र की नहीं, वर्तमान युग की समस्या है, विशेष रूप से पश्चिमी जगत की और जिसका प्रभाव पूर्व में भी पड़ रहा है। योके की इस समस्या को योके के ही शब्दोंमें देखिए :-

(१) वह जानती है और जान कर मरती हुई भी जिये जा रही है। और मैं हूँ कि जीती हुई भी मर रही हूँ और मरना चाह रही हूं...[4]।

२) कैसे जो जीवित नही है वे उन पर इतना कड़ा शासन करते हैं जो जीवन से छटपटा रहे हैं।[5]

---

१. अपने-अपने अजनबी---अज्ञेय (द्वितीय संस्कपण) पृ० १७।
२. ---वही--- पृ० १८।
३. ---वही--- पृ० ५६।
४. ---वही--- पृ. ३९।
५. ---वही--- पृ. ४५।

३) मौत दूसरों की हो सकती है, जिनका होना और न होना दोनों ही हम जान सकते हैं या मानते हैं लेकिन अपनी मृत्यु का क्या मतलब है ? वह केवल दूसरे को देखकर लगाया हुआ अनुमान है–कि दूसरे के साथ ऐसा हुआ इसलिए हमारे साथ भी होगा। लेकिन दूसरे ने अपने होने को कैसे जाना, क्या हमने भी ठीक उसके होने को ऐसे ही जाना ? क्या 'वह है' और 'मैं हूँ' ये दोनों बुनियादी तौर पर अलग–अलग ढंग के ही बोध नहीं हैं ? 'वह है' के जोड़ का बोध यह भी कि 'वह नहीं है,' लेकिन 'मैं हूँ' के साथ उसका उलटा कुछ नहीं है, 'मैं नहीं हूं' यह बोध नहीं हैं बल्कि बोध का न होना है ? [1]

इस तरह के और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं। योके को भय किस बात का है ? मृत्यु का। क्यों? इसलिए कि मृत्यु से हमारी पहचान नहीं है। मृत्यु से पहचान होने पर मृत्यु का भय नहीं होगा। अन–पहचानी चीज अजनबी होती है और अजनबी से हम भयभीत होतें हैं। दूसरी बात यह कि योके अपनी आँखों बुढ़िया को मृत्युन्मुख देख रही है। दूसरे के होने और न होने को हम देख सकते हैं और इसी से अपने प्रति अनुमान लगाया जा सकता है। योके इस अनुमान से ही भयभीत हैं। बुढ़िया के मरने से, वह बुढ़िया के प्रति भयभीत नहीं है, वह तो उस अनुभव के आधार पर अपने न होने के अनुमान से भयभीत है। उसे बुढ़िया के होने और न होने से उतना भय नहीं है जितना उसके न होने के बोध से भय है। इसीलिए उसमें विरोध का भाव स्थान स्थान पर व्यक्त होता हुआ दिखाई देता है। योके को अपना अस्तित्व खतरे में दिखाई देता है और यही अस्तित्ववाद का भय है। यह योके मात्र की समस्या इसलिए नहीं कि इस प्रकार का भय आज मानव जाति में पहले की अपेक्षा अधिक फैला हुआ है। इजराइल एवं अरब राष्ट्रों को लड़ते हुए देखकर या वियतनाम पर बमबारी का समाचार सुनकर और राष्ट्रों को अपना अस्तित्व खतरे में दिखाई देता है। हम अपने लिए अधिक चिन्तित हैं औरों के लिए नहीं। अमेरिका, भारत की सहायता भारत के लिए नहीं अपने स्वयं की रक्षा के लिए करता है। ठीक वैसे ही जैसे उपन्यास में योके बुढ़िया की सहायता करती है। किन्तु योके के भय की भी सीमा है। उसका भय इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह बुढ़िया के अस्तित्व मात्र से घबरा जाती है और उसको समाप्त कर देना चाहती है। बुढ़िया से छुट्टी पा लेने पर भी

---

१. अपने–अपने अजनबी–अज्ञेय (द्वितीय संस्करण) पृ. ५४।

अकेलेपन का बोध क्या कम खतरनाक है ? इस स्थिति में तो व्यक्ति का मृत्यु से सीधा सामना है । अकेलेपन का भय इन पंक्तियों में देखिए—

"यह मेज, यह पलंग, यह आईने का चौखटा, यह आईने में मेरी परछाई, य मेरे अपने हाथ पैर, ये मेरी उंगलियां और यह मेरी उंगलियों की गति। कैसी भयानक है पार्थिवता, स्थूलता, यह गतिमत्ता। मैं मुट्ठी बन्द करती हूं और खोलती हूँ और मुझे अपनी उंगलियों की गति से डर लगने लगता है। मुझे नहीं लगता कि मैं उनको चलाती हूं—वे अपने आप चलती हैं, और कैसा आंतकित करने वाला है यह विचार कि मेरी उंगलियां अपने आप मुझ से एक स्वतन्त्र अपने निरात्म मन से चलती हैं ! और उससे भी अधिक कितना अधिक भयानक है यह मानना कि वे अपने आप नहीं चलतीं बल्कि मेरे द्वारा चलायी जाती हैं। क्योंकि तब क्या मैं वैसी ही निरात्म हूं ?" [1]

इस प्रकार योके की समस्याएं आज के मानव जगत की समस्याएं हैं। यह ठीक है कि उपन्यास में समस्या का चरम रूप है, मृत्यु से सीधा सामना है फिर भी आज का मानव युद्ध को आशंका से ग्रस्त है और उसका प्रभाव पश्चिम के साथ साथ अब पूर्व पर भी पड़ता जा रहा है। योके को भी युद्धकाल का सामना करना पड़ा है। जर्मनों के द्वारा वह प्रताड़ित होती है और उसे जर्मन वेश्या कहा गया है। इस समय की उसकी विक्षिप्त अवस्था जिसमें सब उसका मजाक उड़ायें वास्तव में मानव–जाति का यह खतरा है और इस खतरे के परिणाम में योके की स्थिति मानव जाति की स्थिति है, जहां मानवीय सन्तुलन बिगड़ा हुआ है और मानवता का मजाक उड़ाया जा रहा है। योके किसी अच्छे आदमी के पास मरना चाहती है, इसका तात्पर्य यही कि युद्ध के कारण बिगड़े हुए मानवीय सन्तुलन के भीतर वह मानवीय आस्था का दर्शन करना चाहती है। जगन्नाथन उसे एक ऐसा अजनबी पात्र मिल जाता है। उसकी अच्छाई का प्रमाण यही है कि वह उसे वेश्या नहीं समझता और उसके साथ जर्मनों सा व्यवहार नहीं करता। उसकी अच्छाई का दूसरा प्रमाण यह है कि वह यह जानते हुए कि उसने उसका तीन दिनों का अन्तिम भोजन खराब कर दिया हैं, उसे मारता नहीं। जगन्नाथन के मन में योके (अजनबी) के प्रति मानवीय भाव है। इस भाव को देखकर योके को इस बात का समाधान हो जाता है कि उसे अपनी इच्छानुकूल अजनबी मिल गया है और इसीलिये अपने किए हुए अपराध के प्रति क्षमा चाहती हुई

---

१. अपने–अपने अजनबी –अज्ञेय (दूसरा संस्करण)–पृ. ६०।

एवं और सब को क्षमा करते हुए वह संतोष के साथ मर जाती है। उसके इस मरने में आस्था की विजय है। भयभीत होकर मरना एवं मृत्यू का स्वागत करना दोनों में अन्तर है। योके में ये दोनों ही स्थितियां दिखाई गई हैं। बुढिया सेल्मा को मरते देखकर वह भयभीत होती है, उस समय उसका जीना मरने के समान ही है और अन्त में उसका संतोष के साथ प्राण त्याग देना मृत्यु का स्वागत करना है और इस स्वागत में वह मरकर भी जी रही है। कबीर ने यही बात कही है। मृत्यु के रहस्य को जान लेने पर मृत्यु का भय नहीं रहता। कबीर की निम्नलिखित पंक्तियां इस संदर्भ में देखी जा सकती हैं।

हम न मरें मरिहैं संसारा, हम कूं मिल्या जियावनहारा।
अब न मरौं मरनै मन माना, तेइ मुए जिनि राम ना जाना।
साकत मरै संत जन जीवै, भरि भरि राम रसाइन पीवै।
हरि मरिहैं तौ हमहूं मरिहैं, हरि न मरै हम काहे कूं मरिहै।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा। [1]

—कबीर को जियावनहारा का ज्ञान है, इसीलिए वे निर्भय है। जब हरि नहीं मरता तो वे कैसे मर सकते हैं? मृत्यु पर विजय पाने के लिए आस्था की आवश्यकता है। कबीर की आस्था राम में है और वही उनका सबसे बड़ा बल है। इस आस्था का सहारा बुढिया सेल्मा को प्राप्त था, इसीलिए वह भी निर्भय थी। योके में इसका अभाव था इसीलिए वह परेशान रही। इस दृष्टि से दोनों का संवाद देखिए :—

योके पूछती है — 'वह क्या है जो तुम्हें सहारा देता है, जबकि मुझे डर लगता है?' बुढिया के उत्तर का कुछ भाग यह है— 'क्या सचमुच ऐसा है? मुझे किसका सहारा है, मैं नहीं जानती हूं, ईश्वर का है यह भी किस मुंह से कह सकती हूं? शायद मृत्यु का ही सहारा है। वह है, बिल्कुल पास है, सामने खड़ी है, लगता है कि हाथ बढाकर उसे छू सकती हूँ। और यह कहने में और इसमें क्या फर्क है कि हाथ बढ़ाकर उसका सहारा ले सकती हूँ? ईश्वर... ईश्वर का नाम ले लेना तो बड़ा आसान है लेकिन बड़ा मुश्किल भी है।' आगे और वह कहती है— '...भ्रम भी क्या कम ईश्वर है? और ईश्वर की कौनसी पहचान हमारे पास है जो भ्रम नहीं है? जब ईश्वर पहचान से परे है तो कोई भी पहचान भ्रम है। ईश्वर

---

१. कबीर ग्रंथावली— सं. श्यामसुन्दरदास— पदावली— पद संख्या ४३ पृ. ८०

को हम कैसे जान सकते हैं ? जो हम जान सकते हैं वे कुछ गुण हैं और गुण हैं इसलिए ईश्वर के तो नहीं है । हम पहचानते हैं अनिवार्यता, हम पहचानते हैं अन्तिम और चरम और सम्पूर्ण और अमोघ नकार- जिस नकार के आगे कोई सवाल नहीं हैं और न कोई आगे जवाब ही··· इसीलिए मौत ही तो ईश्वर का एकमात्र पहचाना जा सकनेवाला रूप है। पूरे नकार का ज्ञान ही सच्चा ईश्वर ज्ञान है। बाकी सब सतही बातें हैं, और झूठ हैं।'[1]

यह मृत्यु में आस्था की वाणी है, मृत्यु दर्शन का मर्म है, ईश्वर को पहचानने की विधि है। इस आस्था के अभाव में हम जी नहीं सकते।

इस उपन्यास के पात्र विदेशी हैं, स्थान विदेशी है, एवं संस्कृति भी विदेशी है। मानव जीवन आज जिस खतरे के दौर से गुजर रहा है, उसकी ओर इसमें संकेत है। मानवता की पीड़ा या वेदना की इसमें विवृत्ति हुई है। एक रूपक के अर्थ में भी उपन्यास का विवेचन किया जा सकता है: आस्था एवं आनास्था के संघर्ष की कहानी के रूप में इसकी व्याख्या की जा सकती है। जीवन और मृत्यु के बोध का ज्ञान करानेवाली कथा के रूप में इसे लिखा जा सकता है। विदेशी होने पर भी पूर्व का इस पर प्रभाव है। इस अर्थ में जगन्नाथन इसका प्रतिनिधित्व कर रहा है। बुढ़िया सेल्मा के आस्था वाले पक्ष में पूर्व के दर्शन का प्रभाव है। मठवासी भिक्षु की कथा जिसका योके स्मरण करती है, पूर्व के दर्शन के प्रति व्यक्त की गई जिज्ञासा है, एक संदेह है, जो पश्चिमवासियों में है किन्तु अन्त में योके प्रभावित होती है और पूर्व की आस्था को लिए हुए मृत्यु का आलिंगन करती है। इस अर्थ में यह उपन्यास पूर्व एवं पश्चिमी संस्कृतियों के अन्तरंग को छूता है और मृत्यु, जिसे अपरिचित, अनजान, भ्रम या नकार कहा जाए, अजनबी के ही लक्षण जिसमें हैं और जिसे अपना बनाना बहुत कठिन है, उसे अपना बनाने का संघर्ष इसमें दिखलाया गया है। मृत्यु को अपना बना लेने पर जीवन अपना हो ही जायगा। इस अर्थ में उपन्यास का नाम 'अपने अपने अजनबी' सार्थक ही है।

● ●

(सप्तसिन्धु, चण्डीगढ़, मार्च १९६८ में, प्रकाशित)

---

१. अपने अपने अजनबी—अज्ञेय—(द्वितीय संस्करण) पृ. ५२ और ५३।

फणीश्वरनाथ रेणु | मैला आंचल

श्यामल स्वर्णांचल का जीवन

● श्यामल स्वर्णांचल का जीवन

मैला आँचल श्री. फणीश्वरनाथ रेणु का लिखा हुआ उपन्यास है। यह एक आँचलिक उपन्यास है। यह नाम स्वयं लेखक द्वारा दिया हुआ है। लेखक ने अपनी भूमिका में ही लिखा है-–'यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। बिहार राज्य का एक जिला है, इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिमी बंगाल।... मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को –– पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर –– इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है।'[1] लेखक के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि गाँव (पूर्णिया जिले का एक गांव—मेरीगंज) इस उपन्यास का मुख्य कथाक्षेत्र है। इससे पूर्व लिखे गए उपन्यासों में किसी गाँव की कथा इस दृष्टि से नहीं लिखी गई। इस दृष्टि से औपन्यासिक जगत में यह एक नए प्रयोग के रूप में यह कथा हिन्दी जगत में सामने आई है। इस उपन्यास की कतिपथ विशेषताओं पर नीचे प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

जब तक इस उपन्यास के दृष्टिकोण को नहीं समझा जाता तब तक पाठक इस उपन्यास का आनन्द भी नहीं ले सकता। प्रथम वाचन के समय पाठक को कुछ धैर्य रखना आवश्यक हो जाता है किन्तु द्वितीय वाचन में कहीं पर भी ऐसी कठिनाई का अनुभव नहीं होगा। इस उपन्यास को कम से कम दो बार पढ़ा जाना चाहिए कथ्य भिन्न होने के कारण कथाकथन की पद्धति भी भिन्न हो गई है। यह न तो तृतीय पुरुष में लिखा गया है और न प्रथम पुरुष में। इसकी शैली को ठीक ठीक नाम देना कठिन है। न डायरी, न आत्मकथा। लेखक स्वयं: भी पात्रों पर छाया हुआ नहीं है और न ही पात्र स्वयं

---

१. मैला आँचल–श्री फणीश्वरनाथ रेणु– –भूमिका से.

वैयक्तिक धरातल पर चलते प्रतीत होते ह। शैली में नवीनता है। यह नवीनता चौंका देनेवाली है। इस उपन्यास की चर्चा बहुत हुई है और इसके आधार पर 'आँचलिक उपन्यास' एक स्वतंत्र रूप उपन्यासों में मान लिया गया है फिर भी अभी इस उपन्यास का पूर्णत: मूल्यांक्न हुआ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यहाँ पर इस उपन्यास के अन्तरंग को स्पष्ट करते हुए उसकी शैली एवं शिल्प में जो नवींनता दिखलाई देती है, उनकी और ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

इस उपन्यास का कथानक १९४६ ई. और १९४८ ई. (लगभग दो-ढाई वर्ष) के बीच का है। इस कालखण्डके भीतर पूर्णिया जिले के एक गाँव मेरीगंज की कथा इस उपन्यास में है। इसको भी दो भागों में बाँट दिया गया है। यह विभाजन स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के अनन्तर के रूप में है। उपन्यास का दो तिहाई भाग प्रथम खण्ड में है और एक तिहाई द्वितीय खण्ड में। उपन्यास की घटनाओं में प्रमुख घटना है-- डिस्ट्रिक बोर्ड के बंगाली अधिकारी परफुल्लो बनर्जी एवं उसके किरानी जीत्तन बाबू के द्वारा मलेरिया सेंटर की स्थापना और इस स्थापना के अन्तर्गत डाक्टर प्रशांत के आगमन की है। इसके साथ साथ तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं के कारण गाँव में जो सहज परिवर्तन होता जाता है उसका बड़ा ही मर्म स्पर्शी वर्णन उपन्यास में हुआ है। गाँव की राजनीतिक घटनाओं के मूल में प्रत्यक्ष रूप में हेल्थ सेंटर की स्थापना है और अप्रत्यक्ष रूप से बालदेवजी, बावनदास के द्वारा काँग्रेस का, कालीचरन, वासुदेव और सुन्दरा के द्वारा सोशलिस्ट का प्रभाव दिखलाया गया है। स्थानीय राजनीति में प्रमुख रूप से महंत सेवादास के मरने के बाद उसकी गद्दी रामदास को देनेकी एवं संथालों के साथ लडाई की है। इनके साथ साथ पारबत्ती की माँ —मौसी—की हीरु द्वारा हत्या (इसके मूल में जोतखी काका थे) और बावनदास का प्राणत्याग आदि अन्य घटनाएँ भी हैं। ये घटनाएँ ऐसी हैं, जिनका ग्रामीण जीवन से घनिष्ट संबंध है। वैयक्तिक धरातल पर कुछ और घटनाएँ हैं। जैसे महंत सेवादास और लक्ष्मी दासिन का संबंध, महंत सेवादास की मृत्यु के बाद लक्ष्मी का रामदास से अलग होना और बालदेवजी के साथ रहना, प्रशान्त डाक्टर का तहसीलदार विश्वनाथपरसाद की लड़की कमली को ठीक करना, उसके साथ प्रेम करना, रेलवे खलासी का फुलिया से चुमौना का प्रयास, रामदास का रमपियरिया को दासिन बनाना आदि घटनाएँ हैं। ये घटनाएँ वैयक्तिक ही है ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि

गाँव भर में इनकी चर्चा होती रहती है और इस अर्थ में ये घटनाएँ पात्र की निजी घटनाएँ नहीं रह जाती इनका बखान ग्रामीण समाज में होता है और इसलिए ये घटनाए भी गाँव की घटनाएँ हो गई हैं। एक प्रकार से प्रत्येक पात्र के चरित्र चित्रण में गाँव की धरती का स्पर्श है। उपन्यास में पात्र नहीं गाँव की मिट्टी बोलती दिखलाई देती है। घटना चाहे असाधारण हो या साधारण, उसका संबंध गाँव की मिट्टी से है। बाहर से आनेवाला पात्र डाक्टर प्रशांत था और इस डाक्टर पर भी गाँव की मिट्टी का असर हो गया है। वह वहाँ शोध करने के लिए आया था। उसके शोध का विषय था मलेरिया–कालाआजार किन्तु उस शोध में वह अपने को असफल अनुभव करता है। उसने रोग की जड़ पकडी तो है किन्तु उसका संबंध मलेरिया–कालाआजार से नहीं है, उसका संबंध गरीबी और जहालत से है। गाँव से यदि ये दोनों कीटाणु दूर कर दिए जाएँ तो गाँव स्वस्थ हो जाएगा। उपन्यास के अन्त में ममता डाक्टर से कहती है–" कोई रिसर्च कभी असफल नहीं होता है डाक्टर, तुमने कम से कम मिट्टी को तो पहचाना है ...मिट्टी और मनुष्य से मुहब्बत छोटी बात नहीं। "[1] लेखक अपनी ओर से यदि कुछ कहता प्रतीत होता है तो वह डाक्टर प्रशांत के माध्यम से ही। डाक्टर प्रशांत के आगमन की भूमिका के साथ उपन्यास का प्रारंभ होता हैं और डाक्टर के इस कथन में उसका अन्त होता है–" ममता, मैं फिर काम शुरू करूँगा–यहीं इसी गाँव में। मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएँगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले। कम–से–कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाए ओठों पर मुस्कराहट लौटा सकूं; उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूं... "[2] ममता उत्तर में आँचल पसारकर आशीर्वाद देने की कामना व्यक्त करती है। डाक्टर प्रशांत की इच्छा और उसके प्रति ममता की शुभ कामना के रूप में ही उपन्यासकार का संदेश दिखलाई देता है।

इस तरह यह उपन्यास गाँव की कथा को– एक निश्चित कालखण्ड के भीतर की कथा को—लोकवाणी के रूप में कहता है।

---

१. मैला आँचल–श्री फणीश्वरनाथ रेणु–पृ. ३७८।

२. –वही–पृ. ३८३।

इस उपन्यास की शैली में लोकवाणी का स्पर्श है। दूसरे, परदे पर जैसे चित्र दिखलाया जाता है, उसी तरह एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा इस तरह से चित्र इस उपन्यास मे दिखलाए गए हैं। दौड़ती रील की तरह घटनाएँ एक के बाद दूसरी अग्रसर होती दिखलाई देती हैं। पात्र यदि बोलते हैं, आपस में यदि इनमें बातचीत होती तो वह उसी रूप में जैसे परदे पर पात्र बोलते हुए दिखलाई देते हैं। इस उपन्यास में बहुत सा भाग ऐसा है जिसे थोड़े बहुत हेर फेर से बड़ी सफलता के साथ रेडिओ रूपक में परिवर्तित किया जा सकता है। रेडिओ रूपक में और आवश्यक तत्त्वों के साथ ध्वन्यात्मक प्रभाव को बनाए रखना आवश्यक है। उपन्यास की भाषा में ध्वन्यात्मक प्रभाव को बनाए रखने का सफल प्रयोग हुआ है। ध्वनि मात्र से पात्र का चरित्र और उसका सहज रूप अपने आप स्पष्ट होता जाता है। खूबी तो यह है कि संगीत की अस्पष्ट छाया (यह संगीत लोक संगीत है) अनेक स्थलों पर दिखलाई देती है। ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करते हुए भी उपन्यास को साहित्यिक स्तर से गिरने नहीं दिया है। गांव की भाषा में गाली गलौज का अधिक प्रयोग होता है, यों कहिए कि खुलकर प्रयोग होता है ऐसे प्रसंगों को लेखक ने ग्रामीण शिष्ट प्रयोगों के रूप में ही प्रस्तुत किया है गालियों का प्रयोग हुआ भी है तो वह प्रयोग इतना प्रचलित है कि अखरता नहीं प्रथम खण्ड को ४४ एवं द्वितीय खण्ड को २३ श्रव्यचित्रों में बाँटा गया है। ये सभी आपस में एक दूसरे से सम्बद्ध होते हुए भी इनका स्वतंत्र अस्तित्व भी है। लेखक ने इनका नाम श्रव्यचित्र नहीं दिया है किन्तु इनकी अपनी विशेषताओं के कारण उन्हें श्रव्यचित्र की संज्ञा दी जा सकती है। ये श्रव्यचित्र मुक्तक रूप में भी लिखे गये हैं। बहुत से चित्र ऐसे हैं, जिनका अपना स्वतंत्र आनन्द है। जैसे हम हैदराबाद देखने जाएँ और वहाँ के किसी एक भाग को देखकर उसी में रम जाएं। कुछ लोग सारे नगर को घूमकर देख सकते हैं किन्तु कुछ लोग कुछ ही स्थानों से प्रभावित होते हैं और कुछ लोग एक-दो स्थलों को ही देख पाते हैं। किन्तु इस नगर दर्शन में देखनेवाले को नगर का सारा ब्यौरा मालूम हो जायेगा ऐसा नहीं कहा जा सकता। इतिहास की जानकारी हो तो अच्छा है, न हो तो वह वर्तमान रूप को ही देख समझ लेता है और उसीसे आनन्द लाभ करता है। इसी तरह मैला आँचल उपन्यास के बहुत से श्रव्यचित्र ऐसे हैं जिनमें पाठक उसके अपने स्वतंत्र चित्र का आनन्द ले सकता है। पूर्वापार सम्बन्ध का ज्ञान हो तो अच्छा है। न हो तो भी यदि इस ज्ञान से उपन्यास पढ़ें कि इसके पढने से

ग्रामदर्शन होगा, इस उपन्यास का आनन्द लिया जा सकता है। मेरीगंज इस उपन्यास में बोल उठा है।

आजकल रेडिओ से आँखों देखा हाल प्रसारित होता है। विशेष रूप से खेलों का प्रसारण इसी रूप में होता है। पं. जवाहरलाल एवं लालबहादुर शास्त्रीजी के स्वर्गवास के समय भी रेडिओ से आँखों देखा हाल सुनाया गया। इस तरह के प्रसारण की जो शैली होती है, कुछ उसी से मिली जुली शैली, मैला आँचल की है। काँमेट्री, आँखों देखा हाल या श्रव्य-चित्र कुछ भी कह लीजिए, एक ही बात है। इस शैली की एक विशेषता यह है कि इस में वर्तमान पर, आँखों के सामने होनेवाली घटनाओं पर ध्यान केन्द्रित होता है। सुनानेवाला यह जानता है कि उसे वही बात कहनी है, जो वह आंखों से देख रहा है और इस रूप में कहना है कि इसे सुनकर न देखने वाला भी देख लें। वर्तमान को समझाने के लिए वह अतीत का सहारा भी लेता चलता है। जो घटना सामने होती है, उसके संदर्भ की व्याख्या भी वह बीच बीच में करता चलता है। यह इसलिए कि वर्तमान का चित्र केवल देखा ही नहीं जाए बल्कि उसे समझ भी लिया जाए और उसका पूरा आनन्द लिया जाय। अतीत का कथन, वर्तमान के प्रसंग को छेड़कर किया जाता है। कथा को पीछे मोडते हुए भी उसको वर्तमान से सम्बद्ध बनाने का सतत प्रयास किया जाता है। ठीक इसी रूप मैला आँचल लिखा गया है।

उपन्यास की शैली का एक उदाहरण दिया जा रहा है।—"मठ पर गाँव भर के मुखिया लोगों की पंचायत बैठी है। बालदेवजी को आज फिर 'भाखन' देने का मौका मिला है। लेकिन गाँव की पंचायत क्या है पुरैनिया कचहरी के रामू मोदी की दुकान है। सभी अपनी बात पहले कहना चाहते हैं। बातें बढ़ती जाती है और असल सवाल बातों के बवंडर में दबा जा रहा है। सिंघजी चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं, "उस दिन यदि हम घर में रहते तो खून की नदी बह जाती।" कालीचरन चुप रहनेवाला नहीं है, "वाह रे, दरवाजे पर एक एक भले आदमी को बेइज्जत करना 'इन्सान' आदमी का काम है?" तहसीलदार साहब कहते हैं "अस्पताल तो सबों की भलाई के लिए बन रहा है—इससे सिर्फ हमारा ही फायदा नहीं होगा" ओवरसियर बाबू कह गए थे कि तहसीलदार साहब जरा मदद दीजिएगा। हम अपने मन से तो अगुआ नहीं बने हैं। तुम्हीं बताओ खिलावन भाई"[1]—

१. मैला आँचल—श्री फणीश्वरनाथ रेणु—पृ. ३४।

यह क्रम इसी प्रकार और आगे चलता रहता है। गाँव-भर के मुखिया लोगों की पंचायत का आँखों देखा हाल है। इस पंचायत का एक और दृश्य देखिए जिसमें लछमी के भाषण समाप्त कर बैठ जाने का वर्णन है।—"लछमी बैठ गई। उसका चेहरा तमतमा गया है, गाल लाल हो गए हैं और कपाल पर पसीने की बूँद चमक रही हैं। पंचायत में सन्नाटा छाया हुआ है, मानो जादू फिर गया हो। बालदेवजी का भाखन देने का उत्साह कम हो गया है।"[1] पढ़कर लगता है संसद की समीक्षा रेडिओ से सुन रहे हैं।

गाँव का परिचय देने की शैली इस प्रकार है——"मेरीगंज एक बड़ा गाँव है। बारहों बरन के लोग रहते हैं। गाँव के पूरब एक धारा है। जिसे कमला नदी कहते हैं। बरसात मे कमला भर जाती है, बाकी मौसम में बड़े-बड़े गढ़ों में पानी जमा रहता है——मछलियों ओर कमल के फूलों से भरे हुए गढ़े। पौष——पूर्णिमा के दिन इन्हीं गढ़ों में कोशी स्नान के लिए सुबह से शाम तक भीड़ लगी रहती है। रौतहट स्टेशन से हलवाई और परचून की दूकाने आती हैं। कमला मैया के महात्म्य के बारे मे गाँव के लोग तरह-तरह की कहानियाँ कहते हैं ...... ।[2] —— यदि चित्र दिखलाते हुए बच्चों को किसी गाँव का परिचय देना हो तो वह इसी शैली में दिया जायगा। बहुत से मौन-चित्र (शिक्षा के लिए) दिखलाए जाते हैं। इन चित्रों को दिखलाते समय चित्रों का परिचय देने के लिए एक वक्ता चित्रानुसार उनकी व्याख्या करता रहता है। उसकी शैली जिस प्रकार होगी, उसी रूप में गाँव का परिचय दिया जा रहा है। गाँव की विभिन्न टोलियों का और उन टोलियों के मुखियों का परिचय भी इसी रूप में दिया गया है।

इस तरह यह उपन्यास श्रव्यचित्रों के रूप में लिखा गया है। यह तो शैली हुई। अब शिल्प देखें। शिल्प के अन्तर्गत यह देखना है कि इन श्रव्यचित्रों को आपस में किस तरह गठित किया गया है। कथा का प्रवाह किस प्रकार चलता है? वस्तु का गठन किस रूप में किया गया है? आदि आदि।

जैसे कि पहले ही कहा गया है कि उपन्यास की कथा मेरीगंज——गाँव की कहानी है। यह कहानी भी १९४६ ई. और १९४८ ई. के बीच की है।

---

१. मैला आँचल—श्री फणीश्वरनाथ रेणु—पृ. ३५

२. ——वही—— पृ. १६

प्रमुख घटना जिसका प्रभाव आदि से अन्त तक उपन्यास में बना हुआ है, वह है–मलेरिया सेंटर की स्थापना। उपन्यास को दो खण्डों में बाँटा गया है। प्रथम खंड में ४४ और द्वितीय खण्ड में २३ श्रव्यचित्र हैं। प्रथम खण्ड के प्रथम चित्र में–अर्थात आरंभ में. यह दिखलाया गया है कि हेल्थ सेंटर की स्थापना के लिए ओवरसियर एवं उसका सहयोगी वहाँ आए हैं। उन्हें सरकार की ओर से आदेश प्राप्त है। वे स्थान की पैमाइश करते हैं और गाँववालों से भेंट होने पर उनसे इस कार्य में सहयोग की प्रार्थना करते हैं। कथा इतनी सी है किन्तु इसे प्रस्तुत करने का ढंग लेखक का अपना है। लेखक अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। वह ४२ के आन्दोलन के गाँव पर पड़नेवाले प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहता है कि गाँववाले ४२ के आन्दोलन की खबरों से ही आतंकित थे। उनका आतंक चार वर्ष बाद भी दूर नहीं हुआ (वस्तुस्थिति यह थी कि ४२ के आन्दोलन में वहाँ कोई उत्पात नहीं हुआ था) कारण यह कि चार वर्ष के बाद हेल्थ–सेंटर की स्थापना के हेतु आए हुए ओवरसियर एवं उसके सहयोगियों को आने का समाचार सुनकर (गाँववाले यह नहीं जानते कि आनेवाले ओवरसियर हैं और वे हेल्थ-सेंटर की स्थापना करना चाहते हैं) उन्हें ४२ के आन्दोलनों के समाचारों की याद आ जाती है और वे यह समझने लगते हैं कि –'पूरे चार साल के बाद इस गाँव की बारी आई है। दुहाई माँ काली। दुहाई बाबा लरसिंह।[1] –' इस गलतफहमी में गाँव भर में तहलका मच जाता है और 'जितने मुँह, उतनी ही बातें' वाली कहावत चरितार्थ होती दीखती हैं। इससे बचनें के लिए गाँव-भर मे प्रयास होता है, दौड़-धूप होती है। यादव टोली के लोग बालदेव को बाँध कर मलेटरी (वास्तव में ओवरसियर किन्तु भ्रान्ति से मलेटरी समझ लेते हैं) के पास ले जाते हैं। बालदेवजी काँग्रेसी नेता के रूप में ख्यात थे और अंग्रेजों के विरोधी हैं अतः गाँववाले उन्हें पकड़ कर ले जाते हैं (यादव टोली के लोग ही ले जाते हैं) । इसके साथ साथ तहसीलदार साहब अपने सहयोगी की सहायता से रिश्वत की सारी सामग्री लिए पहुँचते हैं और गाँव से वसूली कर लेने का पूरा, प्रबन्ध कर लेते हैं। रामकिरपालसिंघ भी पहुँचते हैं। किन्तु उन्हें बात करने का अवसर नहीं मिलता। बालदेव को छोड़ दिया जाता है और लगता है कि सारा मैदान उसी के हाथ है। अपने अज्ञान पर उन्हें ग्लानि होती है और स्वयं ही अपना ऐतिहासिक परिचय दे देते हैं। बाहर से आने वाले परफुल्लो बनर्जी एवं उनके किरानी जीत्तन बाबू अपना उद्देश उन्हें बतला देते

१. मैला आँचल – श्री फणिश्वरनाथ रेणु – पृ. ९.

हैं और गाँववालों से प्रार्थना करते हैं कि उनके इस कार्य में वे सहयोग दें। इस समय गाँव का प्रतिनिधित्व करनेवाले तीन व्यक्ति थे। विश्वनाथप्रसाद तहसीलदार, ठाकुर रामकिरपालसिंघ और बालदेवजी। यह प्रथम श्रव्यचित्र का अन्त है। लेखक ने कथानक को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि किसी घटना का गाँव के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, उसे ग्रामीण जीवन के दृश्य-चित्रों में दिखलाया जाए। गाँव में भ्रम फैला हुआ है तो भ्रम का रूप क्या है? उसे दिखलाया गया और ग्रामीण लोग, वहाँ के तथाकथित नेता इस भ्रम को दूर करने का प्रयास किस रूप में करते हैं। उसका वर्णन भी उपन्यास में किया गया है। यह सब सहज एवं गाँव की प्रतिध्वनि के रूप में है। इस तरह विस्तार से प्रत्येक श्रव्यचित्र का विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया जायगा तो लेख का कलेवर बढ़ेगा। अतः अन्य श्रव्य–चित्र भी इसी तरह लिखे गए हैं, समझ लिया जाय। अब यह देखना है कि इन श्रव्यचित्रों को आपस में किस तरह गठित किया गया है? प्रथम चित्र में मलेरिया-सेंटर की स्थापना के हेतु गाँव में आए ओवरसियर एवं उसके सहयोगियों की प्रतिक्रिया व्यक्त की गई है। दूसरे में मेरीगंज गाँव का इतिहास, उसके नामकरण की कहानी, लोकप्रचलित दंत-कथाएँ, एवं गाँव की वर्तमान स्थिति का परिचय है। प्रथम से इसका सम्बन्ध इस रूप में है कि यह सारा परिचय उसी गाँव का है, जहाँ हेल्थ सेंटर की स्थापना हो रही है। तीसरे चित्र में कथा फिर वर्तमान का रूप ले लेती है। बालदेवजी उत्साह से काम कर रहे हैं। इसकी राजनीतिक प्रतिक्रिया ग्रामीण जीवन में होती है। राजपूत टोली यह कब सहन कर सकती थी कि बालदेव लीडर बन जाए। हर कोई बालदेवजी के साथ उग्र व्यवहार करता है फलस्वरूप विवाद बढ़ जाता है। यादव टोली और राजपूत टोली में संघर्ष होने लगता है किन्तु बालदेवजी गान्धीजी के सिद्धान्तों की दुहाई देकर अनसन आदि का सहारा लेकर विवाद समाप्त कर देते हैं। चतुर्थ में मठ का परिचय, उसकी दासी लछमी कोठारिन, एवं खंजडी बजानेवाले रामदास का परिचय दिया गया है। परिचय इतिहास के रूप में नहीं बल्कि मठ की दैनिक दिनचर्या के रूप में है। यदि मठ में पहुँच जाए तो वहाँ का दृश्य जिस रूप में दिखलाई देगा उसी रूप में यह लिखा गया है। प्रमुख घटना यह है कि महंथ साहब को स्वप्न दिखाई देता है कि गाँव में गांधीजी के द्वारा इसपिताल खुल रहा है, अतः गाँव को भंडारा दिया जाय। यह उन्हें सतगुरू साहब ने बतलाया। महंथ साहबने भंडारा देने के निश्चय की घोषणा की। गाँव भर में इसकी भिन्न भिन्न रूप में प्रतिक्रिया हुई। पाँचवे में गाँव की पंचायत मठ

में होती हुई दिखलाई गई। छठ में बालदेवजी के वर्तमान में बालदेवजी का अतीत झांकता हुआ। साँतवे में डॉक्टर के सहयोगी प्यारु का डाक्टर के आगमन की तैयारी के रूप में साथ ही डाक्टर के आगमन का गांववालों द्वारा स्वागत। आठवें में महंथ सेवादास की मृत्यु, लछमी का अकेलेपन का दुख। बालदेवजी लछमी के प्रति बढता अनुराग। नौ में गाँववालों की डाक्टर प्रशान्त के जात को जानने की जिज्ञासा। प्रशान्त के कुलशील का अतीत का घूमता चित्र। इसी के अन्तर्गत उसके जन्म से मलेरिया सेंटर तक पहुँचने की कथा। अब डाक्टर प्रशान्त के पहुँचने से पूर्व की कथा पर संक्षेप में विचार करें तो सार रूप में यह कहा जा सकेगा कि लेखक ने गाँव का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह मलेरिया सेंटर स्थापित होने की सूचना के बाद का है। इस समाचार के भ्रम का चित्र सर्वप्रथम चित्रमें, दूसरे में गाँव का परिचय, तीसरे में भ्रम का निवारण होने पर ग्रामीण राजनीतिक प्रतिक्रिया चौथे में गाँव के पंचायत स्थल मठ का परिचय, पाँचवे में पंचायत, छठे में ग्रामीण नेता बालदेव का अतीत, सातवें में डाक्टर के आगमन की तैयारी, आठवें में महंथ की मृत्यु और नौ में स्वयं डाक्टर का, अतीत का घूमता चित्र वर्तमान स्थिति तक पहुँचने का है। ये सभी चित्र एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। कथा शिल्प की प्रमुख विशेषता यह है कि घटनाओं को घटित होते हुए दिखलाया गया है। इसलिए कथा का पूर्वाभास पाठक को नहीं होता। पात्र जीवन के चौराहे पर हैं। जैसे वे जीते हैं, जैसी अनुभूतियाँ (पात्रों की), जैसी उनकी प्रतिक्रियाएँ हैं, उसी रूप में लेखक ने पाठकों के सम्मुख उन्हें प्रस्तुत कर दिया है। लेखक तटस्थ है। वह तो अपनी आँखो से जो देख रहा है, उसे कहता है। उसके कहने में दृश्य जगत अधिक है और उसकी अपनी बात कम। वह मानों उँगली पकड़कर पाठकों का ग्रामदर्शन करा रहा है। बहुतों को शिकायत हैं कि कथा–प्रवाह में सूत्र का अभाव है। यह अभाव है, प्रथम–वाचन में कथा का पूर्वाभास नहीं हो सकता। यह उपन्यास के नए शिल्प के कारण है। यह अभाव उन्हीं को खलेगा जो प्रेमचंद–परंपरा के उपन्यासों के प ने के अभ्यासी हैं। ऊपर नौ श्रव्यचित्रों का संक्षिप्त कथानक दिया गया है। साथ ही यह भी दिखलाया गया है कि उनका अन्तर्गठन किस प्रकार हुआ है। आगे की कथा इसी तरह चलती है। मूल कथा गाँव की है–मलेरिया हेल्थ–सेंटर गाँव में स्थापित हो रहा हैं। उसकी प्रतिक्रिया गाँव में होती है और उसी प्रतिक्रिया को गाँव का फिल्मीकरण करते हुए प्रस्तुत किया गया है। गाँव की राज–नीतिक घटनाओं का अन्तर्बाह्य विश्लेषण उपन्यास में है। ग्रामीण जीवन की राजनीति शहरी जीवन की राजनीति से भिन्न हैं। इसका यथार्थमूलक

चित्रण उपन्यास में हैं। इन सब ब्यौरों को इस तरह प्रस्तुत किया गया है, जिसमें पात्रों का वैयक्तिक स्वरूप सामाजिक जीवन का अंग होकर—ग्रामीण जीवन का अंग होकर—अवतरित हुआ है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में 'मैला आँचल' का एक विशिष्ट स्थान है। श्री नेमिचन्द्र जैन ने ठीक ही लिखा है––" वास्तव में मैला आँचल की बिशिष्टता इसमें नहीं कि उसमें देहाती जीवन का बहुत गहरा अध्ययन है, अथवा सामाजिक समस्याओं और उसके निदान के दर्शनिक आधार उसमें मौजूद हैं अथवा, युग–युग–व्यापी जीवन–सत्यों का उद्घाटन लेखक कर सका है। उसकी विशिष्टता उस अपूर्व आत्मीयता में, जिसके साथ लेखक ने गाँव के जीवन की समस्त कटुता और संगीत को, सरलता और विकृति को, स्वार्थपरता और सामाजिक एकसूत्रता को, अज्ञान और मौलिक नैतिक संस्कार को सँजोया है। इतनी तरल भावावेशपूर्ण उत्कटता से शायद ही किसी ने ग्रामीण जीवन को देखा हो––शरद और प्रेमचन्द ने भी नहीं, ताराशंकर बनर्जी ने भी नहीं।"[1] इस अर्थ में मैला आँचल को आँचिलिक उपन्यास कहना उपयुक्त है। लेखक के ही शब्दों में––" इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है गुलाल भी, कीचड भी है चन्दन भी, सुन्दरता भी है–– कुरूपता भी मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया।"[2] उपन्यास के प्रत्येक पात्र में ऊपर बतलाई गई विशेषताएं मिलती हैं। यह कथा मेरीगंज की कथा होने पर भी भारतीय गाँवों का आख्यान करनेवाली कथा है। शहर में रहनेवाले देहाती जीवन की कल्पना नहीं कर सकते। मेरीगंज जैसे अनेक गाँव भारत–वर्ष में हैं और उनकी भी वही समस्याएं हैं जो मेरीगंज की हैं। लेखक द्वारा दिए गए समाधान से आलोचक संतुष्ट न हों किन्तु ग्रामदर्शन लेखक ने ठीक ठीक करवा दिया है, इस सम्बन्ध में विवाद नहीं हो सकता। डाक्टर प्रशान्त गाँव में रहने जाता है और गाँव का हो जाता है। डाक्टर प्रशान्त की प्रतिक्रिया (गाँव के प्रति) उसके द्वारा लिखे गए पत्र में (ममता को लिख गए) देखी जा सकती है। उसकी रिसर्च मलेरिया–काला–आजार की होते हुए भी वह ग्रामीण जीवन की असली बीमारी की रिसर्च कर लेता है और उपन्यास के अन्त में वह अपने इस निश्चय की धोषणा करता है कि वह उसी गाँव में रहकर प्यार की खेती करना चाहेगा। डाक्टर प्रशान्त के इस कथन को और ममता द्वारा उसके प्रति व्यक्त की गई शुभ–

---

१. अधूरे साक्षात्कार ––श्री नेमिचन्द्र जैन––पृ. ३५.

२. मैला आँचल––श्री फणीश्वरनाथ रेणु––भूमिका से.

कामना को लेखक का आरोपित कथन कहा गया है। एक प्रकार की रोमैंटिक भावुकता भी उसमें दिखलाई गई है। किन्तु इससे उपन्यास के मूल दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं आता। गाँव के प्रति सहज आत्मीय भाव जगाने में लेखक सफल हुआ है। यह डाक्टर प्रशान्त में हुआ है और उसके साथ साथ पाठक समाज में भी यह आत्मीय भाव जागा है। गाँव के समाज को गाँव की दृष्टि से देखने की दृष्टि इसमें हैं और शहरी प्रतिक्रिया की झलक भी है। मानवीय मूल्यों में परिवर्तन का सहज क्रान्तिमय रूप भी इसमें दिखलाया गया है। दूध के धुले पात्र इसमें कहाँ ? बावनदास मात्र को गाँधी का उदाहरण प्रस्तुत करना पड़ा है। छोटे से बड़े सभी पात्र राजनैतिक परिस्थितियों से आक्रान्त हैं और तदनुसार मानवीय दृष्टिकोण में अन्तर आता जाता है। धर्म का प्रभाव आज ग्रामीण जीवन में उतना नहीं जितना राजनीति का हो गया है। (मेरीगंज में यही दिखलाया गया है) तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद इसीलिए सफल रहा कि वह सामजिक राजनीति में बड़ी कुशलता से भाग लेता है और स्वयं शक्तिशाली है। महंथ सेवादास और रामदास के हाथ में गाँव का नेतृत्व नहीं है। कालीचरन और सुन्दर या बालदेव एवं बावनदास अब गाँव का नेतृत्व करने लगे हैं और महंथ सेवादास को तक बालदेव के हाथ में भंडारा की व्यवस्था का काम सौंपना पड़ रहा है। रामदास को महंथ की गद्दी आचारजी नहीं कालीचरन दिलवाता है। ये और इस तरह की अनेक घटनाएँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि मानवीय मूल्यों की बागडौर अब धर्माधिकारियो के हाथ से चली गई हैं। और इनका स्थान राजनीतिक दलों ने ले लिया है। जोतखीजी के विचारों पर आस्था रखने का परिणाम हीरु को भोगना पडा है। इस तरह मानवीय मूल्यों के आधार इसमें बदलते हुए दिखलाए गए हैं।

सब मिलाकर यह उपन्यास अपने नाम के अनुकूल धरती के मैले आँचल का आख्यान प्रस्तुत करता है। केवल आख्यान ही नहीं करता बल्कि उस मैले आँचल के स्वर्णांचल का दर्शन भी वह करा देता है। और यही इस उपन्यास की सब से बड़ी उपलब्धि है। डाक्टर प्रशांत को अपने कुलशील का ज्ञान नहीं था। उसे अपने जन्म की कहानी की जानकारी नहीं थी। वह माता के आँचल के स्पर्श से वंचित था। इस आँचल को पाने की दृष्टि से ही वह गांव की ओर आकृष्ट हीता है। धरती उसकी माता है। धरती के आँचलसे उसे प्यार हो जाता है। वह कहता है — "माँ।" माँ वसुन्धरा, धरतीमाता। माँ अपने पुत्र को नहीं मार सकी, लेकिन पुत्र अपनी माँ को गला टीपकर मार देगा। शस्य श्यामला ...

भारत माता ग्रामवासिनी
खेतों में फैला है श्यामल,
धूल भरा मैला–सा आँचल।
मैला आँचल। लेकिन धरती माता अभी स्वर्णांचला है...”[1]

डाक्टर प्रशांत की इस अनुभूति में धरती के आँचल को पाने की, समझने की, प्रेम की तीव्र लालसा है। उसकी माता ने उसे छोड़ दिया किन्तु धरती माता ने उसे बचा लिया। माता उसे मार नहीं सकी। माता नहीं मार सकती वह गला नहीं टीप सकती। आँचल मैला होने पर भी पुत्र के लिए वह स्वर्णांचल है। धरती के स्वर्णांचल को देखकर वह (डाक्टर प्रशांत) अपने माँ के स्वर्णांचल का अनुभव कर लेता है। भारतमाता ग्रामवासिनी हैं। पंत की इन पंक्तियों का वह साक्षात्कार कर लेता है। धरती के धूल–भरे आँचल में उसे शस्य श्यामला का दर्शन हो जाता है। वास्तव में सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियों (ऊपर कही हुई) का भाष्य इस उपन्यास में बड़ी सफलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

● ●

---

१. मैला आँचल—श्री फणीश्वरनाथ रेणु–पृ. १७२.

नरेश मेहता | धूमकेतु : एक श्रुति

बाल जिज्ञासा और श्रुति
की कथाएँ

बाल जिज्ञासा और श्रुति की कथाएँ

" धूमकेतु : एक श्रुति " श्री नरेश मेहता का लिखा हुआ उपन्यास है। विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से इसमें नवीनता है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में यह एक अभिनव कथा प्रयोग है। अभिनव प्रयोग होने के कारण ही लेखक ने आरंभ में ही अपनी ओर से स्पष्टीकरण दिया है। लेखक के ही शब्दों में--" इस उपन्यास का शिल्प किंचित अप्रचलित है अतएव थोड़ा स्पष्टीकरण आवश्यक है। एक तो यह कि प्रथम पुरुष शैली प्रयुक्त हुई है। जीवनी का भ्रम हो सकता है लेकिन यह उपन्यास है। मैं, व्यक्ति है। लेखक नहीं। भावनाओं की तीव्रता के लिए यह शैली अपनाई गई है। मुझे विश्वास है, इससे आपके राग-बोध में निजता का ही अनुभव होगा। बाधा तो नहीं ही। दूसरे इसमें खंडचित्र हैं। इसका कारण यह है कि शिशु संपूर्ण नहीं ग्रहणता वरन् वह खण्डों में ही देखता है। स्थितियों, व्यक्तियों और संबंधों को सूत्रित करना बहुत बाद में सीखता है। इसलिए इसमें कथा होते हुए भी कथात्मकता संभवत: उतनी नहीं होगी। लेकिन कथात्मकता से ऊपर भी कला का एक स्वत्व होता है। "[1] पुस्तक के मुखपृष्ठ पर भी उपन्यास का नाम 'धूमकेतु : एक श्रुति' के नीचे " उपन्यास " संभवत: इसीलिए लिखा गया है कि इसे उपन्यास ही माना जाय। नीचे इस उपन्यास का विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

उपन्यास का नायक उदयन है। वह अपने बाल्यावस्था की कथा अपने शब्दों में 'मैं' शैली में सुनाता है। परिवार के सदस्यों, आस-पड़ोस के लोगों, अन्य संबंधियों, पढ़ानेवाले अध्यापक, बालजीवन के साथियों, कस्बे

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति-नरेश मेहता-आरंभ के स्पष्टीकरण वाले पृष्ठ से।

के पर्व-त्यौहारों एवं स्थान विशेष के अन्य प्रमुख घटनाओं का जिसका उदयन के मन पर गहरा प्रभाव है सभी के प्रति उदयन के मन पर जो प्रभाव अंकित हुए हैं या उनको उदयन ने जिस रूप में समझा है, जाना है या जानने के प्रयास में उसके जो अनुभव हैं उनका विस्तृत वर्णन उपन्यास में मिलता है। उपन्यास में उदयन के अतिरिक्त अन्य जिन पात्रों का उल्लेख हुआ है, उनका महत्त्व उदयन के नाते से ही है। तुलसी ने जैसे "मनियत सबै राम के नाते" माना है, वैसे इस उपन्यास में भी 'मनियत सबै उदयन के नाते" कहा जा सकता है। उदयन बालक है, अतः वह स्थितियों और व्यक्तियों को संपूर्ण रूप में नहीं समझ सकता इसलिए उपन्यास मुक्तक ढ़ंग से खण्डचित्रों के रूप में ही लिखा गया है। उदयन जिस पात्र को जिस रूप में ग्रहण करता है या उसका सम्पर्क जिन घटनाओं से उस पात्र विशेष के साथ संबद्ध है उनका वर्णन उसी रूप में किया गया है। इसीलिए उपन्यास का शिल्प विषय के अनुसार बदला हुआ है। उदयन कुछ स्वयं देखता है और उनका अनुभव करता है किन्तु इससे जधिक वह सुनता है। सुनी हुई बातें 'श्रुति' हैं। उदयन को अपनी वंशपरम्परा का ज्ञान, परिवार के उत्थान और पतन की गाथा, परिवार के सदस्यों की व्यक्तिगत विशेषताएँ, उनका इतिहास सभी उसे 'श्रुति' के माध्यम से ही ज्ञात होता है। उदाहरणार्थ उदयन अपनी माँ के सम्बन्ध में कहता हैं --

> "माँ, व्यक्ति होती है इसलिए उसका मुख याद करता हूँ लेकिन व्यर्थ। केवल श्रुतिमुख जो कल्पना में है वह यह कि नन्दन की माँ को अपने गोरेपन का अत्यधिक गर्व है इसलिए गाहे-बगाहे मुझे सुनाया करती है कि मेरी माँ उल्टा तवा थीं लेकिन पानी था। काली मटकी के दही सी बत्तीसी थी। बेचारी जीयी ही पाँच बरस। ब्याह कर आई। मैं हुआ। वह बीमार हुई। आखिर दिनों में तो पागल भी हो गई थी और उपरान्त तो चल ही बसी-लेकिन थी बड़ी सीधी ?
>
> तीसरी पत्नी थी बेचारी ....
>
> मैं इस श्रुति का साक्षी भर हूँ, व्यक्ति का नहीं।" [१]

इसी तरह अन्य स्थानों पर लेखक ने श्रुति का हवाला दिया ह। उपन्यास का आरंभ करते हुए लेखक ने लिखा है --"एक कठिनाई यह है कि कहां से आरंभ करूँ ? यदि बीच के किसी केन्द्र को लेता हूँ तो कथा के बीच

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति -- श्री नरेश मेहता--पृ. ६.

आप पूछ उठेंगे कि फलाँ महाशय का कुल-शील क्या है ? या, वो साहब कौन है ? इसलिए श्रुति के प्रवाह की दृष्टि से बिलकुल शुरू से आरंभ करूँ तो आप मेरे टूट-टूट जाने की विवशता का अर्थ समझ सकेंगे । "[1] सारा उपन्यास श्रुति के प्रवाह की दृष्टि से लिखा गया है । इसे श्रुति-विस्तार भी कहा गया हे ।

उपन्यास का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है । किरणशंकर देसाई गुजरात के भावनगर के राजा के राजपंडित थे । उनके पुत्र का नाम भवानीशंकर था । वे भी राजपण्डित थे। भवानीशंकर के चार पुत्र थे और तीन पुत्रियाँ । लज्जाशंकर से दो बड़े और एक छोटा था । छोटे का नाम कनुबा था। लज्जाशंकर आवारा निकले । भवानीशंकर इससे बड़े दुखी रहते । पिता की मृत्यु के दो माह बाद वे अपनी पत्नी और विधवा बहन मणि को लेकर घर से निकल गए । वहाँ से वे मालवा के एक कस्बे में आकर बस गए । पहले वे खेतिहर मजूर थे । परिश्रम से काम करते करते वे किसान हो गए और बाद में जमीनदार हो गए । लज्जाशंकर को तीन पुत्र थे । इच्छाशंकर, सूर्यशंकर और रत्नशंकर । इनमें इच्छाशंकर ने पढ़ना बहुत जल्दी छोड़ दिया और पिता के साथ कामकाज करने लगा । सूर्यशंकर ने मैट्रिक की परीक्षा पास की । वह जिलाधीश हो गया । तीसरा भाई रत्नशंकर और भी पढ़ता रहा । उसने बी. ए. तक पढ़ाई की किन्तु उसकी मृत्यु मद्रास में हो गई । लज्जाशंकर ने तीनों के विवाह किए किन्तु सूर्यशंकर ने बहू को नापसन्द कर छोड़ दिया । रत्नशंकर की मृत्यु के कारण उसकी पत्नी अपने मायके चली गई । रहा इच्छाशंकर उसकी पहली पत्नी अपनी सास के साथ हैंजे से मर गई। लज्जाशंकर ने उसका दूसरा ब्याह किया । दूसरी पत्नी से उसे एक लड़की हुई-शान्ति । वह भी मर गई । घर में लज्जाशंकर और इच्छाशंकर और स्त्री के नाम पर विधवा बहन मणि ही थी। अतः घरगहस्थी को चलाने के लिए इच्छाशंकर का तीसरा विवाह किया गया । उदयन इसी तीसरी पत्नी का पुत्र था । उसके जन्म के समय परिवार की परिस्थिति पतन की अवस्था में थी । उदयन के ही शब्दों में --

"जिस समय मैंने होश सम्हाला देसाई-परिवाई पतन-युग में था। बा (लज्जाशंकर) पुरुषार्थ हार बैठे थे। पिता असंज्ञ हो चुके थे। चाचा (सूर्यशंकर), परिवार के लिए छठे-छमासे आनेवाले समादृत अभ्यागत थे।

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति-श्री नरेश मेहता --पृ. ४.

बाहर से आयी हुई दोनों चाचियाँ (सूर्यशंकर और रत्नशकर की पत्नियाँ) कभी मेरे सामने नहीं आईं। सबसे बड़ी माँ (इच्छाशंकर की पहली पत्नी) दीदी की माँ (शांति की माँ---इच्छाशंकर की दूसरी पत्नी) और मेरी माँ किसी अज्ञात पथ से एसी चली गयी थीं कि उनके लौटनेका प्रश्न ही नहीं था। वृद्ध बा, वृद्धा माँ (लज्जाशंकर की बहन मणि) असम्पृक्त पिता तथा ममतामयी दीदी वाले अनगढ़ पारिवारिक रूपरेखा वाले खण्डहर होते देसाई बंश में मैंने जन्म लिया। बा-माँ का वृद्धत्व, पिता का मौन स्वाहात्व एवं दीदी की सहज करुणा---ये तीनों ही मुझे आरम्भ से ही प्राप्त हुए और मैंने जीवन आरम्भ ही किया उस बुझती हुई बड़े घर की भट्ठी पर, जिसमें एक कप पानी को तपाने की शक्ति नहीं शेष रह गयी थी--केवल क्षार ऐंठे बुझे कोयलों का ढेर लेकिन अन्तिम श्वास लेती हुई आँच. किसी को सुनकर भट्ठी की विशालता पर सन्तोष हो सकता है लेकिन आँच की क्षीणता को भोक्ता ही जानता है।"[1]

उपन्यास की मूल कथा यह नहीं है। ३४२ पृष्ठों के उपन्यास में यह कथा लगभग ९० पृष्ठों में कही गई है। किन्तु इसका महत्त्व इस नाते है कि इससे उपन्यास के मूल कथानक को समझने में सहायता मिलती है। यह जो कथा कही गई, वह उदयन के जन्म के पूर्व की है। उपन्यास का मूल कथानक उदयन के जन्म के बाद से लेकर बा की (लज्जाशंकर की) मृत्यु तक की कथा है। बा की मृत्यु के बाद उदयन चाचा के साथ पढ़ने के लिए कस्बा छोड़कर चला जाता है। यहीं उपन्यास का अन्त हो जाता है। अपने बा, माँ और दीदी शान्ति के साथ में रहते हुए उदयन ने उस कस्बे में बाल्यावस्था का जीवन जिस रूप में जिया उसी का यथार्थ वर्णन उपन्यास में हैं और यही उपन्यास का मूल कथानक कहा जा सकता है।

उपन्यास का मूल कथानक उदयन का वह बाल्यजीवन है, जो उसने होश संभालने के बाद उस मालवे के कस्बे में बा की मृत्यु तक गुजारा। इस जीवन में प्रमुख रूप से जो पात्र उसके सम्पर्क में आए उनमें बा, माँ और दीदी (शान्ति) के अतिरिक्त नन्दन और उसकी माँ, जिसे वह काकीमाँ कहकर पुकारता था; साथियों में नन्दन के अतिरिक्त खजांची का पुत्र गम्पू और मन्दिर के मुखियाजी की पुत्री वल्लभा जो दूर के रिश्ते से उसकी बुआ लगती थी, आदि प्रमुख हैं। उपन्यास की मूल घटनाओं में दीदी का ब्याह,

---

१-धूमकेतु : एक श्रुति--श्री नरेश मेहता---पृ. २९८.

ब्याह के बाद उदयन का दीदी के साथ दीदी के ससुराल में रहना, दीदी की बीमारी, ऐसे ही अवसर पर वल्लभा से परिचय और बाद में उसी के पास रहना, वल्लभा के साथ दीदी को देखने के लिए उज्जैन जाना, लौटने पर वल्लभा के साथ परिचय की घनिष्टता, अपनी माता के अभाव की पूर्ति उसी में करना। दीदी की बीमारी इसी बीच वल्लभा की मृत्यु और अन्त में सबसे बड़ी और प्रमुख घटना बा की मृत्यु है। इस बीच कस्बे में और भी घटनाए होती हैं, उनका भी पूरा विस्तार रंगीन वातावरण और आंचलिक विशेषता के साथ उनका वर्णन उपन्यास में हुआ है। किन्तु कथानक के नाम पर यही घटनाएँ प्रमुख कही जा सकती हैं। इसमें और भी कुछ अंश जोड़े जा सकते है, जैसे उदयन का उपनयन संस्कार, नन्दन के घर आम के पापड़ और सिवैया बनना, गरमियों की छुट्टियो में मास्टर साहबके यहाँ पढ़ने जाना, पर्व त्यौहारों में दुर्गाष्टमी, मुहर्रम, गणेशोत्सव के अवसर, बा, माँ और वल्लभा के साथ गाँव जाना और वहाँ रघु—बा और उनकी पत्नी मनु माँ के साथ रहना। कथानक के नाम पर इन्हीं प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। उपन्यासकार का उद्देश कथा सुनाना नही है, वह तो बालक उदयन के जीवन की अनुभूतियों को वाणी देना चाहता है। उदयन के जीवन में घटनेवाली प्रत्येक घटना का उसके बालक मन पर जो प्रभाव पडता है, जगत को (अपने आसपास के जगत को) वह किस रूप में देखता है और मन में उठनेवाली जिज्ञासाओं को किस रूप में शान्त करने का प्रयत्न करता है आदि का बड़ा ही मनोहारी वर्णन उपन्यास में मिलता है। श्री नरेश मेहता कवि होने के नाते उपन्यास में अनेक स्थल काव्यात्मक भी हैं। कहीं कहीं तो कविता लिखने के लिए कवि विवश हो गया है जैसे—

> ओ नदी के पुत्र
> द्वीप—
> सो जाओ।
> बहते हुए यह
> जागती है माँ।
> सो जाओ
> ओ नदी के पुत्र
> द्वीप—
> माँ आकाश है
> नक्षत्र है।

दिशाएँ, क्षितिज तक जल म विनम्रित हैं ।
सो जाओ नदी के पुत्र
जागनेवाला
माँ है । [1]

यह कविता उस प्रसंग पर लिखी गई ह जब उदयन अपनी माँ की जांघ पर सिर रखकर सोता रहता है । दीदी की प्रतीक्षा में झिमती आँखो को फैलाए जागता रहता है । जब वह आ जाती है तो उससे सटकर सो जाता है । ऐसे समय में उदयन की अनुभूति को लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है–'एक नदी है । एक द्वीप है। नदी जलहीन है । द्वीप जल की प्रतीक्षा में जागता है । ताकि जल आए तो नदी मां बन जाए । जल आता है । नदी माँ बन जाती है । और नदीपुत्र द्वीप सोने लगता है ...... चारों ओर से माँ घेरकर बहने लगती है। कैसा सुख द्वीप को अपने अंगों को छूता हुआ लगता है ..... ' [2] इस प्रसंग को लेकर ही उक्त कविता लिखी गई है। कविता में उस सुखात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति है, जिसे उदयन अपनी माँ और दीदी के सान्निध्य में सोते हुए अनुभव करता है ।

महाकवि सूरदास ने बालकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है और अपने क्षेत्र में वे अद्वितीय माने जाते हैं । उनका वात्सल्यरस का वर्णन अनूठा है। श्री नरेश मेहता ने भी इस काल के प्रसंगों को मुक्तक रूप में, श्रुतिखण्डों के रूप में एवं स्मृत्यालोक के रूप में पूर्ण संवेदना के साथ चित्रित किया है। सूरदास का काव्य भक्त द्वारा लिखा गया काव्य है, साथ ही उसमें भगवान कृष्ण के बालजीवन के प्रसंगों में माता-पिता और गोप-गोपी के पक्षों की ओर से भी बालजीवन का वर्णन है जब कि नरेश मेहता का यह उपन्यास केवल बालक की निजी अनुभूतियों के आधारपर लिखा गया है। लेखक ने बालक की सहज प्रवृत्तियों को बहुत ही अच्छे ढ़ंग से उभार कर उसी की वाणी में व्यक्त किया है । बालमनोविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी में यह अपने ढंग का अकेला उपन्यास है। बालकों में प्रेम, क्रोध, ईर्ष्या, स्पर्धा, भय, स्नेह, जिज्ञासा, कौतुहल आदि की मात्रा जिस परिमाण में, जिस स्तर पर और जिस उन्मुक्तता के साथ होती है उसका बड़ा ही यथार्थ वर्णन लेखक ने किया है। बच्चों में हीन भावना बहुत ही प्रबल होती है। यह उदयन में

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति——श्री नरेश मेहता——पृ. १०८
२. –वही– पृ. १०८.

स्वाभाविक रूप में दिखलाई गई है। नन्दन उदयन का भाई, मित्र और पडौसी था। नन्दन का परिवार अपेक्षाकृत उदयन से अच्छी स्थिति में था। नन्दन को अपने माता–पिता का सुख प्राप्त था। नन्दन के साथ अपने सम्बन्ध को व्यक्त करते हुए उदयन कहता है–– "वास्तव में हम बड़ों की अनुकृति करते हैं। नन्दन के व्यवहार में सदा भरापन होता था जब कि मुझ में निर्भरता या कहना चाहिए दयनीयता। काकीमाँ ने कह–कहकर मुझे सचेत किया था कि मेरी असली माँ मर चुकी है। मेरी माँ नहीं है, इस अनुभव ने मुझे जीवन भर के लिए कहीं का न रखा। प्रत्येक नारी, दीदी को छोड़कर, मुझे एक अप्राप्य लालसा सी लगने लगी ...... मैं दिनोदिन हीन भावना से ग्रस्त रहता। जो माँ थी, वे अभिभाविका ही थी। बा के प्रति मैं स्पष्ट बहुत बाद में हुआ। पिता भी कोई सम्बन्ध होता है इसे समझने के लिए मुझे पिता की मृत्यु तक रुकना पड़ा .... इस प्रकार नन्दन और मैं अपने वैषम्य को लेकर भाई से अधिक मैत्री के निकट थे। इसीलिए उसके मन में मेरे लिए अतिरिक्त भाव था जब कि मेरे मन में उसके लिए सिवा सर्मापित हो जाने के और क्या हो सकता था? उसका भाव वस्तुओं में व्यक्त होकर मुझे जीत लेता था जब कि मैं अपने उदास नेत्रों से अपनी अनभिव्यक्त भावना दिखाता और यह भी उतना ही जितना एक बच्चा जो कुछ व्यक्त कर सकता था। अवश्य ही उन दिनों मै व्यक्त करता रहा हूँगा तभी तो नन्दन अपनी सारी सर्वस्वता के बीच भी मेरे बिना अधरा हो उठता था।" [1]
इसी तरह के अन्य उदाहरण भी मिलेंगे। जैसे––दीदी नहा रही थी। उसने गहने खोल रखे है। उदयन झाँझन सिर पर मुकुट की तरह पहन लेता है और तभी बा उधर आते हैं। वे उदयन को झल्लाये हुए कहते हैं कि ये पाजेब सिर पर पहने जाते हैं? वे सिर से उतार कर फेंक कर चले जाते हैं। ऐसे समय में उदयन के मन की प्रतिक्रिया देखिए–– "मैं अपने को पराजित अनुभव करता हूँ बल्कि किसी सीमा तक अपमानित भी। मुझे फिर विवशता आ घेरती है। मै सोचता हूँ ये सब मेरा अपमान क्यों करते हैं? इसलिए कि मैं अभी छोटा हूँ? मै एक दिन, एक दिन क्या––आज ही, बल्कि अभी ही बड़ा बन जाना चाहता हूँ। चाहता नहीं बल्कि सकता हूँ... ...तब मैं बड़ा क्यों नहीं बन जाता? ... ...माँ तो बता रही थी कि हनुमानजी को लंका में राक्षसी मिली तो वे एकदम छोटे या बड़े बन जाते .. ...भला मैं बड़ा क्यों नही बन जाता हूँ? तब देखें कोई मेरे इस मुकुट को सिर से गिराए ..

---

१. धूमकेतु एक श्रुति––श्री नरेश मेहता––पृ. ६९.

...मैं अपना मुकुट उठा लेता हूँ"[1] सच्चाई यह है कि बालक कल्पना में जीते हैं। बच्चों का यह सामान्य गुण है। जब कोई कल्पनाविहीन प्रौढ़ व्यक्ति अविचारपूर्ण ढंग से उन्हें वास्तविकता की याद दिला देता है या उसकी कल्पना की दुनिया में हस्तक्षेप करता है तो बच्चे स्वाभाविक रूप से चिढ़ जाते हैं। यही यहाँ पर हुआ है। उदयन मुकुट पहने हुए था और बा ने आकर उसे उतार कर फेंक दिया। बालकों में वातावरण और स्थितियों के साथ समायोजन कर रहने की विचित्र शक्ति होती है। उनका दृष्टिकोण वस्तुवादी अधिक होता है। आसपास का वातावरण और प्राप्य सामग्री को वे मनोरंजन की वस्तु समझते हैं। उसी को अपने खेल का साधन बनाते हैं। तरह तरह की मनोरम कल्पनाएँ करते हैं और क्षण क्षण का आनंद लूटते हैं। इस समय वे वस्तुस्थिति को बिलकुल भूल जाते हैं। उपन्यास में अनेकों ऐसे स्थल मिलेंगे जब कि उदयन सारे अभावों को भूलकर प्रकृति और वातावरण का आनंद लूटता है। तरह तरह के खेल खेलता है। एक उदाहरण—

"कचहरी की दक्षिणवाली खिड़की में दीदी और मैं 'घर बनाने' का खेल खेलते रहे हैं। इस समय भी जब कि धाराधर वर्षा हो रही है एक लाल कपड़ा तानकर तथा दरी का एक पुराना टुकड़ा बिछाकर वृष्टि देख रहे हैं। खिड़की के निचले हिस्से में पटिया लगी है लेकिन बाकी की खुली है। पटिया पर झुके हुए नेवती का गिरना देख रहे हैं...... पानी का एक दौंगरा आता है और मुँह-नाक में ठण्डी फुहार ही फुहार भर उठती है। दीदी पल्लू से मुँह पोंछ लेती है लेकिन लट गीली होकर कान के पास लम्बी हो जाती है। इस प्रकार भीग कर प्रायः दीदी के ओंठ भीगे जामुन से हो जाते हैं। हमारे भीगे मुँह को छूती हुई हवा भीतर तक धंस जाती है। खूब ठण्डा सा लगने लगता है। दीदी हथेलियों से कान बजाने लगती है। मैं भी वैसा ही करता हूँ। और जैसे शोर का एक हिलता भारी पर्दा कान के पास आ जाता है और चला जाता है-आता है और चला जाता है। कान के पास वर्षा 'झिपझिप-झिपझिप' करती बजने लगती है। दीदी उसी लय में गाने लगती है। मैं मात्र दीदी की नकल में टाँगे हिलाते हुए शोर करने लगता हूँ ....." [२]

—यह प्रकृति का आनंद लूटना है।

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति-श्री नरेश मेहता-पृ. ३२.

२. —वही—पृ. १९ और २०.

बालकों में कौतुहल और जिज्ञासा अमित परिमाण में होती है। वे तरह तरह के प्रश्न पूछकर बड़ों को परेशान कर देते है। उदयन अपनी दीदी, माँ, वल्लभा से तरह तरह के प्रश्न पूछकर उन्हें निरुत्तर कर देता है। कुछ उदाहरण —

" और जीजा का क्या अर्थ होता है। ? ...जब बा, माँ बापू सब हम दोनों के एक हैं तो मेरे जीजा तुम्हारे जीजा क्यों नहीं हुए? ...और दीदी बस इतना ही कह पाती है कि भाई, कान न खाओ या पता नहीं कौन से कुत्ते की हड्डी भरी है... ...मैं सचमुच ही परेशान करने के लिए नहीं लेकिन जानने के लिए पूछता रहा हूँ। नारायण नाई से मेरी तरह दीदी भी क्यों नहीं बाल बनवा लेती है। झीकेगी कि उन्हें धोना पड़ता है, तेल लगाने में झंझट होती है...लेकिन किससे पूछा जाय ? क्योंकि बड़ों के पास आपकी बातों के लिए दो ही उत्तर होंगे—क्या बकबक लगा रखी है ? या, अभी बच्चे हो, जाओ खेलो...गोया बच्चा होना पाप है—और मैं हमेशा सोचता हूँ कि वह दिन कब आएगा कि जब ये लोग बच्चे होंगे और तब मैं बड़ा होकर इन्हें भी ऐसे ही झिड़क दूँगा—आराम कुर्सी पर चाचाजी की तरह गर्दन के नीचे हाथ रख, टाँग पर टाँग धर कर कहूँगा—क्या दिमाग चाट रहे हो, यह भी नहीं जानते कि पानी बादलों से गिरता है न कि आकाश से। और अगर मेरी तरह फिर पूछे कि बादल तो आते जाते हैं, आकाश क्यों नहीं आता—जाता है ? ... तो मै भी कान पकड़कर ऐसा झिड़कूँगा कि बस..."[1]

इसी तरह बालजीवन के अनेक यथार्थ और मर्मस्पर्शी स्थल मिलेंगे। बालक के सोचने, विचारने एवं समझने का ढ़ंग बड़ों से भिन्न होता है। वे छोटी छोटी बातों पर झट से विश्वास कर लेते हैं और उन्हीं विश्वासों के आधार पर आचरण करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में बालकों के साथ व्यवहार करते समय बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। गलत विश्वासों और संस्कारों से बालकों की बड़ी हानि होती है। यह ठीक है कि घर के या परिवार के सदस्य बालकों से अच्छा व्यवहार करें किन्तु चौबीस घण्टे वे उसके साथ नहीं होते और कहीं कोई भयपूर्ण बात बालक के मन में बैठ जाए तो उसे उसके मन से निकालना बड़ा कठिन होता है। बालक भी भयभीत होता

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति–श्री नरेश मेहता–पृ. ९८.

है और उसी के स्वप्न देखता है । उपन्यास में नन्दन की माँ, जिसे उदयन काकीमाँ कहा करता था, ने उदयन से मनु-माँ के सम्बन्ध में अपशकुनी बातें कहीं। वह यह भी कहती कि मनु-माँ डाकन है और वह बच्चों को खा जाती है । उदयन के मन में यह विश्वास बैठ गया और जब वह बा, माँ और वल्लभा के साथ गाँव मनु-माँ के यहाँ जाता है तो काकीमाँ की बात उसे बार बार याद आती है । वह अपनी माँ से डाकन के बारे में पूछता है, वल्लभा से पूछता है । उसे इतना ही ज्ञात होता है कि जिसे बच्चे नहीं होते उसे डाकन कहते हैं किन्तु फिर भी एक सन्देह रह जाता है कि वल्लभा के भी बच्चे नहीं फिर उसे डाकन क्यों नहीं कहते ? उदयन स्वप्न देखता है कि मनु-मां उसे खाकर पीपल पर टाँग रही है। नन्दन वाली काकीमाँ ने कहा था कि मनु-माँ बच्चों का कलेजा खाकर उन्हें पीपल पर टाँग देती है। स्वप्न में उदयन डरता है । उसे ज्वर हो जाता है। भय को दूर करने के लिए ओझा आता है। हवनादि भी करवाया जाता है। इस पर भी उदयन की मन:स्थिति देखिए -- " लेकिन जब कभी वे (मनु-माँ) देखती हैं लगता है दो लपटें हैं जो आपको भेदकर आपकी पीठ की ओर से होती हुई जाने कहाँ चली गयी है वह रोज रात को दूध लाकर देती है, मैं उसे किस भय के साथ पीता हूँ नहीं बता सकता। वह दिन भर बिल्लियों की तरह गुद्दीदार चलते हुए घर भर मे घूमती हैं और मुझे डर लगता है कि पता नहीं वह किस क्षण मेरे पास अनजाने ही आकर खडी हो जाएँ "[1] उसकी बेहोशी पर वल्लभा के साथ उसकी जो बातचीत होती है, वह निम्नप्रकार है--

वल्लभा पूछती है -

-बता न, उस दिन क्या हुआ था ?

-मैं उस दिन मर गया था।

-तू जानता है कि मरना क्या होता है ?

-हाँ।

-कैसे मरा जाता है ?

-कैसे क्या, बस आप मर गये तो फिर मर ही जाते हैं।

-तू कैसे मरा था ?

-मुझे मनु-माँ ने मारा था।

-देख उदयन। तू ये सब फिजूल की बातें मन से निकाल फेंक । तेरी काकीमाँ ने कहा कि मनु-माँ डाकन है और तू मान गया। जानता है

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति—श्री नरेश मेहता-पृ. १९० और १९१.

डाकन क्या होता है ?
—नहीं ।
—तो फिर ? तू उन्हें मां कहता है और कोई माँ अपने बेटे को खा सकती है ? तू मुझे माँ कहता है क्या मैं तुझे खा सकती हूँ ?
—लेकिन तुम डाकन थोड़े ही हो ? ... ...[1]

इन प्रश्नों और उत्तरो का अन्त नहीं। अन्त में बालक का ध्यान दूसरी ओर लगाना ही पड़ता है। वह वल्लभा को अपनी माँ समझता है । नन्दन की माँ गोरी है अतः उसकी माँ भी गोरी होनी चाहिए। काली माँ को वह पसंद नहीं कर सकता । इस सम्बन्ध में अपनी वृद्धा बा, जिसे वह माँ कह कर पुकारता था कहता है कि--

—नन्दन... कहता है कि उसकी माँ .. सुन्दर है ... और मेरी... माँ... बूढ्ढी है ।
... ...
और पूछता है—
तुम गहने कपडें क्यों नही पहनती ? काकीमाँ की तरह क्यों नही रहती ?[2]

वल्लभा को गोरी और सुन्दर देखकर वह प्रसन्न था कि वह उसकी माँ है । वल्लभा जब उसे भय दिखाती है कि भगवान ने यदि उसे काली कलूटी बना दिया तो क्या होगा ? उदयन रोने लगता है और वल्लभा उसको शान्त करती है ।

उदयन, पिता, दीदी, वल्लभा एवं अन्य के प्रति जो धारणा रखता था उसे उसने अपने शब्दों में व्यक्त किया है । बालकों की जैसी धारणा शक्ति होती है, वैसे ही वे समझते हैं। निकट का व्यक्ति भी हो किन्तु यदि वह बालक के साथ नहीं रहता तो बालक उसके प्रति क्या धारणा बना सकता है ? उदयन ने अपने पिता के सम्बन्ध में लिखा है--

'पिता ।
एक शब्द मात्र ही नहीं, सम्बन्ध भी है इसे जानन के लिए मुझे अनेक वर्षों की प्रतीक्षा करनी पड़ी । उन्हें तब जान सका जब बा

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति--श्री नरेश मेहता—पृ. १९१ और १९२.
२. --वही—पृ. ३४ और ३५.

नहीं रहे, तब वह बाध्य हुए घर को सहेजन–समेटने के लिए–लेकिन आरम्भ में पिता मेरे लिए एक व्यक्तिवाचक बोध से अधिक नहीं रहे, उनके साथ दूरी का ही अनुभव होता। यद्यपि भयद दूरी नहीं। अधिक से अधिक तटस्थ ही कह सकते हैं। हम जाने या न जाने लेकिन हम किसी क्रम के प्रतिफल ही होते हैं।' [1]

अपनी दीदी के प्रति उदयन के ये शब्द हैं––

"दीदी मेरे लिए सदा एक नाम रही है। एक प्रतीक है। गुलमुहर की तरह सुलग उठने वाला आरक्त वर्ण स्नात प्रतीक। एकान्त वनफूल सी दीदी मेरे लिए ठाकुरजी के शंख सी पवित्र है। मैं उस ठाकुर-शंख को प्रत्यूष सा बजाता हूँ और सूर्योदय होता है, साँझ अस्ताने लगती है ..."[2]

वल्लभा के प्रति––

"वल्लभा मेरे लिए एकान्त–बाँशी है। मैं उसे अपने में मुर्दाघर की इमली के नीचे बैठ, महादेव-घाट के जल में पैर डाल दिन–रात बजाता हूँ: दीदी अब कभी जीजाजी के साथ या अपने ससुर के साथ रहने चली जाती है।

....

हरसिंगार का गाछ।

कैसा गहरा हरा उसका लता-मण्डप सा बन जाता है। अपने को उसकी पतली–पतली डालियों से आच्छादित कर ढँक लेता हूँ। और वही वल्लभा वाली अपनी एकांत–बाँशी अपने में बजाने लगता हूँ...क्यों मुझे लगता है कि जैसे हरसिंगार ही नहीं वल्लभा ही उन सिन्दूरी डंठल वाले श्वेत फूलों से झर रही है? बड़े ही मौन भाव से चूते हुए यह झरझराना होता है। क्यों मुझे स्कूल में बैठे हुए स्कूल की खिड़की से दिखता आकाश का छोटा सा नीला टुकडा आकाश न लगकर वल्लभा लगता है? क्यों? क्यों मैं अपने को वल्लभा में विलीन कर लेना चाहता हूँ .. ..." [3]

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति––श्री नरेश मेहता––पृ. २०९.
२. ––वही––पृ. १०४.
३. ––वही––पृ. २९९ और ३००.

सारा उपन्यास मुक्तक ढंग से खण्ड-चित्रों में लिखा गया है और प्रत्येक चित्र में वातावरण और पात्र उदयन के—बाल उदयन के—अनभूत हृदय से ओतप्रोत है। एक शंका मन में उत्पन्न हो सकती है और वह स्वाभाविक ही है कि उदयन जब बालक है तो कवि के समान शब्दों में-अलंकृत शब्दों में-वह कैसे व्यक्त कर सकता है? साथ ही परिवार की जो कहानी लिखी गई है उसको उदयन ने कैसे अनुभव किया? इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है कि परिवार की कथा उसे श्रुति रूप में ज्ञात हुई अतः जैसे उसे ज्ञात हुई उसको उसने अपने हृदय में जैसे अनुभव किया उसे उसने उसी रूप में सुनाया है। रही बात बालक होने की उस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि बालक जो अनुभव कर सकता है, उसी को नरेश मेहता ने स्वयं बालक बनकर अनुभव किया और अपने अभिव्यक्ति कौशल से उसे व्यक्त किया। एक प्रकार से लेखक ने बालकों की अनुभूतियों को बालकवत् अपने कौशल द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है। लेखक को इसमें पूर्ण सफलता मिली है।

एक बात कहनी ही पड़ेगी और वह यह कि उपन्यास में कुछ अंश अस्वाभाविक लगते हैं। उपन्यास का नायक उदयन है और वह अपने बालजीवन की कथा सुना रहा है। ऐसी स्थिति में परिवार की कथा जो कही गई है वह बालक उदयन की मनःस्थिति को ध्यान में रखते हुए ही कहनी चाहिए। लज्जाशंकर आवारा थे और उनका प्रेमप्रसंग या इच्छाशंकर और कालिन्दी की कथा वाला अंश उपन्यास की मूल कथा से कुछ हटकर प्रतीत होते हैं। कम से कम उदयन 'मैं' शैली में यह कथा नहीं सुना सकता। यदि यह मान लिया जाय कि उदयन नहीं, लेखक अपनी ओर से यह कथा सुना रहा है, तो उपन्यास में ऐसा स्पष्टीकरण नहीं है। और फिर उपन्यास का मूल उद्देश्य बाल उदयन के बालजीवन तक ही सीमित रहना चाहिए था। परिवार की कथा का इतना अधिक विस्तार जिसमें इच्छाशंकर का चरित्र लज्जाशंकर की तरह बहुत ही उभर कर आया है, उपन्यास की मूल कथा-वाला अंश सा प्रतीत होता है।

उपन्यास में, बालक उदयन में, अज्ञात यौन भावनाओं को स्थान स्थान पर दिखलाया गया है। अपनी काकीमाँ को वह नग्न रूप में देखता है। अज्ञात रूप में ही वह उस सौंदर्य पर रीझता है और उसकी इच्छा होती है कि वह उसकी माँ क्यों नहीं है। नन्दन के यहाँ सिवैया झेलते समय वह अज्ञात रूप से अपना हाथ केवल इसलिए ऊपर उठाता रहता है कि भाभी का

चूड़ियों भरा गोरा हाथ छू ले। वह काकीमाँ और भाभी को तो औरत मानता है किन्तु माँ और दीदी को औरत नहीं मानता। वह कहता है—"मेरे लिए माँ या दीदी, मात्र माँ या दीदी भर हैं। मैं उन्हें कभी भी औरत नहीं मान सकता, क्योंकि वे औरत नहीं हैं।"[1] वल्लभा के सम्पर्क में आने के बाद उसकी यौन भावना का अधिक विस्तार होता है। यद्यपि वह वल्लभा को माँ के रूप में ही ज्ञात रूप से प्राप्त करना चाहता है किन्तु अज्ञात रूप से यौन आवेगों की तृप्ति चाहता है। जैसे वल्लभा के निकट सोते हुए उसकी आत्मानुभूति इन शब्दों में देखिए–·"मेरी टाँग अपनी जाँघों में दबा मुझे बाँह में भर सटाते हुए वल्लभा ने चोली ढीली की और जैसे एक गोरा भरा बादल मेरी आँखों के पास हँसकर देखने लगा। वल्लभा ने बादल का मुहँ दो अँगुलियों से ठेलकर मेरे मुँह में लगा दिया ..... मैं नहीं जानता कि वह बादल श्रावण का था या शरतकाल का। केवल मुझे यही लगा कि सम्पूर्ण वल्लभा उस बादल से होती हुई मुझमें मेरी सम्पूर्ण "माँ" बनती हुई उतर रही थीं।"[2] आगे वह वल्लभा को राधा तक कहता है। वह वल्लभा से साफ कहता है ––

–मैं कृष्णजी हूँ और तुम राधा।
–उदयन ?

और मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि ऐसा क्या कह दिया है कि वल्लभा की आँखें छलछला आयी हैं। मैं घबरा जाता हूँ। अपराध भाव मुझे घेर लेता हैं। क्या वल्लभा को मुकुट नहीं पहनाना चाहिए था ?
–क्या हुआ मां ?

–कुछ नहीं रे।

और उन्होंने उन्हीं नेत्रों से, बाहें फैला दी। मैं उनके सीने में मुँह छुपाए अपने अन्दर रोती हुई वल्लभा तक पहुँच जाना चाहता हूँ। उनका हाथ मेरा मुकुट सहलाते होते हैं। सफेद साड़ी तथा सादी चोली में बँधी उनकी गोरी देह मेरी आँखों तथा नाक से मुझ में, कहीं बहुत भीतर तक प्रविष्ट हो रही थी। मैं उस गोरी धरती में आकुल बीज हूँ जो धरती में प्रवेश पाने के लिए अपने समस्त स्वत्व

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति—श्री नरेश मेहता––पृ. ३०.
२. ——वही——पृ. १२४ और १२५.

एवं इन्द्रियगत समर्पण के साथ आँख नीचे पड़ा हो इस आशा में कि यह धरित्री माँ किसी दिन अपना वक्षस्थल खोल दे और उसकी यह सन्तान माँ–मय हो जाए।'[१]

यहाँ तक कि वह वल्लभा से साफ कह देता है कि–'मैं बा–माँ से साफ कह दूँगा कि तुम मेरी बहू हो, बस।'[२] वल्लभा उदयन के जीवन में ऐसे छा जाती है कि वह उसे उसके मरने के बाद भी याद करता रहता है। उपन्यास के अन्तिम पृष्ठ पर उदयन वल्लभा को ही याद करता दिखलाया गया है। चाचा के साथ कल वह पढ़ने के लिए कस्बा छोड़कर जानेवाला है। उस समय वह अपना निर्णय इन शब्दों में कहता है– 'मैं कल चला जाऊँगा। यह एक निर्णय है। मेरा नहीं। मेरा निर्णय तो यह था कि मैं अपना अल्बम पूरा होने पर मोरपंख के मुकुट के साथ नदी में समर्पित कर दूंगा ताकि वह वल्लभा तक पहुँच जाए। बा के लिए मेरे मन में अस्पष्टता है लेकिन अल्बम के कुछ चित्रों के नीचे बा का नाम लिख दिया है ... मोर पंखोंवाला मुकुट निश्चय ही वल्लभा को प्राप्त होगा। और यह अल्बम नितान्त मेरी भावना है। मैं इन्हें समर्पित कर रहा हूँ। नदी, विश्वास है उन गये हुए प्रिय व्यक्तियों तथा मेरे बीच की दूरी का ...'[४]

इस तरह अज्ञात यौन भावना का विकास उदयन में दिखलाया गया है। बालमनोविज्ञान की दृष्टि से इसे स्वाभाविक ही कहा जा सकता है। बालक नारी को माँ के रूप में ही पाना चाहता है। उदयन माता के अभाव में वल्लभा में उसी नारी भावना को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है उदयन का यह प्रयास अज्ञात रूप में ही होता रहता है किन्तु लेखक ने इसे अतिरंजित कर लिखा है। उदयन बालक है यह यदि विस्मरित कर दिया जाय तो प्रेमकथा का आभास होता है। नरेश मेहता की कलम में भावनाओं को रंग देने की बड़ी शक्ति है इसीसे बालक उदयन कभी कभी अज्ञात रूप से प्रेम करते हुए भी ज्ञात रूप में प्रेम करता हुआ प्रतीत होता है।

आज का युग विशेषज्ञता का है। अतः उपन्यासकार भी इस दिशा में प्रयत्नशील है। इस उपन्यास में चरित्र चित्रण की दृष्टि से उदयन को

---

१. धूमकेतु : एक श्रुति—श्री नरेश मेहता—पृ. १७४ और १७५.
२. —वही—पृ. १७५.
३. —वही—पृ. ३४२.

छोड़कर यदि किसी के चरित्र का पूरा बोध हो सकता है तो वह लज्जाशंकरका (उदयन के बा का) और कुछ हद तक इच्छाशंकर का (उदयन के पिता का) और वह भी इसलिए कि परिवार की कथा लिखी गई किन्तु अन्य किसी का पूरा चरित्र नहीं मिलता। बाकी पात्रों का चरित्र उदयन के नाते से ही जान सकते हैं (वैसे लज्जाशंकर का भी चरित्र हम उदयन के नाते से ही जानते हैं किन्तु उपन्यास में यही एक पात्र ऐसा है जिसें हम जन्म से मृत्यु तक देखते हैं और मृत्यु के बाद तो उपन्यास का अन्त ही हो जाता है। इसीलिए हम कह सकते हैं कि इनका पूरा चरित्र मिलता है)। उदयन का भी पूरा जीवन इस उपन्यास में कहाँ मिलता है ? केवल बालक उदयन का ही जीवन इसमें है। एक ही पात्र का, वह भी उसके जीवन के आरंभिक भाग का, बालजीवन का चरित्र–उसकी अपनी अनुभूतियों के आधार पर उसी की वाणी में––लिखा गया है। यह विशेषज्ञता ही है। इस सीमित क्षेत्र में कथात्मकता के अभाव में ३४२ पृष्ठों में यह उपन्यास लिखा गया है। कथा के अभाव में उपन्यास लिखना सरल काम नहीं है। लेखक ने बालक के दैनिक जीवन की घटनाओं के आधार पर ही उसकी अनुभूत भावनाओं को मुक्तक प्रसंगों में रसपूर्ण बनाकर लिखा है। कथा, जो घटनाओं के आधार पर बनती है, और अनुभूति इन दोनों में, उपन्यास में कौनसा तत्व प्रधान है ? तो इसका उत्तर अनुभूति ही होगा। अनुभूति के कारण ही कथारूप शिथिल है। अनुभूति भी अभिव्यक्ति के लिए वातावरण और घटनाओं का आश्रय लेती है। वातावरण और घटनाएँ इस उपन्यास में इसी रूप में हैं। वे अनुभूति की अभिव्यक्ति के साधन मात्र हैं।

उपन्यास अब जीवन के निकट आता जा रहा है। वह जीवन के जिस भाग को छू रहा है, उसे पूरी संवेदना के साथ व्यक्त करने में समर्थ हो रहा है। प्रस्तुत उपन्यास इसका एक अच्छा उदाहरण है। जीवन के सम्पूर्ण विस्तार के बजाय उसके एक खण्डित भाग को ही क्यों न हो पूरी संवेदना के साथ व्यक्त किया जाना चाहिए। इस दिशा में यह उपन्यास हिन्दी साहित्य में अग्रगण्य कहलाने योग्य है। हम बालकों को जिस दृष्टि से देखते हैं, बालक हमें उसी दृष्टि से नहीं देखते। उनकी दृष्टि और बोध बड़ों से भिन्न होता है। बालकों के दृष्टिकोण को समझने में यह उपन्यास बड़ा ही उपयोगी सिध्द होगा। मनोविज्ञान के ग्रंथों से बालमनोविज्ञान की जानकारी प्राप्त की जा सकती है किन्तु उससे इतना प्रभाव नहीं पैदा होगा। यह व्यावहारिक ही नहीं, सजीवन जीवन है, जिसमें हम स्वयं बालक उदयन बनकर उसकी

अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित करते हैं और कई बार तो सुभद्राकुमारी चौहान की पंक्तियों को अनायास रूप में स्मरण करने लगते हैं—"आजा बचपन एक बार फिर दे दे अपनी निर्मल शान्ति।"

● ●

(सप्तसिन्धु चण्डीगढ़ मई १९६१ में "धूमकेतु : एक श्रुति–एक कथा प्रयोग" शीर्षक से प्रकाशित।)

नरेश मेहता | नदी यशस्वी है

किशोर संवेदनाओंका जीवन

● किशोर संवेदनाओं का जीवन

उदयन की गाथा का यह दूसरा उपन्यास है। 'धूमकेतू : एक श्रुति' उदयन की गाथा का प्रथम उपन्यास है । 'नदी यशस्वी है' की कथा या गाथा उदयन की ही है । अभी तो उदयन की गाथा और दो भागों में छपने वाली है । दो भाग छप गए हैं और दो छपने वाले हैं। अतः समग्र रूप से चार भागों को देखने के बाद ही इनका पूर्णतः मूल्यांकन किया जा सकता है। प्रस्तुत प्रसंग में केवल दूसरे भाग 'नदी यशस्वी है' के सम्बन्ध में कहना है । अपने आपमें यह स्वतंत्र रचना है । उपन्यास के आरंभ में श्री नरेश मेहता (इस उपन्यास के लेखक) ने अपने वक्तव्य में कहा है – 'जीवन में निहित काव्य को पकड़ने की चेष्टा ही इस बृहत–गाथा की मूल संरचनात्मक संवेदना है अतः इसका काव्योपन्यास हो जाना सहज है तथा यही मेरा इष्ट भी रहा है ।'[1] लेखक ने अपने वक्तव्य के अनुकूल रचना को काव्योपन्यास का रूप दिया है । एक बृहत् गाथा का अंश होने पर भी इस रचना का स्वतंत्र महत्त्व है । स्वयं लेखक ने अब तक प्रकाशित दोनों रचनाओं का नामकरण अलग अलग किया है और संभवतः अगली दोनों रचनाओं के नामकरण भी भिन्न भिन्न हों। नाम अलग रखने का एक अर्थ यह भी है कि इस रचना का स्वतंत्र अस्तित्व लेखक को इष्ट है । नीचे रचना को एक स्वतंत्र रचना मानकर उसका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

'नदी यशस्वी है' उपन्यास का नाम है । लेखक ने इस सम्बन्ध में एक छोटी कविता उपन्यास के आरंभ में दी है । वह इस प्रकार है :

---

१. नदी यशस्वी है–– नरेश मेहता– पृ. शीर्षकहीन वक्तव्य से

अकेली चट्टान ने
हर क्षण टूटने पर भी
नर्मदा में खड़े रहकर
रोकना चाहा
ऽरेवा-वेग को।
ओ यशस्वी नदी
वह मैं हूं।[1]

इसी तरह उपन्यास के अन्त में भी लेखक ने कहा ह–" आज न सही कल मैं इस भय को वैसे ही पीछे छोड़कर बढ़ जाऊंगा जिस प्रकार नर्मदा का यशस्वी जल सब कुछ छोड़ता हुआ प्रवहमान है।"[2] अन्यत्र एक स्थान पर कहा है— " नदी मुझे सदा से एक मात्र यशस्वी लगती रही है। जिसमें सत्ता और गति दोनों ही होते हैं। "[3] इन्हें देखने से लगता है कि लेखक की विस्तृत योजना में एक छोटी योजना भी है। विस्तृत योजना उदयन की गाथा को चार भागों में लिखने की और छोटी योजना एक भाग की गाथा को प्रतीकात्मक रूप देने की। प्रथम भाग का नाम " धूमकेतु: एक श्रुति " रखा गया है। इस भाग में उदयन के शैशव एवं बाल्य–जीवन की गाथा है। संभवत: देसाई परिवार में उसका जन्म "धूमकेतु" के रूप में हुआ और अपने इस होने की कथा को श्रुति रूप में वह जितना जान सका या जान पाया उसी का विस्तार प्रथम भाग में है। मातृहीन बालक एवं पिता के होने पर भी जिसका बोध उसे नहीं हो सका, अत: पिता के सुख से वंचित रहने वाला बालक उदयन का वह जीवन, जो उसके 'बा' (उसके दादा) की मृत्यु होने तक गांव में बिताया गया, वह जीवन, और जो उसे प्रत्यक्ष रूप में अधिक ज्ञात नहीं, श्रुति रूप में अधिक ज्ञात है, उस जीवन का विस्तार–श्रुति विस्तार—प्रथम भाग में है। इस दूसरे भाग में श्रुति विस्तार नहीं, श्रुति आलाप है।[4] इस आलाप को प्रवहमान नदी के रूप में देखा गया है, ऐसी नदी जिसकी सत्ता में एवं गति में लेखक का विश्वास है और जो सदा यशस्वी रही है। उदयन की गाथा से,–विशेषकर उस गाथा से जिसका वर्णन प्रस्तुत

---

१. नदी यशस्वी है—– नरेश मेहता– पृ. आरंभ से।
२. ––वही — पृ २५० और २५१।
३. — वही — पृ. १८०
४. — वही — पृ. शीर्षकहीन वक्तव्य से।

भाग में है --नदी का संबंध यह है कि उदयन अनेक आवर्जनों एवं बन्धनों के बीच से गुजरते हुए वैसे ही आगे बढ़ता रहता है, जैसे कि नदी का प्रवहमान जल आगे बढ़ता रहता है। नदी की बहती धारा की तरह उदयन की जीवन धारा भी बहती है। उदयन का यह काल किशोरावस्था का काल है। यह काल विकास की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। उदयन की जीवन गाथा का यह काल किस प्रकार नदी की तरह आगे बढ़ता रहा, यही दिखलाना लेखक को इष्ट है और इसीलिए इस पुस्तक का नाम " नदी यशस्वी है " रखा गया है।

प्रश्न यह है कि इस उपन्यास में महत्त्वपूर्ण क्या है? कथानक की दृष्टि से उपन्यास को महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। उदयन के जीवन का एक भाग ही---किशोरावस्था का भाग---इस उपन्यास की कथा का मुख्य आधार है। 'बा' की मृत्यु के बाद उदयन अपने चाचा (सूर्यशंकर) के साथ गांव से महू (शहर में) आ जाता है और उन्हीं के साथ रहने लगता है। उसके चाचा जिलाधीश हैं। अतः उसका लालन-पालन उनके मान के अनुकूल होता है। उपन्यास में अन्त तक वह अपने चाचाजी के साथ रहते हुए दिखलाया गया है। अन्त में इतना संकेत अवश्य दिया गया है कि विचारों की दृष्टि से वह अपने चाचा के साथ नहीं है। अपने मन के भीतर वह क्रांतिकारी बन जाता है। चाचा के साथ रहकर भी चाचा के विचारों से उसके विचार भिन्न हो जाते हैं। इस उपन्यास में उदयन खुलकर चाचा का कहीं भी विरोध नहीं करता। वह उनसे दबा रहता है, उनका सम्मान करता है और उन्हीं के अभिजात परिवेश में रहकर उनकी आज्ञाओं का पालन करता रहता है, फिर भी उसके भीतर ही भीतर नदी का यशस्वी जल प्रवहमान रहता है। इस प्रवहमान जल को मूर्त करना उपन्यासकार का मुख्य लक्ष्य है और इसमें नरेश मेहता सफल हुए हैं।

अब उपन्यास के अन्तरंग को देखें। अपने चाचा के साथ रहने से पूर्व उदयन गांव में रहता था। न वहां शहरी वातावरण था और न अभिजात परिवेश। अतः चाचा के साथ रहने पर उसके जीवन में एक नया मोड़ आता है। यह मोड़ शिक्षा एवं परिवेश के संस्कारों के कारण आता है। बालक की वास्तविक शिक्षा का कच्चा चिठ्ठा इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। शिक्षा का कार्य केवल पाठशालाओं में नहीं होता। अपने आसपास के परिवेश से, साथियों से एवं घर के वातावरण से बालक प्रतिक्षण कुछ न कुछ सीखता रहता है। इस शिक्षा में बन्धन एवं आवर्जनों से मुक्त रहकर वह जीवन के

रहस्यों को अपने आप जानता रहता है । जो रहस्य उससे छिपाए जाते हैं, उनके प्रति बालजिज्ञासा सहज जाग्रत हो जाती है और कहीं न कहीं अपना समाधान ढूंढ लेती है । उदयन की शिक्षा का यही रूप इस उपन्यास में विस्तार के साथ दिया गया है । कथा उदयन की है, कथा कहने वाला उदयन है और तो और कथा में आने वाले पात्र (अन्य सभी पात्र) उदयन के अन्तरंग को जिस सीमा तक वास्तव में छू पाए हैं, उसी सीमा तक उन्हें स्थान मिला है । एक प्रकार से अन्य सभी पात्र उदयन के व्यक्तित्व को बनाने एवं बिगाड़ने वाले हैं । उनका यही महत्त्व है । छोटी छोटी घटनाओं का, साधारण से साधारण व्यक्ति से सम्पर्क का, स्थान परिवर्तन का, परिवेश के परिवर्तन का एवं उन सभी स्थितियों का जिनके सम्पर्क में उदयन अनायास आता रहता है, उन सब का उसके किशोर मन पर जो प्रभाव पड़ता रहता है, उन प्रभावों का काव्यमय रूप उपन्यास में अवतरित हुआ है । इसीलिए उपन्यास-काव्योपन्यास हो गया है । किसी घटना को घटित होते हुए दिखलाना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना घटित होने वाली घटना का पात्र द्वारा उस स्थिति विशेष में उपभोग करते हुए (घटना विशेष को, विशेष स्थिति में) दिखलाना महत्त्वपूर्ण है । साधारण से साधारण घटना भी पात्र के (किसी भी पात्र के) अन्तरंग से देखें तो उसका एक काव्यमय रूप ही सामने आएगा । काव्यमय आने का तात्पर्य यहां केवल इतना है कि घटना विशेष ने जीवन के अन्तरंग को कहीं न कहीं मार्मिक रूप में छू लिया है । उपन्यास पढ़ना अपने आपमें घटित घटनाओं के पात्र के द्वारा उपभोग किए हुए काव्यानन्द का आस्वादन करना है । इस अर्थ में उपन्यास सबसे अधिक सफल है ।

अब उपन्यास के काल एवं शैली पर विचार करें, प्रथमतः काल को लें । पृष्ठ २३९ पर लेखक ने तिथि दी है । उदयन ने समाचार-पत्र में भगत सिंह एवं राजगुरु की फांसी का समाचार पढ़ा । तिथि दी है--२३ मार्च सन् १९३१ । इस समय के आसपास ही उपन्यास का अन्त होता है । क्योंकि कहा गया है कि इसी समय में इधर भी तोरनद-काण्ड (एक क्रांतिकारी घटना, जो अंग्रेज सरकार के विरोध में थी) होता है । इस काण्ड में मास्टर साहब लालसिंह जी के भतीजे नारायणसिंह, उदयन के जीजाजी एवं राधेश्याम तीनों थे । इन तीनों का मुकदमा होता है । उस मुकदमे में तीनों को कारावास का दण्ड मिलता है, निर्णय को सुनने के बाद उदयन चाचाजी के साथ लौटता है और लौटते समय उसके मन के अन्तरंग को दिखलाते हुए उपन्यास का अन्त हो जाता है । अतः यह स्वीकार कर लिया जा सकता है कि उपन्यास के अन्त का समय १९३१ के अन्त का है । अधिक

से अधिक १९३२ तक समय खींच लिया जा सकता है। इसी समय में वह मास्टर लालसिंह से मिलते हुए उदयन कहता है। कि वह मिडिल-कक्षा में पढ़ता है।[1] साथ ही यह भी कहता है कि-- "तब तो मैं पूर्ण युवक था।"[2] अब अवस्था का पता लगाना कठिन है। ७वीं कक्षा में पढ़ रहा हो और युवक हो। हम वस्तु-स्थिति को स्वीकार कर चलें। निकर्ष यह कि १९३२ के समय तक इस उपन्यास के कथानक का अन्त होता है। अब इस १९३२ से पीछे समय को कितना खींचा जा सकता है, यह भी देख लेना चाहिए। उदयन, भवानी और दत्तू के साथ स्कूल में पढ़ता है। भवानी हेडमास्टर साहब का लड़का है और कक्षा में होशियार है। उसी क्लास में उदयन भी है। गणित एवं अन्य विषयों के पाठ्यक्रम को देखते हुए जिनकी चर्चा वे आपस में करते रहते हैं, लगता है, चौथी या पांचवीं कक्षा में होंगे। बहुत पीछे खींच लो तो तीसरी कक्षा से कम नहीं हो सकते। उपन्यास के अन्त में उदयन सातवीं कक्षा में और आरम्भ में तीसरी कक्षा (कम से-कम) मान लें तो उपन्यास का समय चार-पांच वर्षों से अधिक नहीं ठहरता। वैसे संभावना इससे कम की ही है। यह मानकर अब हम कह सकते हैं कि उपन्यास का समय १९२७ और १९३२ ई० के बीच का है। यह समय उदयन की अवस्था के हिसाब से देखें तो तेरह-चौदह एवं सत्रह-अठारह के बीच का है। कम से कम उदयन के जिस बोध का वर्णन उपन्यास में है, वह इसी अवस्था के बीच का ही है, ऐसा माना जा सकता है। अब उपन्यास के लेखन काल को देखें। इस उपन्यास का प्रकाशन जून, १९६७ ई० में हुआ। लेखक का वक्तव्य ५ मार्च, १९६७ का है और जिसमें नरेश मेहता लिखते हैं-- "प्रथम एवं द्वितीय खण्डों में चार वर्ष के अवांछित अन्तराल के लिए क्षमा"[3] अर्थात् लेखक के अनुसार यह उपन्यास १९६३ ई० एवं १९६७ ई० के बीच लिखा गया है। लेखन काल एवं उपन्यास की घटनाओं के काल की स्थूल सीमाओं को जानने के बाद अब निम्नलिखित कुछ स्थल देखें, जिनमें लेखक ने समय सम्बन्धी भूलें की हैं, काल प्रवाह पर लगता है लेखक ने कम ध्यान दिया है। देखिए :-

"लेकिन आज पचास वर्ष हो गये इस बीच छुट्टियों का अम्बार गुजर गया होगा पर उस दिन चाचाजी के आफिस की अंडाकार खिड़की के

---

१. नदी यशस्वी है--नरेश मेहता --पृ० २४०।
२. —वही-- पृ० २४०।
३. —वही-- पृ० शीर्षकहीन वक्तव्य से।

निकट खड़े होकर सुनन्दा को जो आने के लिय कह रहा था वह क्या पूरा हो सका ?" [1]

(आज का तात्पर्य १९६७ लें और उसमे से ५० वर्ष घटा दें तो समय १९१७ रह जायेगा। जबकि उपन्यास का काल स्थूल रूप में १९२७ ई० एवं १९३२ ई० के बीच है।)

"गत चालीस वर्षो से इसमें (पतके साहब की विशाल हवेली में) एक चौकीदार के अलावा कोई नहीं रहता ...... उन दिनों श्यामराव की आयु (चौकीदार की आयु) साठ से अधिक ही रही होगी। श्यामराव के बारे में पास–पड़ौस में कोई भी इस से अधिक नहीं जानता कि आज से चालीस वर्ष पूर्व इस हवेली के अन्तिम मंडलोई श्री यशवन्तराव पतके जिस दिन दस डोंगी पर सपरिवार नाव के रास्ते गए थे तब उनका यह प्रतिनिधि नया—नया ही कहीं से आया था। लोगों का ख्याल था कि श्यामराव पहली जर्मन लड़ाई में गया था तथा पेरों में गहरी चोंट आ गई थी इस लिए वह सेना से निकाल दिया गया था..."[2]

(श्यामराव ६० वर्ष का कहा गया है, उन्हीं दिनों से तात्पर्य उपन्यास के घटना काल से ही लेना चाहिए। अर्थात १९२७ एवं १९३२ के बीच। १९१४ की पहली लड़ाई के बाद से वह वहां रहता है और रहते हुए ४० वर्ष हो गए हैं अर्थात् १९१४ एवं ४० मिलकर १९५४ ई. का समय हुआ। यह समय किसी भी अवस्था में सही नहीं हो सकता। क्योंकि उपन्यास का काल १९३२ ई. के बाद का नही है। कम से कम स्वतंत्र भारत का तो कदापि नहीं है।)

इस प्रकार के और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनमें लेखक ने समय का ध्यान कम रखा है। कम से कम अब लेखक को अगले दोनों भाग लिखते समय अपनी इन भूलों की ओर ध्यान देना चाहिए।

अब शैली इवं शिल्प पर विचार करें। सारा उपन्यास उदयन के शब्दों में है। कहने वाला उदयन है और कथा उसी की है। दूसरी बात उदयन का किशोर बोध जो उपन्यास के मूल स्वर में दिखलाया गया है, वह बोध काल की

---

१. नदी यशस्वी है—नरेश मेहता—पृ० २०३।
२. —वही—पृ. १५४ एवं १५५।

दृष्टि से शैली के प्रवाह को देखते हुए किशोर काल बीत जाने पर, उस काल को स्मृति रूप में जीवित कर लिखा गया बोध है। यों कहिए कि किशोर जीवन को दूसरी बार जीने का क्रम उपन्यास में है। कम से कम शैली से यही प्रकट होता है। इसीलिए बहुत से स्थलों पर किशोर बोध, प्रौढ़ बोध में परिवर्तित दिखलाई देता है। उदाहरणार्थ :

"खिडकियों के पास दो-दो चार-चार की टोलियाँ बनाए हुए टबलों पर बैठे लोग रेंब्राट के चित्रों के विषय अधिक लग रहे थे।" (पृ २६) गाँव से आने वाले बालक का बोध रेम्ब्रांट के चित्रों से नहीं हो सकता; कम से कम उस उदयन का, जो कैरम भी नहीं जानता। (पृ. २८) यहाँ एक बात और है। स्मृतियों का अंकन काल की दृष्टि से क्रमशः नहीं हैं और ऐसा होना संभव भी नहीं। लेखन काल में अर्थात अपने प्रौढ रूप में किशोर-जीवन को दूसरी बार जीने का प्रयास यह स्मृतियों का एक रूप हुआ। दूसरे किशोर काल को (उपन्यास में घटित घटनाओं के काल को) वर्तमान उस समय व पूर्व की (अर्थात् किशोर काल से पूर्व की गाँव के जीवन की) स्मृतियों को किशोर काल में जैसे अनुभव किया गया, उन अनुभवों को लेखनकाल की प्रौढ़ दृष्टि से देखना, यह भी स्मृतियों का दूसरा रूप है और इन काल के विभिन्न खंडों में विभिन्न प्रकार के अनुभूत रूप हैं। कुल मिलाकर कहना यह है कि उदयन का किशोर-बोध किशोर-काल का वर्तमान कम है इसीलिये जहां जहाँ लेखक ने किशोर काल के वर्तमान से अपनी दृष्टि हटा ली है, वहीं वहीं वह काल संबंधी एवं किशोर बोध (अवस्था विशेष में मनोवैज्ञानिक बोध) संबंधी भूलें करता गया है। यह सब कुछ होने पर भी इस उपन्यास के अनेक प्रसंग बहुत ही सजीव हैं, उनका अपना स्वतंत्र काव्यमय आनंद है। जहाँ—जहाँ किशोर-बोध वर्तमान के साथ रहता है, उन स्थलों पर उपन्यास अपनी कला में उत्कृष्ट है। उपन्यास का आरंभ इसी रूप में है। महू के स्टेशन पर गाडी के रूक जाने का वर्णन सहज, स्वाभाविक एवं काव्यमय है।—"खट्-खटाँग करती, पटरियाँ बदलती, हिचकोले लेती ट्रेन अगत्या रुकी और महू आ गया।" (पृ. २).

शिल्प के अन्तर्गत कथानक को (उपन्यास में जो भी कथानक है, उसको) किस प्रकार जोड़ा गया है, यह देखें। या यों कहिये कि उपन्यास के क्रम को देखें। जिस शैली में उपन्यास लिखा गया है। उसे देखते हुए यह तो निश्चित कहा जा सकता है कि काल का क्रमशः निर्वाह करना कठिन है। अर्थात् कथा काल की दृष्टि से सीधी लकीर पर नहीं चलती। आदि से अन्त

तक कथानक का सीधा रूप यही है कि उदयन अपन चाचा (रावसाहब, जिलाधीश) के पास रहता है, उनके परिवेश में शिक्षा ग्रहण करता है और उन्हीं की मर्यादाओं के अनुकूल रहना सीखता है। यह तो कथानक का बाह्यरूप हुआ। कथानक का आन्तरिक रूप यह है कि अपने परिवेश में (जिसमें वह रखा गया है) रहते हुए भी वह उस से भिन्न प्रकार के संस्कारों को ग्रहण करता जाता है और ये संस्कार उसे अपने चाचा से दूर ले जाने वाले होते हैं। उदाहरण के लिए मुनीर खां का प्रसंग लें या श्यामराव का प्रसंग लें। इन प्रसंगों में मुनीर खां के परिचय में या श्यामराव के परिचय में काल-प्रवाह मुनीर खां एवं श्यामराव के अनुसार बदल गया हैं। साथ ही इन प्रसंगों से वह जो कुछ सीखता है वह निश्चित ही अपने चाचा की इच्छा के विपरीत था। ऐसे ही बीच बीच में जो प्रसंग आ जाते हैं, वहाँ वहाँ उपन्यास का कथानक प्रसंग विशेष के काल के अनुसार चलता है और फिर प्रसंग को मूल कथानक के प्रसंग विशेष से संबंद्ध कर दिया गया है। फिर किशोर जीवन की ये घटनायें प्रौढ़ावस्था में किशोर काल की स्मृतियों को फिर से जीने का प्रयास कर लिखी होने के कारण क्रमशः घटी हुई नहीं हैं, प्रसंगों को याद कर, उन प्रसंग विशेषों के काल को क्रमबद्ध बनाकर बीच बीच में लिख दिया गया है। जैसे :- स्मृति में मुनीर खां आता है । मुनीर खां की याद क्यों आई ? इसलिये कि वह घुड़सवारी करना सिखलाता था । अतः उसी प्रसंग पर लिखते समय अन्य प्रसंगों के क्रम को छोड़ दिया। मुनीर खां वाला प्रसंग एक बार आरम्भ होता है तो उस के भाग जाने के बाद ही समाप्त होता है । सिपाही उसे पकड़ कर ले जाते हैं और उस के बाद उसके मन पर उसका जो प्रभाव रह जाता है, उस प्रभाव को दिखलाकर उस प्रसंग का अन्त कर दिया गया है। अर्थात् स्मृति में, वे कुछ व्यक्ति हैं और वे कुछ घटनाएं हैं जो उदयन को बाद में हमेशा के लिये याद रह जाती है। ऐसे ही व्यक्तियों का एवं ऐसी ही घटनाओं का उनके पूर्ण परिवेश के साथ जिससे वे फिर ताजे प्रतीत हों मानों कल की ही बात हो, इस रूप में लिखने का प्रयास किया गया है। उपन्यास का शिल्प इसी तरह का है। किशोर काल के कुछ चुने हुए प्रसंग अपनी पूरी सजीवता के साथ किशोर-काल के वर्तमान-बोध को ताजा बनायें रखने की दृष्टि से लिखे गये प्रसंग इस उपन्यास की कथा के मूल आधार हैं।

अब अन्त में यह देखें कि यह काव्योपन्यास है। वास्तव में इस उपन्यास का यही महत्त्व है । लेखक ने आरम्भ में कहा है—" जीवन में निहित काव्य

को पकड़न की चेष्टा ही इस बृहत्-गाथा की मूल संचरनात्मक संवेदना है अतः इसका काव्योपन्यास हो जाना सहज है तथा यही मेरा इष्ट भी रहा है।"[1] लेखक के इन शब्दों का विश्लेषण करें। उदयन की बृहत्-गाथा लेखक की योजना में है। इस गाथा में (जीवन की गाथा में) उदयन के जीवन के उन्हीं प्रसंगों की विस्तृत चर्चा उपन्यास में की गई है, जिनमें उदयन पूरी संवेदना के साथ जीता है। ऐसी संवेदना जिसे जीवन का व्यक्त रूप कहना चाहिये। इस बात को कुछ और विस्तार से कहें। जीवन में हम जो कुछ अनुभव करते हैं, ऐसा अनुभव जो एक बार होने पर भी हमारी संवेदना का आधार बन कर हमको आन्दोलित करता रहता है और जिनके स्मरण मात्र से जीवन के तार झंकृत होने लगते हैं। इनकी अभिव्यक्ति काव्यमय ही हो सकती है। इन संवेदनाओं को लेखक ने औपन्यासिक रूप दिया है। नदी यशस्वी है, उपन्यास का आनन्द उपन्यास के कथानक में नहीं है, वह उन संवेदनाओं में हैं, जिनमें उदयन अपनी किशोरावस्था में रहता आया है (अनुभव करता रहा है)। जीवन के इस काव्य को लेखक ने पूरी संवेदनामयी क्षमता के साथ उपन्यास में अवतरित किया है और यही इस उपन्यास की सब से बड़ी उपलब्धि है। किशोरावस्था के वे सभी प्रसंग जिनमें उदयन के जीवन का काव्य निहित है (अर्थात् प्रसंग विशेष की संवेदनाएँ उसी रूप में जाग्रत हैं, जो प्रसंग विशेष में उद्भूत हुई थीं।) उन्हीं प्रसंगों को पूरे परिप्रेक्ष्य के साथ लिखा गया है, जिससे संवेदनायें फिर जीवित हो उठी हैं और इसीलिये यह उपन्यास काव्योपन्यास हो गया है।

● ●

(सप्तसिन्धु, चण्डीगढ़, जनवरी १९६९ में 'नदी यशस्वी है: एक काव्योपन्यास' शीर्षक से प्रकाशित—)

---

१. नदी यशस्वी है—नरेश मेहता–पृ. शीर्षकहीन वक्तव्य से।

लक्ष्मीकांत वर्मा | खाली कुर्सी की आत्मा

टूटी हुई ज़िन्दगियाँ बनाम
मूल्यों का विघटन

● टूटी हुई जिन्दगियाँ बनाम मूल्यों का विघटन

'खाली कुर्सी की आत्मा' श्री लक्ष्मीकांत वर्मा का लिखा हुआ व्यंग्य प्रधान एवं प्रतीकात्मक उपन्यास है। यंत्रयुग की सभ्यता ने जीवन को कितना यांत्रिक बना दिया है, मनुष्य की समाज में क्या स्थिति है, उसके जीवन मूल्य कितने बदले हुए हैं, व्यक्तिमन पर बाह्य घटनाओं और दृश्यों का क्या प्रभाव पड़ता है, व्यक्ति जैसा दिखाई देता है वैसा ही है या अपने भीतर वह और कुछ है, जीवित रहना वास्तव में जीने की आदत बना लेना है या अपने को परिस्थितियों पर छोड़ देना है या निजत्व को लेकर जीना है, जो निजत्व को लेकर जीने का प्रयत्न करते हैं, उनका अन्त क्या होता है आदि प्रश्नों का उत्तर है — 'खाली कुर्सी की आत्मा'। जीवन के गहन यथार्थ को अभिव्यक्ति देने के लिए, कथ्य को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उपन्यासकार ने उपन्यास के प्रचलित रूप विधान के स्थान पर नये रूप विधान का प्रयोग किया है। यह आवश्यक भी था क्योंकि नई अभिव्यक्ति नए माध्यम से ही संभव होती है।

उपन्यास की मूल घटना है – रेलवे दुर्घटना और कथानक है चन्दनपुर के रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम के लोगों की टूटी हुई जिन्दगियों को प्रकाश में लाना। रेलवे दुर्घटना के बाद स्टेशन का जीवन किस प्रकार का हो सकता है, इसी का हृदयग्राही यथार्थ चित्र उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। दुर्घटना से ग्रस्त लोग, उनके उद्धारक जन, स्टेशन के कर्मचारी, सरकारी अधिकारी वर्ग, पत्रकार, घायलों की सेवा करनेवाले, लाशों का पोस्टमार्टम करनेवाले, डाक्टर और नर्स, कैदियों का भागना, पुलिस वर्ग का अनुशासन, जननेता और मनमौजी यात्रि लोग आदि सभी स्टेशनपर हैं।

इनकी प्रतिक्रिया भिन्न भिन्न है। लेखक ने वेटिंग रूम के इस समाज का बाह्य और आन्तरिक दोनों पक्षों का विश्लेषण किया है। एक प्रकार से मानव के 'लघु मानव' की भावना पर उपन्यासकार ने बल दिया है। इसीलिए चन्दनपुर के रेलवे दुर्घटना वाली घटना के साथ साथ एक और प्रमुख घटना उसके साथ जोड़ दी गई है और वह है—'ग्रेट इंडिया सर्कस और महामानवों की टोली' उपन्यास के मूल कथानक की धुरी चन्दनपुर के रेलवे स्टेशन का वेटिंग रूम ही है। इसी समय पहुँचनेवाली सर्कस और महामानवों की टोली मूल कथानक की सहायक कथा है। इस मूल कथानक को यदि छोड़ दें तो इसके अतिरिक्त उपन्यास में चन्दनपुर में रहनेवाले कुछ प्रमुख पात्रों का अलग अलग व्यक्तिमूलक चरित्र चित्रण मिलता है। ये पात्र एक नगर के होने के नाते एक दूसरे से सम्बद्ध है। इनको जान लेने से वेटिंग रूम के लोगों के जीवन का आंतरिक रूप समझ में आता है।

वेटिंग रूम में खाली कुर्सी रखी हुई है। इसी के माध्यम से सारे उपन्यास की कथा कही गई है। कुर्सी अपना परिचय देती हुई कहती है—"यों तो वैयाकरणों के मतानुसार मेरी आत्मा पुल्लिग है लेकिन चूंकि जनता ने आत्मा को स्त्रीलिंग बनाकर छोड़ दिया है इसलिये मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि मैं केवल न्यूट्रल हूँ, फिर भी मैं जनता का विरोध करना नहीं चाहती... जनमत के सामने सदैव नतमस्तक हूँ, इसलिए निरपेक्ष, स्वतन्त्र और निर्भीक होते हुए भी मैं जनरूचि के अनुरूप ही बोलूंगी। यद्यपि मेरा आकार नीलाम किया जा रहा है लेकिन मेरी हड्डी जो शीशम की बनी है और मेरी आत्मा जो स्वतन्त्र है, मुक्त है, वह न तो कोई नीलाम कर सकता है और न वह बिक सकती है -"[1] वेटिंग रुम तो कुर्सी का अन्तिम स्थान है। वह जो कहानी सुनाती है वह उसकी आत्मकथा है। उसने जीवन में किन किन स्थानों की यात्रा की और इस स्थलपर कैसे पहुँची, अपने जीवन में उसने जो अनुभव प्राप्त किए एवं जीवनको खुली आँखों से देखा उसका ब्यौरेवार हाल वह कुर्सी सुनाती है। कुर्सी की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है।

हीरपुर फर्नीचर मार्ट के कण्ट्रैक्टर से छावनी के कैप्टन हैवलाक ने हवल्दार की सिफारिश से कुर्सियाँ खरीदी। इससे कण्ट्रैक्टर ने प्रसन्न होकर शुकराने में एक कुर्सी हवल्दार को दी। यही कुर्सी उपन्यास की कुर्सी है।

---

१. खाली कुर्सी की आत्मकथा—लक्ष्मीकांत वर्मा (प्रथम मंस्करण)—पृ. ११

हवल्दार को मेम साहब से तीन लोहे के खिलौने मिलते हैं-- बंदर, रीछ लोमड़ी। इन खिलौनों के साथ कुर्सी अगम पंडित के यहाँ पहुँचती है। अगम पंडित के यहाँ एक लौह पुरुष से भेंट होती है। अगम पंडित के पास से कुर्सी अपने साथियों के साथ बरबाद दरियाबादी शायर के यहाँ चली जाती है। यहीं पर उसकी भेंट फिर हवल्दार से हो जाती है। हवल्दार इस समय डॉक्टर वनडोले की चौकीदारी करता था अतः वह फिर उस कुर्सी को उसके साथियों के साथ डाक्टर को दे देता है। डाक्टर वनडोले के पास से ये सभी साथी दिव्या-देवी के नाद मंदिर में पहुँचते हैं तत्पश्चात डा० संतोषी के पास और डा० संतोषी के पास से महिम के पास। डाक्टर संतोषी के पास पहुँचने तक कुर्सी के साथ उसके सभी साथी रहते हैं किन्तु महिम के पास केवल कुर्सी ही पहुँचती है। उसके अन्य साथियों को एक कबाड़ी डाक्टर संतोषी की पत्नी प्रतिभा से एक रुपया साढ़े सात आने में खरीद लेता है। महिम के पास कुर्सी की भेंट अधूरे आदमी और कैक्टस के फूल से होती है। महिम के पास से फिर यह कुर्सी कबाड़ी के पास पहुँती हैं। यहाँ इसकी भेंट फिर अपने पुराने साथियों से होती है। कबाड़ी उसे नीलाम कर देता है। बेचारी कुर्सी फिर अकेली अपने नये मालिक जनार्दन गार्ड के यहाँ पहुँचती है। जनार्दन गार्ड इसे फिर नीलाम करता है और अन्तमें वह एक नेता के द्वारा तीन रुपए बारह आने छः पाई में खरीद ली जाती हैं। यही कुर्सी अब वेटिंग रुम में रखी हुई है। नेता महोदय ने एक नौजवान पैटमैन को समझा दिया था कि मौके से उसे पार्टी के दफ्तर में पहुँचा दे ताकि मीटिंग में चेयरमन को बैठने में सुविधा हो। किन्तु कुर्सी वहाँ तक नहीं पहुँच पाती। उसका अन्त यहीं हो जाता है। रेल्वे-दुर्घटना के कारण घायल, पींड़ित और अनजान प्रवासियों के साथ जो चूर-चूर क्षत-विक्षत वेटिंग रूम में पड़े हुए हैं, उनके साथ वह जल जाती है। राख हो जाने के बाद अपने अन्तिम सन्देशके रूप में कुर्सी जो कुछ कहती हैं, उसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—"सच मानो मैंने जो कुछ सहा है, अपना बनाकर सहा है। जब मैं सह चुकी हूँ तब वह सब का है...तुम्हारा है...उनका है जो सहन करने के पहले ही पलायन कर गये थे उनका है जो सहन करने में टूट गए थे... उनका है जो सहन करने की प्रक्रिया में बिखर गये थे। लो, मेरी अस्थि राख लो, लो मेरी वेदना, मेरी पीड़ा, मेरी सहनशक्ति के आधार पर मेरे व्यक्तित्व का अधिकार लो...वह तुम्हारा है...तुम सब का है...उस रोते शिशु का है जो अब भी इस प्लेटफार्म पर चीख रहा है...आदि आदि"[१] उपन्यास का अन्तिम

१.-खाली कुर्सी की आत्मा—श्री लक्ष्मीकांत वर्मा—पृ. ४११ एवं ४१२.

अध्याय अन्तरिम बिन्दु कुर्सी के अन्तिम निवेदन से पूर्ण है। उपन्यास की पूर्ण संवेदना इसमें व्यक्त हुई है। आधुनिक काव्यका जो भावबोध है। उसकी झलक इसमें मिलती है। यहाँ तक कि कुछ पंक्तियाँ काव्यमय हो गई हैं। जैसे :---

" तुम कहोगे मैं मर चुकी हूँ ...
तुम कहोगे मैं विलुप्त हूँ ...
तुम कहोगे मैं निरपेक्ष हूँ ...
तुम कहोगे मैं कल्पना हूँ ...
किन्तु मरना
और
जीना
सहना, और सहना ... सहना ... सहना ... " [1]

यह कुर्सी का अन्त है और यह संवेदना। इसी को अभिव्यक्त करने के लिए वह अपनी कथा कहती है।

यह कुर्सी जहाँ-जहाँ पहुँचती है या जिस पात्र के यहाँ वह रहती है उनका ब्यौरेवार आन्तरिक और बाह्य जीवन का चित्रण प्रस्तुत करती है। लोहे के खिलौने और लौह-पुरुष आपस में जो बातचीत करते हैं उन्हें भी कुर्सी सुनती है। एक दृष्टि से यह सारी चर्चा पात्र के आन्तरिक खोखलेपन को या उसके यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए की गई है। इनके माध्यम से लेखक ने मानव का पारदर्शक चित्र प्रस्तुत किया है। पहले कथानाक और बादमें उसका विश्लेषण। इस विश्लेषण में ये लौह-पुरुष और खिलौने सहायक होते हैं। यह विश्लेषण विचारप्रधान होते हुए भी हृदय को झकझोर-नेवाला, एक चेतना पैदा करनेवाला एवं 'लघु मानव' की हस्ती का ज्ञान करानेवाला है। इन खिलौनों और लौह-पुरुष के अतिरिक्त कथा को अन्य माध्यमों से भी कहा गया है जैसे अगम पंडित के घर से चले जाने के बाद उनकी गाय और अश्व के माध्यम से या दिव्या-देवी के नाद-मंदिर की मूर्तियों के माध्यम से या महिम की "अधूरा आदमी" और "कैक्टस का फूल" रचनाओं के माध्यम से। ये सभी कुर्सी को पात्रों के व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। उपन्यास की शैली और शिल्प को समझने के लिए एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा। महिम के पास जब कुर्सी पहुँचती है उस

---

१ – खाली कुर्सी की आत्मा— श्री लक्ष्मीकांत वर्मा–पृ. ४१२

समय उसका परिचय दो नये साथियों से होता है। [1] अधूरा आदमी और [2]। कैक्टस के फूल। इन दोनों के द्वारा कुर्सी को महिम के व्यक्तित्व के दो विभिन्न पहलुओं का ज्ञान होता है। कुर्सी कहती है :—

"कैक्टस के फुल" नामक हस्तलिपि मुझसे थोडी दूर थी लेकिन मैं उसकी रंगीन और हाव–भाव से उसकी अन्तरात्मा से परिचित हो गई थी। अधूरा आदमी मेरा मुँह देखकर बोला... "अखिर तुम कहना क्या चाहते हो...जो भी तुम्हें कहना हो वह कह लो फिर मैं अपनी बात शुरु करूँ... "

" मुझे कुछ कहना नहीं है। मैं माहिम के उन क्षणों की यादगार हूँ जब वह श्रद्धावान था ..आस्था और विश्वास को स्वीकार करके चलना चाहता था। तुम्हारी बात को काट कर मैं केवल उसी तथ्य को कहना चाहता हूँ ... ।"

" तो शुरु करो...तुम्हीं कहे जाओ .. "

" और कैक्टस के फूलों ने कहना शुरु किया..." [1]

'कैक्टस के फूल' ने महिम की जो कथा सुनाई उसमें केवल जीवन की आस्था व्यक्त हुई है। इस कथा के समाप्त हो जाने पर अधूरे आदमी ने कहा–" लेकिन महिम के जीवन का एक पहलू और भी है जिसे तुम नहीं जानते . और वह है उसकी अस्वाभाविकता ...उसका वह टूटा हुआ व्यक्तित्व जिसने मास्टर दादा जैसे चरित्र का निर्माण करने का निश्चय किया है। " [2]

और इस माध्यम से महिम के व्यक्तित्व के दूसरे पहलू को बतलाया गया है। इस तरह कुर्सी उपन्यास की सारी कथा जिन जिन स्रोतों से उसे ज्ञात होती जाती है उसी के माध्यम से वह कहती जाती है। यहाँ तक कि वह वेटिंग रूम में खटमल और दीमक की बातें सुनती है, सुनती ही नहीं उनसे स्वयं बातचीत भी करती है। सारा उपन्यास एक प्रकार से बेजान चीजों और प्राणियों के माध्यम से कहा गया है। कथा साहित्य में यह एक नया प्रयोग ही है।

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा—श्री लक्ष्मीकांत वर्मा–पृ. ३००
२. —वही—पृ. ३३०

जैसे कि पहले ही कहा गया है उपन्यास का मूल कथानक चंदनपुर रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम के समाज का कथानक है। वेटिंग रूम एक ऐसा स्थान होता है जहाँ सभी अजनबी रहते है। यह स्थान कुछ समय ठहरने के लिये होता है। सभी अपने गन्तव्य की चिंता में रहते है। यात्रि लोगों में आपसी परिचय पूरा नहीं होता। तरह तरह के लोग आपस में तरह तरह की बातें करते रहते हैं और सभी अपनी अपनी दृष्टि से अपने अपने लक्ष्यों की ओर बढ़नेवाले होते हैं। अतः इस समाज का चित्र उपन्यास की प्राचीन परंपरा और शैली के अनुसार नहीं होता। उपन्यास का यह भाग-जो कि उपन्यास का मूल भाग है--व्यक्ति मूलक चरित्रचित्रण से भिन्न है। वेटिंग रूम में कुर्सी रखी हुई है। वह इस समाज को देखती रहती है। अतः उसी के माध्यम से कथानक कहना सार्थक है। दूसरी बात यह कि कुर्सी स्वयं जो कुछ देखती है उनका क्रम भी स्फुट और विशृंखल है। अतः कथानक भी विशृंखल है। कुर्सी बेचारी या तो वेटिंग रूम में उपस्थित पात्रों की वेश-भूषा को देखकर या उनके मुख के भावों को पढ़कर या पात्रों के आपसी संवाद को सुनकर उस समाज का परिचय प्राप्त कर सक्ती है। दूसरा कोई मार्ग उसके सामने नहीं है। अतः वेटिंग रूम के इस समाज का चित्र इसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। एक उदाहरण--"गोल मेज की चारों और चार कुर्सियां हैं जिनपर चार विशिष्ट व्यक्ति बैठे हुए हैं। चारों के पैर मेज पर टँगे हैं। वेटिंग रूम में प्रवेश करते ही नजर मेज पर पड़ती है, और मेज पर नंगी नंगी टाँगों के मस्तक पर जूतों और चप्पलों के सिवा कुछ नहीं दिखाई पड़ता। नागरा ... लाँग शू ... मिलेट्री बूट ... और चप्पल चारों जूतों को देखकर व्यक्तियों के व्यक्तित्व का भी अनुमान लगाया जा सकता है। आजकल जमाना भी कुछ इसी तरह का हो गया है। जूते के रंग-रूप, चमक-दमक में व्यक्तित्व की झाँकिया मिल जाती हैं।"[1] इसके बाद कुर्सी उन पात्रों के व्यक्तित्व की झाँकी का वह रूप प्रस्तुत करती है जो उनकी वेशभूषा और मुख के भावों को देखकर कहा जा सकता था। इस समाज में कुछ ऐसे पात्र भी उपस्थित थे जिनका कुर्सी को पूरा परिचय था। अतः वह चंदनपुर में बसनेवाले उन पात्रों का पूरा कथानक अपनी आत्मकथा के रूप में अलग से कहती रहती है। बीच बीच में वेटिंग रूम की कथा भी चलती है। वेटिंग रूम की कथा वर्तमान यथार्थ है और चंदनपुर के पात्रों की कथाएँ अतीत की स्मृतियाँ हैं। कुर्सी उन

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा – श्री लक्ष्मीकांत वर्मा पृ. ७६

अतीत की स्मृतियों को वर्तमान के यथार्थ से जोड़ते हुए उन्हें अर्थ प्रदान करती चलती है। एक प्रकार से उपन्यास वर्तमान के यथार्थ और अतीत के स्मृत्यालोक में झूलता चलता है। दूसरे शब्दों में अतीत वर्तमान को आलोकित करता जाता है। सारा उपन्यास इसी शैली में लिखा गया है।

अतीत के स्मृत्यालोक से सम्बन्ध रखनेवाले पात्रों का चरित्रचित्रण विस्तार से मिलता है। यह उपन्यास व्यंग्य–प्रधान होने के कारण पहले व्यंग्य को स्पष्ट किया जा रहा है।

उपन्यास में व्यंग्य

'खाली कुर्सी की आत्मा' व्यंग्यप्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास की प्रमुख घटना रेलवे दुर्घटना है। इस दुर्घटना से ग्रस्त लोगों पर समाज की क्या प्रतिक्रिया होती है? और इस प्रतिक्रिया के पीछे विभिन्न वर्ग और समुदायों के लोगों के वास्तविक उद्देश्य क्या होते हैं? सारा जनसमाज वहाँ सहायता के लिए पहुँचते हुए भी क्या वे वास्तव में सहायता करते हैं या केवल एक दिखावा और अपने स्वार्थों और अपने अपने उद्देश्यों को लेकर वहाँ पहुँचते हैं। सरकार की ओर से, जननेताओं की ओर से तथा उसी नगर के प्रतिष्ठित लोगों की ओर से इस दुर्घटनाग्रस्त जनसमुदाय को जो सहायता दी जाती है उसके पीछे वास्तविक यथार्थ क्या होता है? कथनी और करनी में कितना अन्तर है? ये और अनेक प्रश्नों का उत्तर उपन्यास में यथार्थ रूप से देते हुए उपन्यासकार ने समाज पर गहरा व्यंग्य किया है।

इस व्यंग्य को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करना उचित होगा। पत्रकार कैलाश वहाँ उपस्थित है। वह तार पर तार दे रहा है। उसका केवल एक ही उद्देश्य है और वह है समाचारों को रोचक और मनोरंजक बनाना जिससे उसके पत्र की बिक्री अधिक से अधिक हो। मानवीय संवेदना से उसे कोई मतलब नहीं है। उसकी मनःस्थिति का चित्र इन शब्दों में देखिये। —"उसका मन्तव्य इतना है कि इस खौफनाक दुर्घटना में आदमी की कैसी दुर्दशा हुई... वह केकडे की तरह रेंगता है या पर कटे चींटे की तरह, वह दीमक की तरह पिस गया है या सिर्फ एक सैण्डविच बनकर रह गया है। उसकी दिलचस्पी आदमी में नहीं है। वह टूटे हुए रेल के डिब्बों की तस्वीर ले रहा है। टूटे हुए पुल की तस्वीर ले रहा है...सुबह से अब तक वह नदी के किनारे केवल इसलिए बैठा रहा है ताकि वह उन लाशों की तस्वीर ले सके जो कल रात अंधकार में पुल के

किनारे के साथ बीच नदी में गिर गई हैं... आदि आदि "[1] पत्रकार कैलाश को ही क्यों दोष दिया जाय? वह तो अपना कर्तव्य कर रहा है। स्टेशन मास्टर इसलिए चिन्तित है कि सारा दोष उनके मत्थे मढ़ दिया जायगा। वे डाक्टर वनडोले से प्रार्थना करते हैं कि किसी तरह जनार्दन गार्ड को बचा लिया जाय। केवल दस मिनट के लिए उसे होश में लाया जाय। उससे बयान लेना है और वे साफ बच जाएँगे। स्टेशन मास्टर के सम्बन्ध में प्लेटफार्म पर जो चर्चा हो रही है, उसका कुछ अंश --

"में नहीं जानता...सुना है स्टेशनमास्टर के यहाँ काफी सामान आया है... और किसका होगा...उन्हीं लावारिसों का होगा...इन मुर्दों के के साज व सामान से आदमी कब तक अपने को सजायेगा..."

"तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है दादा...मैं कहता हूँ दुनियाँ हमेशा से यों ही रही है और शायद यों ही रहेगी ..."[2]

इसी तरह साहित्यकार वहाँ केवल रसबोध के लिए उलझ रहे हैं। बुद्धि और भावना का पूरा समन्वय स्थापित नहीं हो पा रहा है। डाक्टरों का दल तो वहाँ हैं किन्तु दवाइयों का अभाव है। उनके पास केवल वही दवाइयाँ नहीं है जिनकी जरूरत है। काली मोटी नर्स को हिन्दुस्थानियों से घृणा है। वह अपने डियर फ्रेंड के साथ नियत समय पर मिलती है और अपाहिजों को ठोकर मारती हुई चली जाती है। घायलों की स्थिति शोचनीय है किन्तु वहाँ डाक्टर वनडोले देखते हैं कि नर्स-नर्स चिल्लाने से कोई लाभ होनेवाला नहीं। वहाँ कोई नहीं है। रेलवे दुर्घटना के कारण जसवंत और प्रतिभा को अपनी यात्रा स्थगित करनी पड़ी। क्या करें बेचारे? स्टेशन पर समय काटना बड़ा कठिन है। सबेरे वे पिकनिक के लिए चले जाते हैं और शाम में फिर एक दर्जन चिड़ियों का शिकार कर उन्हें लेते हुए लौटते हैं। यह सारी घटना उनके लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है। नेता महोदय घायलों और पीड़ितों के पास अपना दल लिए खड़े हैं और नारे पर नारे लगा रहे हैं। वे मरीजों का सिर दबाना नहीं चाहते। वे केवल अपनी पताका फहराते हैं और किसी के मरने की आवाज सुनते ही नारा बुलंद करते हैं। पत्रकार विनय को यह शिकायत है कि स्टेशन पर ढंग की सिग्रेट नहीं मिलती। बीड़ी ही मिलती है। मिलिट्री

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा—श्री लक्ष्मीकांत वर्मा–पृ. २२३।
२. —वही— पृ. ९५।

का आदमी जसवंत का कहना कि—" एक हल्के से तूफान से डर जानेवाले लोग भी क्या हैं ··सारा गाँव का गाँव, शहर का शहर जलते हुए इन्होंने कभी देखा नहीं ··यहाँ तो ढूँढने से आदमी की लाश मिल सकती है लेकिन लड़ाई के मैदानों में कौन पूछता है···कमबख्त चील, कौए भी नहीं पूछते।"[1] कहता है और आराम से टिफिनकैरियर खोलने लगता है। थानेदार अपने दलबल के साथ उपस्थित है। स्टैशनमास्टर के साथ हाथ में टार्च लिए स्टेशन के कोने कोने का निरीक्षण कर रहे हैं। इससे वातावरण में सरगर्मी है। मोटी नर्स भयभीत है क्योंकि पिछली रात पुलिस के दल ने उसे शहर में युवक के साथ शराब पीकर घूमते हुए देखा और टोका था। थानेदार को अपनी रिपोर्ट लिखनी है। वह कुछ मसाला ढूँढ रहा है। मेजर नवाब पर उन्हें शक होता है। उससे पूछताछ करते हैं किन्तु मेजर नवाब के उत्तरों को सुनने के बाद भी वह अनुभव करता है कि इनको रिपोर्ट में लिखा नहीं जा सकता। अतः अंत में वह अपने नियमानुसार बयान बनाकर लिख लेता है। थानेदार जबरन मेजर नवाब को कैद कर लेते हैं। उसे पकड़ते समय मेजर नवाब की गोद से बच्चा चीखता हुआ गिर जाता है। बेरहम पुलिस बच्चे को उसी तरह चीखते हुए छोड़कर मेजर नवाब को लेकर आगे बढ़ जाती हैं। इस तरह वेटिंग रूम में जिस समाज का चित्र दिखाया गया है, वह यथार्थ होते हुए भी समाज पर बड़ा भारी व्यंग्य करनेवाला है।

वेटिंग रूम वाले इस समाज के साथ साथ संलग्न और एक कथा चलती है और वह है ग्रेट इंडियन सर्कस वाली कथा। उपन्यासकार ने इस घटना के द्वारा व्यंग्य को और अधिक तीखा बना दिया है। इसके अभाव में नगर की जनता की प्रतिक्रिया को व्यक्त नहीं किया जा सकता था। नगर भर में महामानवों की टोली घूमती है। और रात में नगर की जनता सर्कस देखने पहुँचती है। 'लगता था स्टेशन पर न कोई घटना हुई है और न दुर्घटना। जैसे पुल टूटा ही नहीं, आदमी मरे ही नहीं ··· जिन्दगी को झटके लगे ही नहीं"[2]'

अन्त में पुल टूटने के अपराध में तीन व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए जाते हैं और वे हैं— हवल्दार, डाक्टर नवाब और मास्टर दादा। वास्तव में ये तीनों अपराधी नहीं हैं। यह तो वह समाज है जिसने उनकी यह गति बनाई।

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा--श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा--पृ. ९०।
२. —वही—पृ. ३९०.

हवल्दार पर यह जुर्म लगाया गया कि पुल टूटने के बाद वह बन्धन से मुक्त हो गया था। मास्टर दादा का अपराध यह था कि इन्होंने पुल तोड़ दिया है। जब कि वास्तविकता यह है कि मास्टरदादा ने बहुत पहले ही पुल की कमजोरी का अनुभव किया था। उन्होंने रेलवे के अधिकारियों को इस संबंध में सूचित भी किया था किन्तु वही बेचारे अपराधी ठहराए गए। और मेजर नवाब, जो स्टेशनपर दुर्घटना ग्रस्त लोगों की सहायता में लीन था; सब का इलाज कर रहा था; मानवता की रक्षा में प्रयत्नशील था; उसे इस अपराध में कैद कर लिया गया कि सर्कस में उसने गलत औषधियाँ दी··· लंगड़ा होकर भी हत्या की—खान की। सीधे सच्चे हवल्दार का और समाज के वास्तविक हितचिन्तकों का यह अन्त है। यह दोष व्यक्ति का नहीं उस समाज का है जिसने उसको यह सजा दी। समाज के प्रति इस तीखे व्यंग्य का अनुभव वही कर सकता है जो तथ्य को ही नहीं जानता बल्कि उसके आशय को भी समझ लेता है। जब हम यह समझ लेते हैं कि जैसे समाज दिखाई देता है वैसा नहीं है, और कुछ है तो हमारी आस्था बदल जाती है। ऐसी स्थिति में हमें चारों ओर के दृश्यों में एक प्रकार के व्यंग्य का अनुभव होता है। सब कुछ मिथ्या लगता है। यही इस उपन्यास में दिखलाया गया है। पढ़ने के बाद सब से प्रबल प्रतिक्रिया यह होती है कि सारा समाज अपने अपने उद्देश्यों के पीछे पागल है। उसे किसी के मरने जीने की कोई चिंता नहीं है। मानवीय संवेदना मरती हुई दिखाई देती है। कुर्सी ने वास्तव में जो संवेदना अन्तमें व्यक्त की है वह अपने यथार्थ के ज्ञान के कारण ही। बेचारी कुर्सी ही इस यथार्थ का अनुभव कर सकती है। क्योंकि व्यक्तियों को उसका पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। वह कुर्सी कहती है—

"मैं आज भी जिन्दा हूँ क्योंकि मेरी पीड़ा जिन्दा है। क्यों कि मेरी वेदना जिन्दा है। मैंने जीवन और उसके व्यंग्यों को जिया है···आदमी की तस्वीरों और उसकी भाग्यरेखाओं के बीच की उठती दुविधाओं और आस्थाओं को भी परखा है। मैं उन सब क्षणों में जिन्दा रही हूँ जहाँ मनुष्य ने नये मोड़ लिये हैं। जहां मनुष्य ने अपनी किसी भी कुण्ठा को अविवेकपूर्ण ढंग से जीने की चेष्टा की है। मैं तुम्हें कैसे बताउँ, मेरे सहधर्मी ··· यह संसार, यह सारी मानवता, यह सारा नाटक, यह सारा क्रम उपक्रम यह वाद–विवाद, यह भाव और विषाद जैसे किसी उबलते, खौलते शीरे के बुलबुले थे, जो हवा के हर गिरह के साथ बनते और दूसरी गिरह के साथ टूटते थे···जैसे उन सब में इनका कोई वश ही नहीं है, जैसे वे कहीं

इतना अधिक बन्धे हैं कि मुक्त नहीं हो सकते ... जैसे वे केवल सहने के लिए बने हैं, केवल मिटने के लिए बने हैं ..."[1]

——यह कुर्सी की संवेदना है जिसने जीवन के व्यंग्यों को देखा, परखा और उसमें जीकर उसे अनुभव किया।

प्रतीकात्मकता

'खाली कुर्सी की आत्मा' और सब कुछ होते हुए भी प्रतीकात्मक है। स्वयं उपन्यास का नामकरण इसके प्रतीकात्मक होने के अर्थ का द्योतन करता है और उपन्यासकार ने भी जगह जगह इसके संकेत अपने पात्रों द्वारा देने का प्रयत्न किया है। सब से पहले नामकरण को ही लिया जाय। कुर्सी है और वह भी खाली और उसकी आत्मा भी है। उसने अपने परिचय में यह बात पहले ही स्पष्ट कर दी कि न तो वह पुल्लिग है और न वह स्त्रीलिंग। वह तो न्यूट्रल मात्र है। इसीमें उसने अपना पूरा परिचय दे दिया। इसके साथ साथ एक और महत्त्वपूर्ण बात उसने यह बतलाई कि उसके शरीर का नीलाम हो सकता है किन्तु उसकी आत्मा स्वतंत्र है। यही नहीं अन्त में जब कुर्सी जला दी जाती है तब भी उसकी आत्मा जीवित रहती है और अपनी संवेदना को पूर्ण क्षमता के साथ व्यक्त करते हुए कहती है कि वह जिन्दा है। आत्मा मर नहीं सकती। इसी तरह उसकी संवेदना भी नहीं मर सकती। उसकी पीड़ा उसकी वेदना जीवित है। प्रतीक अपने आपमें अब स्पष्ट हो गया है। 'खाली कुर्सी की आत्मा' आज के युग में मानव की लघु हस्ती का परिचय करानेवाली आत्मा का प्रतीक है। जैसे, कुर्सी खाली है, वैसे ही आज का व्यक्ति भी अपने आपको खाली अनुभव कर रहा है। जैसे कुर्सी नीलाम होती है वैसे ही आज का व्यक्ति भी नीलाम हो रहा है। किन्तु नीलाम तो केवल शरीर का होता है, उसी तरह आज व्यक्ति इस शरीर की रक्षा के लिए ही अपने को नीलाम कर रहा है। कुर्सी की आत्मा स्वतंत्र है उसी तरह व्यक्ति की आत्मा भी स्वतंत्र है किन्तु इस स्वतंत्रता का सम्बन्ध समाज में शरीर से ही है। कुर्सी के शरीर की दुर्गति होती है, वही आज के व्यक्तियों की दुर्गति की स्थिति का परिचय करानेवाली स्थिति है। मानवीय संवेदना को पूर्णतः आत्मसात किए हुए कुर्सी की आत्मा जीवित है और अपना जीवन दर्शन प्रस्तुत करते हुए कहती है कि सहना ... और सहना ... और सहना ... वास्तव में यह मानव

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा——श्री लक्ष्मीकांत वर्मा——पृ. ४१३.

के वर्तमान स्वरूप को समझाकर उसको उसकी स्थिति का बोध कराने के लिए ही वह अपना सन्देश कहती है। उपन्यास का नामकरण इस दृष्टि से पूर्णत: सार्थक है। कुर्सी ने अपने आपको न्यूट्रल माना है, उसके पीछे एकमात्र आशय यही है कि वह तटस्थ रूप से सारे यथार्थ का बोध करती है और मनुष्य को उसके सच्चे स्वरूप का परिचय जैसे उसने देखा है उस रूप में उससे कहना चाहती है। उसने कहा भी है--" मैं केवल न्यूट्रल हूँ, फिर भी मैं जनता का विरोध नहीं करना चाहती...जनमत के सामने मैं सदैव नत-मस्तक हूँ, इसलिये निरपेक्ष, स्वतंत्र और निर्भीक होते हुए भी मैं जनरुचि के अनुरूप ही बोलूँगी "[1] उसने निरपेक्ष भाव से ही सारी कथा कही है।

उपन्यास के नामकरण की तरह उसमें जो कथा कही गई है, जिस स्थानविशेष के समाज का चित्र उसमें उपस्थित किया गया है और साथ ही जिस प्रमुख घटना का उल्लेख किया गया है, उनमें भी प्रतीकात्मकता है। वेटिंग रूम प्रतीक की दृष्टि से यह जगत ही है। जैसे वेटिंग रूम का समाज अजनबियों का समाज होता है और वहाँ सभी लोग कुछ काल ठहरने के लिये आते हैं और अपना अपना लक्ष्य खोजते हुए अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान करते हैं। ठीक यही स्थिति जगत की है। जगत में सभी व्यक्तियों की स्थिति भी आज वेटिंग रूम में ठहरनेवाले यात्रियों सी हो गई है। वे आज अपने को अकेला समझ रहे हैं। वेटिंग रूम में चहल-पहल तो बहुत होती है। जनता का प्रवाह तो होता है किन्तु फिर भी व्यक्ति अपने आप को कटा कटा अनुभव करता है। वह अपने दो तीन परिचित व्यक्तियों के समूह में ही बातचीत करता हुआ दिखाई देता है। ठीक इसी तरह आज के युग में समाज के बन्धन ढ़ीले होते जा रहे हैं। व्यक्ति अपने अपने घेरों में बन्धता जा रहा है। अज-नबियों की तरह से आज के व्यक्तियों का बाहरी सम्बन्ध रह गया है। वेटिंग रूम की तरह पुल और रेल्वे दुर्घटना भी प्रतीक ही है। कुर्सी स्वयं कहती हैं कि—" और यह स्टेशन ... प्रत्येक गति का विवेक सा दो पुलों के बीच की स्थिति की मर्यादा है। लाल रोशनी, हरी रोशनी, गति, भाव यह सबके सब तो इन्हीं के माध्यम से चलते हैं। लेकिन लगता है मर्यादाएं दृष्टि चाहती हैं ... दुर्घटनाएं, दृष्टिहीन मर्यादा के होने से उपजती हैं। यह दुर्घटना ... पुल का टूटना, यह अनन्त मानवों का अन्तर्गत में समा जाना, किसी प्रवाह में लाश सा बह जाना ... कहीं न कहीं उस मुर्चे के समान है जो ठहराव से जन्मता है ...

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा – श्री लक्ष्मीकांत वर्मा – पृ. ११.

रुढ़ि में पनपता है ... मनुष्य के बिके हुए, अल्पज्ञ, अन्धकार में खपता है।" [1]
ये पंक्तियाँ प्रतीकात्मकता को ही स्पष्ट करती हैं । यही नहीं उपन्यास में स्थान स्थान पर मनुष्य की वास्तविक स्थिति का परिचय कराने के लिए लेखक ने अनेक प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है । जैसे अध्यायों के शीर्षकों को देखकर या उपन्यास के पात्रों के चरित्र चित्रण में यह बात देखी जा सकती है । यद्यपि अध्यायों के शीर्षकों का सम्बन्ध पात्र विशेष के चरित्र की विशेषता का परिचय देनेवाले स्वरूप से है किन्तु फिर भी उसमें प्रतीकात्मकता है । जैसे : 'राख के पुतलों में लोहे का अभाव' या 'आदमी और चूहे'। दोनों ही शीर्षक उक्त अध्यायों में वर्णित पात्र विशेष के चरित्र को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त कर रहे हैं । ज्वाला के व्यक्तित्व को संक्षेप में -- 'राख का पुतला' कहा गया है । वास्तव में यह उपयुक्त ही था । लोहे का पुतला सख्त होगा, मिट्टी का उससे कम सख्त किन्तु राख का तो व्यक्तित्वहीन होगा । ज्वाला ने दिव्या-देवी का प्रेम प्राप्त किया, धन प्राप्त किया, प्रतिष्ठा भी प्राप्त की किन्तु उसकी स्थिति क्या थी ? आखिर सारथी का सारथी रहा व तांगा चलाता रहा । उसने इस चीज को अनुभव कर लिया । दिव्या-देवी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिया । सारा धन ज्वाला को दिया किन्तु फिर भी पान की बेगम की तरह ट्रम्पकार्ड बनी रही । डाक्टर संतोषी का जीवन चूहों और आदमी के बीच प्रयोगों का जीवन था । उन्होंने मानवीय व्यवहारों की तुलना चूहों से की । अतः उनके अध्याय का शीर्षक उनके चरित्र के अनुकूल है । वैसे इसमें प्रतीकात्मकता यही है कि पात्र के चरित्र को उसके जीवन दर्शन के प्रमुख स्त्रोत को प्रतीक बना दिया गया है। डाक्टर संतोषी चूहों के माध्यम से आदमी के व्यवहारों का अध्ययन करते थे । इसी तरह लौह पुरुष और तीनों खिलौने बंदर, गीदड़ और रीछ भी प्रतीक ही हैं। यद्यपि ये खिलौने हैं किन्तु उपन्यास में सर्वत्र पात्रों के व्यक्तित्वों का सूक्ष्म दर्शन करते हैं और अपना अपना अभिमत प्रकट करते रहते हैं । इससे ये ज्ञात होता है कि ये मनुष्य के स्वरूप का वास्तविक बोध कराने का प्रयत्न करते हैं और अपने जीवन दर्शन के अनुसार उसे अभिव्यक्त करते जाते हैं । जैसे लौह पुरुष कहता है— "मेरा ऊपरी ढ़ाँचा कठोर वज्र-सा लेकिन मेरे भीतर की रिक्तता ही जैसे मुझे खाए जारही है ... जिन्दगी न तो फौलाद है और न सोना, जिन्दगी एक

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा—श्री लक्ष्मीकांत वर्मा --पृ. ४१३.

परिस्थिति है, वातावरण है... जो परिवर्तनशील है... प्रेषणीय है...' [1] लौह पुरुष की जीवनी आदि से अन्त तक यदि देखी जाय तो उसमें यही जीवन दर्शन उसे देखने मिला है, यह बोध होगा। सैम्पसन फैक्टरी से निकल कर चूरन बेचनेवाले के पास, वहाँ से अगम पंडित और इस तरह होता हुआ उसे अन्त में कबाड़ी के पास पहुँचना पड़ा। अपने को वज्र रखते हुए भी भीतर से खोखला रहा और जीवन को परिस्थिति या वातावरण मानकर चलता रहा। आदमी के संबंध में उसकी विचित्र राय थी उसने आदमी के खोखलेपन को पहचाना। यद्यपि वह स्वयं अपने को खोखला मानता है किंतु आखिर वह वज्र का है जब कि आदमी के सम्बन्ध में उसकी राय है कि वह मिट्टी का है। वह कहता है--"आदमी कोई देवता नहीं, हमीं लोगों की तरह जीता-जागता एक जीव है.. बल्कि उससे बढ़कर शक्तिमान मैं हूँ... वह मिट्टी का है...मैं लोहे का हूँ" [2] इसी तरह अन्य खिलौने बंदर, गीदड़ और रीछ भी समय समय पर आदमी के सम्बन्ध में अपनी चारित्रिक विशेषताओं के अनुसार अपनी राय प्रकट करते रहते हैं। ये तीनों खिलौने वास्तव में आदमी पर व्यंग्य करते हैं और बेचारा लौह पुरुष आदमी की विशेषताओं का परिचय कराते हुए होनेवाले इन व्यंग्यात्मक प्रहारों से अपना बचाव करते हुए व्यक्ति की वास्तविक स्थिति का परिचय इनको भी देता है और साथ साथ हम पाठकों को भी। एक प्रकार से लौह पुरुष ने व्यक्ति के खोखलपन को जहाँ पहचाना, उसकी गलतियों को जहाँ जाना वहाँ उसने आदमी की विशेषताओं और क्षमताओं को भी पहचाना। वह कहता है— 'आदमी अपने जीवन की हर गलती से बड़ा है... प्रत्येक सफलता उसके सम्पूर्ण जीवन से उतनी ही छोटी है जितनी कि प्रत्येक असफलता छोटी है। आदमी का प्रत्येक प्रयोग, उसकी प्रत्येक जिज्ञासा व्यापक सत्य का एक अंश है... और व्यापक सत्य से बढ़कर क्रान्तिकारी वस्तु कोई नहीं है। क्योंकि वही जीवन है... उसको स्वीकार करना ही क्रान्ति है।' [3] संक्षेप में कहना यह है कि लौह पुरुष और तीनों खिलौने बंदर, गीदड़ और रीछ भी मनुष्य के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करनेवाले प्रतीक हैं। इस तरह हम देखते हैं कि सारा उपन्यास अपनी मूल कथा को कहता हुआ भी व्यक्ति के विभिन्न कोणों का विभन्न प्रतीकों के माध्यम से अध्ययन प्रस्तुत करता है।

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा--श्री लक्ष्मीकांत वर्मा--पृ. २१५.
२. --वही--पृ. २८७.
३. --वही--पृ. २८६.

'मानव मूल्यों का विघटन' या 'टूटी हुई जिन्दगियाँ'

उपन्यास के मूल कथानक का सम्बन्ध वेटिंग रूम से है और इसके शीर्षक में कहा गया है— टूटी हुई जिन्दगियाँ। अत: इसको स्पष्ट करना भी उचित होगा। टूटी हुई जिन्दगियों को दूसरे शब्दों में मानव मूल्यों का विघटन भी कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। उपन्यास में जिन पात्रों का चरित्र चित्रण किया गया है उसे देखने से पता चलता है कि मानव मूल्यों का विघटन हो रहा है। मानव की आस्थाएँ मानव के मूल्यों को व्यक्त करती हैं। और इन आस्थाओं का बदलना या टूटना मूल्यों का बदलना या टूटना है। प्रत्येक व्यक्ति संसार में अपनी अपनी आस्थाओं—अपने अपने जीवन दर्शन को लेकर जीता है। जब वह जीवन के कटु यथार्थ को देखता है, तो उसकी आस्थाओं को चोट पहुँचती है। यदि इस पर भी वह आस्थाओं को लेकर जीवित रहता है। और संघर्ष का सामना करता जाता है तो हम यह कहेंगे कि उसके जीवन मूल्यों में परिवर्तन नहीं हुआ। जीवन मूल्यों में विघटन की स्थिति हम उस समय मानेंगे जब हमारी आस्थाओं में परिवर्तन हो जायगा। इसमें भी यदि एक आस्था का स्थान दूसरी आस्था ले लेंगी तो केवल मूल्य में परिर्तन हुआ या आस्था बदल गई यही कहा जायगा। किन्तु यदि जो आस्था थी वह तो टूट गई और उसका स्थान लेने के लिए जीवन में किसी दूसरी आस्था को स्थान नहीं मिला तो ऐसी स्थिति में हम टूटी हुई आस्थाएँ या टूटे हुए मूल्य या मूल्यों का विघटन कहेंगे। उपन्यास के पात्रों में इन टूटी हुअी आस्थाओं या टूटे हुए मूल्यों को दिखाया गया है। इस समय हम विघटन की स्थिति में हैं। जीवन के तथाकथित मूल्य झूठे सिद्ध हो रहे हैं और नये मूल्यों की स्थापना अभी नहीं हो पाई है। अत: उपन्यास में मानव मूल्यों की विघटनशील स्थिति का विवेचन किया गया है। उदाहरण के लिए डा. संतोषी या महिम के चरित्र को लिया जा सकता है। उपन्यास के सारे पात्रों में इस स्थिति को दिखाने से बहुत विस्तार हो जायगा अत: इन दोनों पात्रों के आधार पर मूल्यों के विघटन को नीचे दिखलाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

डा० संतोषी प्रसिद्ध दार्शनिक, मनोविज्ञानवेत्ता और वैज्ञानिक थे। उन्होंने सारा जीवन प्रयोगों में गुजारा और अन्त में उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले उसके आधार पर उन्होंने यह अनुभव किया कि उनके निष्कर्ष सत्य होने पर भी उन्हें कोई स्वीकार नहीं करेगा। यदि वे बतला देंगे तो लोग उन्हें जिन्दा दफन कर देंगे। अपने दार्शनिक जीवन में उन्होंने हमेशा समझौते का

प्रयास किया किन्तु उनको अपने निष्कर्ष सदैव प्रिय रहे। अपनी आस्थाओं से वे चिपके रहे अतः उनके सम्बन्धों में भी अन्तर आते गए। दिव्या-देवी से प्रेम सौंदर्यप्रियता के कारण हुआ किन्तु सूक्ष्म और स्थूल के आधार पर मतभेद हो गया। परिणाम स्वरूप सम्बन्ध टूट गया। प्रतिभा के साथ उनका विवाह समझौता ही था। दोनों ही स्वतंत्र थे। शरीर के पापमय और पुण्यमय होने में उन्होंने विश्वास नहीं किया। यही प्रतिभा भी चाहती थी। अतः यह सम्बन्ध भी एक टूटा हुआ सम्बन्ध था जिसका वही परिणाम हुआ जो होना था। अन्त में उनका व्यक्तित्व उखड़ जाता है और वे आत्महत्या की बात सोचते हैं। अपना अन्तिम संन्देश उन्होंने यही लिखा था कि -- "मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि मैं अब जिन्दा रहूँ या आत्महत्या कर लूँ क्योंकि मेरे लिए अब जिन्दा रहना उतना ही कठिन है जितना कि मरना।"[1] घर से चले जाने पर वे आत्महत्या का प्रयत्न करते हैं किन्तु विकलांग होकर रह जाते हैं। मौत नहीं होती। अपनी इस स्थिति का परिचय वे इन शब्दों में देते हैं--" जिन्दगी इतनी सख्त होती है कि दुर्घटनाएँ आती हैं, निकल जाती हैं। हद से हद आदमी टूट जाता है। जिन्दगी दो टुकडे होकर रह जाती है लेकिन जिन्दगी मिटती नहीं, कभी नहीं...और मैं जिन्दा हूँ।"[2] यह है जिन्दगी का टूटना और मानव मूल्यों का विघटन होना।

इसी तरह महिम के व्यक्तित्व के भी दो पहलू ह। एक वह जब उसमें श्रद्धा और आस्था थी। और उसके व्यक्तित्व का दूसरा रूप वह है जिसमें उसकी यह आस्था टूट गयी थी। उसके जीवन मूल्य विघटित हो गए थे। महिम मध्यवर्ग का लेखक था। वह दैन्य और अभाव को नहीं देखना चाहता था अतः जीवन में आस्था को लिए हुए वह इस अभाव को दूर करने का प्रयत्न कर रहा था। इसी बीच अंजलि उसके जीवन में आई जिसने उसके आस्थावाले पक्ष को चोटकर उसे बदलने के लिए कहा किन्तु वह फिर भी व्यवस्थाहीन नहीं होना चाहता। परिणामतः अंजलि उसका साथ छोड़ देती है और प्रकाश का आश्रय लेती है। यही अंजलि और प्रकाश अन्तमें अपने पापपिण्ड को छिपाने के लिए उसके पास आते हैं और नवजातशिशु को उसी के पास छोड़कर चले जाते हैं। एक नवयुवक--अविवाहित नवयुवक-के

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा--श्री लक्ष्मीकांत वर्मा--पृ. २८०.

२. --वही--पृ. ४०५.

पास शिशु का होना जगत की दृष्टि में पाप सिद्ध होता है और वह पकड़ लिया जाता है। अपने बयान में उसने जो बात कही, वह यह है–" खूनी दोनों ही हैं, पुलिस वाले और वह प्रकाश और अंजलि। दोनों का अनियंत्रित दुराग्रह है... अंतर केवल इतना है कि एक खून, खून को बचाने के लिए करता है, दूसरा खून को रात के अंधेरे में छिपाने के लिए। लेकिन इसके बीच में मरता और खपता वह है जो अधिक भावुक होता है, अधिक संवेदनशील होता हैं।" [१] वह कैद कर लिया गया। कैद से छूटने के बाद का जीवन टूटती हुई आस्था का जीवन है। वह अस्वाभाविक है। मास्टरदादा जो चरित्र की दृष्टि से भटकते सत्य हैं उन्हींका वह आश्रय लेता है। उसका सत्य और उसकी आस्था भटकती रहती है। उसका जीवन टूटा हुआ जीवन है। अंतमें वह दुर्घटना का शिकार होता है।

उपन्यास के अन्य पात्रों में भी इस विघटनशील स्थिति को देखा जा सकता है। अगम पंडित एक ऐसा पात्र है जो अपने मूल्यों से चिपका रहा और ये मूल्य जगत के अनुकूल नहीं थे अत: अन्त में उसे अपने हाथों कैद होना पड़ा जो मूल्य बदलने के लिए तैयार नहीं होंगे उन्हें जगत बदलने पर मजबूर कर देगा। इस उपन्यास में वे पात्र एक प्रकार से सफल रहे या जिन्हें टूटना नहीं पड़ा वे हैं जिन्होने जीवन को एक परिस्थिति और वातावरण मान लिया और अपने को जगत के चलते हुए ढांचे में फिट करने का प्रयत्न किया। आस्थाओं को लेकर जीवन कठिन है। जगत का यथार्थ उन्हें विघटित कर देता है। अनास्था से जीना भी कठिन है क्योंकि वह अस्वाभाविकता को पैदा करता है। अत: इन दोनों की बीच की स्थिति में ही आज के लोग जी रहे हैं। और वह है जीवन को एक परिस्थिति या वातावरण मानकर... इसमें भी जगत के ढांचे में अपने को फिट करने का प्रयत्न करते हुए। इस प्रकार के पात्रों में प्रतिभा, अंजलि डॉ. वनडोले, जसवंत, दिव्या देवी, ज्वालाप्रसाद आदि पात्र आते हैं। इन पात्रों के आपसी सम्बन्ध को ध्यान से देखा जाय तो वे परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल बदलते हुए दिखाई देंगे और हर नई परिस्थिति में ये पात्र अपने अनुकूल वातावरण को खोजने का प्रयत्न करेंगे। आस्थाओं से ये चिपके हुए नहीं है और न इनके जीवन में कोई आस्था स्थिर हो सकी है। प्रतिभा और अंजलि को ही लिया जाय। प्रतिभा का सम्बन्ध जसवंत से था। फिर भी उसने डॉ.

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा–श्री लक्ष्मीकांत वर्मा–पृ. ३२९।

संतोषी से विवाह किया। दोनों के साथ उसका सम्बन्ध दो प्रकार के विभिन्न समझौते थे। किसी एक से बन्धकर रहना उसने स्वीकार नहीं किया। दोनों के साथ अपने सम्बन्ध को वह इन शब्दों में व्यक्त करती है। वह जसवंत से कहती है--"मैं अपने सत्य पर आज भी कायम हूँ। तुम संतोषी से द्वेष करते हो, मैं सन्तोषी को सहानुभूति देती हूँ और वह मेरी सहानुभूति के कारण मुझे भोगने का अधिकारी है। तुम मुझे पराजित करते हो··· तुम्हारी कठोरता, बर्बरता, एकदम तोड़ डालने की तुहारी आकांक्षा मुझे प्रिय है, इसलिए मैं तुम्हें भोगती हूँ।" [1] --यह है प्रतिभा। इसी तरह अंजलि पहले महिम की ओर आकर्षित होती है किन्तु वह व्यवस्थाहीन नहीं होना चाहता तो स्वयं अपने को परिस्थितियों पर छोड़ देती है। आदर्शवादियों को वह घृणा की दृष्टि से देखती है किन्तु कटु यथार्थ को भी वह गले नहीं उतार सकती। वह केवल परिस्थितियों के आधार पर जी रही है। महिम के बाद प्रकाश को पकड़ा। पापपिण्ड को महिम के हवाले कर भाग गई किन्तु क्या वह प्रकाश के साथ भी सुख से रह सकी। महिम को उसके पत्र मिलते रहते हैं। महिम को ज्ञात होता है कि प्रकाश ने भी उसका साथ छोड़ दिया और अब वह किसी और के साथ है। ज्वाला तो राखका पुतला था ही जिसने अधिकार प्राप्त करने के सारे प्रयत्न किये किन्तु अन्त में सारथी का सारथी बना रहा। खोखला सिध्द हुआ। उपनिषदों का गौरव और विश्वचेतना अन्त में तांगा चलाने में ही सीमित रही। उसने भी जीवन को परिस्थिति मान लिया। इस तरह हम देखते हैं कि इन पात्रों में आस्थाएं विघटित हो रही हैं। वे परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल बदल रही हैं।

उपसंहार

इस तरह हम देखते हैं कि 'खाली कुर्सी की आत्मा' अपने रूप--विधान में, अपनी टेकनिक में, शैली और शिल्प में तो नया है ही किन्तु इसके साथ साथ उसमें जो अभिव्यक्त जगत है, वह यथार्थ, खरा और वास्तविकता को पारदर्शक रूप से प्रस्तुत करनेवाला है। उपन्यासकार कभी वर्तमान की प्रगति से पीछे नहीं रह सकता और यह चीज प्रस्तुत उपन्यास में देखने मिलती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "--उपन्यास किसी देश की साहित्यिक विचारों की प्रगति को समझने के उत्तम साधन

---

१. खाली कुर्सी की आत्मा--श्री लक्ष्मीकांत वर्मा--पृ. २६२.

माने गये हैं, क्योंकि जीवन की यथार्थताअें ही उपन्यास को आग बढ़ाती हैं। मनुष्य के पिछड़े हुए आचार–विचारों और बढ़ती हुई यथार्थताओं के बीच निरन्तर उत्पन्न होती रहनेवाली खाई को पाटना ही उपन्यास का कर्तव्य है"[1] प्रस्तुत उपन्यास द्विवेदीजी की इन पंक्तियों का सही उदाहरण प्रस्तुत करता है।

● ●

---

१. विचार और वितर्क––(डा. द्विवेदी का लेख––हिन्दी उपन्यास में यथार्थवाद का आतंक)–पृ. १०५.

लक्ष्मीकांत वर्मा

एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ काग़ज़

बौद्धिक अनुभूतियों का जीवन

● बौद्धिक अनुभूतियों का जीवन

आज के वैज्ञानिक युग में नित्य बदलती मान्यताओं के बीच मानव का जीवन भावनाहीन होता जा रहा है । ऐसी स्थिति में जीवन में मूल्यों का विघटन होता है । मानवीय मूल्य मानवीय आस्थाओं में निहित होते हैं। मानवीय आस्थाओं के प्रति दृष्टिकोणों का बदलना मानवीय मूल्यों में परिवर्तन होना है । आस्थाहीन जीवन मूल्यहीन जीवन है । मनुष्य यदि इस प्रकार के जीवन को जीता है या भोगता है, तो वह कटा हुआ जीवन है । जब तक मनुष्य का सम्बन्ध किसी आस्था से संलग्न नहीं होता तब तक वह अनास्था-मूलक स्थिति में जीता है और इस प्रकार का जीवन नई आस्था की खोज में चिन्तनपरक जीवन ही हो सकता है । 'एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज' उपन्यास का 'अनाम' नायक का जीवन इसी कोटि का है । यह उपन्यास शैली, शिल्प एवं विषय सभी दृष्टियों से नया है । श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने उपन्यास के आरम्भ में 'दो शब्द' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है---मैंने 'अनाम' की संज्ञा इसलिये दी है क्यों कि इस क्षण का यथार्थ कहीं न कहीं हम सब भोगते हैं । किसी से उलझ कर यह क्षण फिसल जाता है और किसी के साथ अन्तरमन की गहराइयों की पर्त दर पर्त को खोलता चलता जाता है ---फिर जिस मानव अनुभूति के सहभोगी सब हों उस अनुभूति के भोक्ता को कोई एक नाम कैसे दिया जाय, सच तो यह है कि इस उपन्यास का नायक न तो मर्यादा पुरुषोत्तम है, और न कोई हीरो । वह हम सब के व्यक्तित्व का अंश है---इसलिये सूक्ष्म है । अमूर्त है । अमूर्त हैं इसलिये सब का है । अनाम है । "[1] लेखक का यह कथन उपन्यास में जीवन के प्रति अपनाए

---

१. एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज--श्री. लकष्मीकांत वर्मा--दो शब्द से

गये दृष्टिकोण को व्यक्त करनेवाला है । उपन्यास के नायक का जीवन उस पात्र विशेष का जीवन नहीं है और न ही उसकी समस्याएं उसकी अपनी हैं। वह आज के वैज्ञानिक युग के चिन्तनपरक जीवन गुजारने वाले सभी व्यक्तियों का जीवन है । साथ ही नायक की समस्याएं आज के व्यक्तियों की समस्याएं हैं । सब के व्यक्तित्वों का अंश होने के नाते लेखक ने उसका नाम 'अनाम' रखा है । यहाँ पर इस उपन्यास का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

उपन्यास के पात्रों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है। अनाम नायक, उसकी पत्नी निशि, केवल अेवं केवल की पत्नी दीप्ति इस तरह चार प्रधान पात्र हैं। इनके अतिरिक्त डॉ. जोशी, काम करनेवाली गूंगी, बूढ़ा पेंटर, दीप्ति के पास रहनेवाली आया एवं उसका बच्चा गौण पात्र हैं। इनके अतिरिक्त जिप्पी, पूसी, खरगोश के बच्चे, गिलहरी आदि प्राणी इनका भी अपना महत्त्व है। कथा की दृष्टि से इसमें केवल तीन दिनों का विवरण है। नायक नाईलवैली नाम के मकान में रहता है। वह पहाड़ के ढलान पर बना हुआ मकान। ऊपर वाले मकान में दीप्ति रहती है। उपन्यास में जिन तीन दिनों का विवरण है, वह नायक की पत्नी निशि की चौथी वर्षी से लेकर उसके आगे के दो दिनों तक का विवरण है। अन्त में नायक की मृत्यु हो जाती है। वह बाढ़ पीड़ितों को बचाने के लिए बढ़ता जाता है और स्वयं बहकर मर जाता है। दीप्ति जिसने निशि की मृत्यु के बाद नायक के जीवन में निशि के दुःख को भुलाने में सहायता दी थी, इस दुःख को सह नहीं सकती वह उसकी लाश को देखने के बाद—भीड उसकी लाश को लेकर आई थी—विक्षिप्त हो जाती है और फिर उसी के कमरे में लौट जाती है वहाँ वह एक कागज के टुकडे को देखती है, जिस पर नायक ने किसी समय लिखा था।

> ' There is only one man in the world
> And his name is all men
> There is only one woman in the world
> And her name is all women.
> There is only one chlid in the world
> And the child's name is all children ' [1]

---

१. एक कटी हुई जिंदगी : एक कटा हुआ कागज–श्री. लक्ष्मीकांत वर्मा–पृ. २०४.

–इसके साथ ही उपन्यास समाप्त हो जाता है। अन्त बहुत ही मार्मिक है। वह अनाम मर कर भी सब मनष्यों की भावनाओं में, अनुभूतियों में जी रहा है।

तीन दिन के कथानक में नायक मौन रहता है वह किसी भी समय मुखर नहीं होता। उसकी मानसिक अवस्था, कुछ इस प्रकार की है कि वह तुरीया वाचा में अपने भावों को व्यक्त नहीं कर सकता। वाणी के चार भेदों में वह चौथे भेद वैखरी वाणी या तुरीया वाचा को छोड़ ही देता है और केवल परा, पश्यन्ति और मध्यमा में जीता है। ये तीनों ही ऋग्वेद के अनुसार गुहानिहित हैं। कहा भी है :

> चत्वारि वाक्पपरिमिता पदानि,
> तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण।
> गुहा त्रीणि निहिता नेगंयन्ति,
> तुरीयं वाचं मनुष्या वदन्ति॥ (ऋ. सं. १. १६४.४५)

ऐसी स्थिति में उपन्यास को नई टेकनिक से लिखना पड़ा है। नायक नाईलवैली में रहता है। अकेला रहता है। उसके पास काम करनेवाली नौकरानी भी गूंगी है। दूसरे, जिन प्राणियों के समाज में वह रहता है जैसे जिप्पी, पूसी, खरगोश के बच्चे, गिलहरी एवं अन्य पक्षी आदि, वह सारा समाज भी गूंगा है। इन सब में विचारों का या भावों का आदान प्रदान तुरीया भाषा में नहीं होता. सारा व्यवहार संकेतों के माध्यम से होता है और ये पात्र आपस में एक दूसरे को मुख या शरीर की भाव भंगिमाओं को आँखों से पढ़ लेते हैं और तदनुकूल व्यवहार करते हैं। बोलनेवाले पात्रों में केवल दीप्ति एवं बूढ़ा पेंटर हैं। डाक्टर जोशी भी बोलनेवाले हैं। किन्तु इन सब का बोलना एक पक्षीय है क्योंकि दूसरा पक्ष जब नहीं बोलता तो इनका बोलना विस्तार नहीं पा सकता। हाँ, ये बोलनेवाले पात्र आपस में बोलते हैं और इसी के माध्यम से नायक एवं नायक के गूंगे समाज का सामाजिक परिचय हमें मिलता है। नायक का वास्तविक परिचय नायक के उन प्रति–वर्तनों में मिलता है, जो वह अपने आसपास के जगत में व्यक्त करता जाता है। उसके ये प्रतिवर्तन, अन्य पात्रों के संदर्भ में एवं प्राणीजगत के साथ साथ वस्तुजगत में भी देखे जा सकते हैं। वह व्यक्ति से अधिक प्राणियों में और उससे अधिक वस्तुओं में जीता है। उसके लिए वस्तु वस्तुमात्र नहीं है, उनमें वह अतीत को याद करता है। वस्तुजगत के प्रति उसके प्रतिवर्तन निरुपाधिक

नहीं, सोपाधिक हैं। ये प्रतिवर्तन मौन रूप में ही होते रहते हैं किन्तु इनमें नायक वाणी के प्रथम तीन भेदों में से किसी न किसी अवस्था में वस्तु जगत को अनुभव करता रहता है। शास्त्रों के अनुसार वाणी के भेदों की व्याख्या अति संक्षेप में इस प्रकार होगी। परा वाणी नाद–रूपा शुद्ध अहं परामर्शमयी शक्ति हैं। पश्यन्ती वाच्य और वाचक के अस्फुट विभाग, चैतन्य प्रधान दृष्टि रूप वाली है। मध्यमा वाच्य और वाचक का विभाग होने पर भी बुद्धिप्रधान दर्शन स्वरूपा दृष्टा और दृश्य के अन्तराल में रहती है। वैखरी स्थानकरण और प्रयत्न के बल से स्पष्ट होकर वर्ण की उच्चारण शैली को ग्रहण करनेवाली दृश्य–प्रधान होती है।[1] नायक की नाद–रूपा वाणी को तो लेखक नहीं लिख सकता। पश्यन्ती और मध्यमा मुखरित न होनेपर भी चैतन्यप्रधान और बुद्धिप्रधान होने के नाते उसका विश्लेषण किया जा सकता है। इस विश्लेषण में वैखरी वाणी का ही सहारा लिया जा सकता है। लेखक ने नायक की मौन वाणी का विश्लेषण वैखरी वाणी में ही किया है। नायक के प्रत्येक प्रतिवर्तन में वैखरी वाणी की सहायता से नायक की गुहानिहित तीनों वाणियों का विश्लेषण किया गया है। यह विश्लेषण भाषा में संभव नहीं है। अतः इस विश्लेषण के साथ साथ लेखक ने उन क्षणों की अनुभूतियों को नायक की चेष्टाओं में व्यक्त किया है। ये चेष्टाएँ नायक के गुहानिहित वाणी के तीन भेदों के परिणाम ही हैं। एक प्रकार से ये चेष्टाएँ प्रत्यक्ष जीवन का उपभोग हैं; अनुभूतियों की प्रतिक्रिया है; बाह्य जगत की संवेदनाओं के प्रतिवर्तन हैं। प्रथम संवेदना होगी तो निरुपाधिक होगी और उसके पीछे पुराना इतिहास यदि स्मृति में है तो सोपाधिक होगी। लेखक ने सोपाधिक प्रतिवर्तनों का इतिहास स्मृति रूप में दिया है। इन्हीं के आधार पर नायक के कमरे की वस्तुओं का विस्तृत परिचय मिलता है। उपन्यास में निशि का प्रत्यक्ष जीवन नहीं मिलता। उसे मर कर तीन वर्ष हो गये हैं। उसके सम्बन्ध में जो जानकारी मिलती है, वह नायक एवं अन्य पात्रों के मन में निशि के सम्बन्ध में जो स्मृतियाँ शेष रह गई हैं, उन्हीं के माध्यम से। निशि अमूर्त होनेपर भी नायक के मानस में मूर्त है और साथ ही केवल, दीप्ति एवं बूढे पेण्टर के मानस में भी मूर्त है। निशि की अनुपस्थिति में उसकी उपस्थिति के महत्त्व को आंका गया है और इसीलिए निशि अमूर्त होनेपर भी मूर्त से कम नहीं है। नाईलवैली के वस्तु जगत एवं प्राणीजगत में नायक निशि के साथ गुजारे अपने गत दस वर्षों के

---

१. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—जयशंकर प्रसाद—पृ. ४०

जीवन को याद करता है। उसके विक्षिप्त होन का कारण निशि भी है। विक्षिप्त व्यक्ति का जीवन कटा हुआ और अव्यवस्थित होता है। उसके जीवन में सामान्य जीवन के नहीं असामान्य जीवन के लक्षण मिलते हैं और यही अवस्था उपन्यास के नायक की है। प्रश्न यह है कि नायक विक्षिप्त क्यों हुआ ? इसी के कारणों की मीमांसा में, विश्लेषण में एवं उसका परिणाम दिखाने में, उपन्यास की रचना की गई है और यही उपन्यास का कथ्य है।

उपन्यास में पाये जानेवाले अन्य पात्र नायक की विक्षिप्त अवस्था का विश्लेषण करने में सहायक होते हैं। अत: अन्य पात्रों का इस संदर्भ में परिचय दिया जा रहा है। केवल और दीप्ति दोनों ही पति पत्नी हैं। आरम्भ मे दीप्ति केवल की और आकर्षित होती है और तदनन्तर केवल भी उससे आकर्षित हो जाता है। दोनों का विवाह हो जाता है। बाद में दोनों का ही जीवन के प्रति दृष्टिकोण भिन्न होने के कारण सम्बन्धों में तनाव आ जाता है। तनाव की इस स्थिति में दीप्ति केवल से अलग होकर नाईलवैली से ऊपर वाले भाग में बने मकान में रहती है। यह मकान केवल का है। केवल के पिता ने इसे खरीदा था। केवल इस में पहले रह चुका था। उस समय भी जब निशि जीवित थी। वहीं रहकर उसने निशि को देखा भी था। केवल यह अनुभव करता है कि उसकी लापरवाही के कारण निशि की मृत्यु हुई। निशि की तड़पन को उसने अपनी आंखों से देखा था। केवल की दृष्टि में नायक का जीवन इस प्रकार है। वह दीप्तिसे कहता है... "जिसे तुम अद्वितीय प्रतिभा समझकर पूजती हो... जानती ही वह एक अघखाए फल की तरह इस संसारमें उच्छिष्ट बनकर जी रहा है। उसने निशि की हत्या की है ..उसने अपने साथ विश्वासघात किया है।...जीवन को स्वाभाविक रूप में न भोग पानेवाला 'वह' एक पंगु की तरह जी रहा है...वह केवल आन्दोलित करके छोड़ देनेवाला है। उसने कभी भी जीवन को भोगा ही नहीं...हमेशा उससे कतराता रहा है... मैंने जीवन भोगा है...उससे जितना रस संभव था निचोड़ लिया है...मैं जानता हूँ अनुभूति की गहराइयों कों भोगा कैसे जाता है... वह...वह तो महज कल्पना में जीता है।"[१] केवल का जीवन दीप्ति के शब्दों में— "...फास्ट लाईफ...कठोर कर्कश जीवन, हर चीज एक दौड़ती रील-सी भागती हुई...होटेल, रेस्ट्रां, बार, बाजार, हवा, बादल धुआँ, काजल

---

१. एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज—श्री लक्ष्मीकांत वर्मा पृ. १३७-१३८

कन्धे-से-कन्धे मिलते हुए, पैर-से-पैर भिचते हुए... तेज भागती हुई शकलें, बाब्ड, क्रिस्प, कटे-छंटे, बढ़े-चढ़े, हाथ जो बस पर टंगे हैं, जो किसी के गले में पड़े हैं ... आदि आदि।"[1] ऐसी स्थिति में तनाव आना स्वाभाविक था। दीप्ति अकेली ही पहाड़ वाले मकान में रहती है। केवल भागती दुनिया में जीती है। उसका सम्बन्ध नायक से हो जाता है। नायक से उसकी भेंट सड़क पर हुई थी। वह तराई में अनजान सा पड़ा था। दीप्ति अपनी कार रोककर उसे डाक्टर के पास ले गई और तीन दिनों तक उसका उपचार करती रही। उसने उसे पीना बन्द करने के लिए कहा। वह मौन रूप में ही उत्तर देता रहा। हंस कर या सिर हिलाकर। इसके बाद वह उसके पास आती ही रहती है। उसका यह आना उसकी आदत है। लाख चाहती है कि न आएँ पर विवशता उसे खींच लाती है। वह उसका उपचार करती है। डाक्टर जोशी उसकी देखभाल करने के लिए आते रहता है। वह कुछ सूचनाएँ भी देता रहता है। जैसे निशि की तस्वीर और वे वस्तुएँ हटा दी जाएँ, जिसे देखने से वह परेशान होता है। वह उसे सेंटीमेंटल फूल मानता है। उसके अनुसार दीप्ति भी सेंटीमेंटल फूल है। पहले नायक के साथ के सम्बन्ध को दीप्ति अपवाद मानती थी किन्तु बाद में उसे ऐसा प्रतीत नहीं होता। केवल जब लौटकर आता है, तो उसका मन अब फिर लौटने का नहीं होता। पिछले तीन साल से वह इसी प्रकार का जीवन गुजार रही है। केवल आता है और दीप्ति को सीमा का अतिक्रमण करते हुए देखता है। कहता कुछ नहीं और नाईलवैली से ऊपर के मकान में चला जाता है। दीप्ति इस समय केवल के साथ समझौता नहीं कर सकती किन्तु वह केवल को नकार भी नहीं दे सकती। वह निर्णय करने की स्थिति में नहीं है। दीप्ति का अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। वह अपने को स्थिति पर छोड़ते हुए भी केवल के आगे झुक्ती नहीं। उसमें सहानुभूति का नायक के प्रति अतिरेक हो जाता है और वह उसी भाव से उसके पास शराब की बोतल लेकर जाती है। इधर नायक संघर्षों से मुक्ति का अनुभव करता है। और अपनी जिन्दगी को फिर से व्यवस्थित करता है। वह शराब नहीं पीता। बाहर के शोर को सुनकर, जिसमें वह स्वयं को निमंत्रित होने की ध्वनि का अनुभव करता है; घर से बाहर निकलता है। अनेक प्रकार के दृश्यों को देखते हुए बढ़ता जाता है। और ठोकर खाकर गिर पड़ता है। उठता है फिर बढ़ता है फिर गिर जाता है। उसे दीप्ति घर ले आती है, उपचार होता है। वह फिर

---

१. एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज--श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा--पृ. १३८.

जलप्लावन के दृश्य को देखता है। गूंगी की आवाज से उसे चेतना मिलती है और वह उसकी माँ को बचाने के भाव से नीचे की ओर बढ़ता है। अन्य लोग भी जल प्लावन का शिकार हो रहे थे। मना करने पर भी वह पुकार सुनकर बढ़ता ही जाता है। अपनी शक्ति से खींच कर औरों को बचाता है। इसी प्रयास में वह स्वयं मर जाता है। उसकी लाश भीड़ लेकर आती है। केवल कहने को तो दीप्ति से यह कहकर चला गया था कि वह लौट रहा है किन्तु वह लौटा नहीं था। वह नीचे जाकर तराई की होटल में ठहर गया था। वह जलप्लावन से उसे बचाने का प्रयास भी करता है किन्तु असफल रहता है। वह लौट आता है। दीप्ति उसे मिलती है। किन्तु वह जा चुका था। दीप्ति के हाथ एक रद्दी कागज का टुकड़ा आता है। उस पर लिखी पंक्तियों का भाव ही उसके लिए सहारा रह जाता है।

दीप्ति और केवल दोनों ही अनाम के जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। दीप्ति का सीधा सम्बन्ध है और केवल का इस नाते कि वह दीप्ति का पति है और जीवन की स्वाभाविक और भागती दुनिया के साथ रहनेवाला है। अब नायक के चरित्र का विश्लेषण करें। नायक के सम्बन्ध में यत्र-तत्र जो परिचय मिलता है, वह कुछ इस प्रकार है। वह देश का प्रख्यात विचारक एवं चिन्तक है। अनेक देशों का उसने भ्रमण किया है। उसने बहुत सी पुस्तकें भी लिखीं हैं। उसकी प्रतिभा से निशि प्रभावित होती है। बाद में निशि के साथ उसका विवाह हो जाता है। दोनों पति-पत्नी के रूप में नाईलवैली में दस वर्ष तक जीवन यापन करते हैं। निशि की मृत्यु हो जाती है और उसकी मृत्यु के बाद में तीन वर्ष का जीवन निशि के विरह में विताया गया जीवन है। इसी समय में दीप्ति से उसका सम्बन्ध होता है। उपन्यास में निशि की चौथी वर्षी से तीन दिन का विवरण है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है।

उपन्यास में प्रस्तुत किया गया तीन दिन का जीवन प्रत्यक्ष रूप से नायक का जीवन ही है। यह भी उसकी विक्षिप्त अवस्था का जीवन है। दीप्ति यद्यपि नायक के सदृश विक्षिप्त नहीं है फिर भी उसको अर्धविक्षिप्त कहा जा सकता है। दोनों का ही जीवन कटा हुआ है। कटा हुआ इस अर्थ में कि वर्तमान के साथ अतीत एवं भविष्य की सुसम्बद्ध शृंखला नहीं रह गई है। भविष्य की ओर से सर्वथा उदासीन अथवा हताश है, साथ ही निर्णय लेने की क्षमता नहीं रह गई है। इससे प्रत्यक्ष जीवन के या वर्तमान के क्षण अव्यवस्थित हो गये हैं। जो कुछ सहारा है वह अतीत का है और वह अतीत विशृंखल रूप में आन्दोलित करता रहता है और इसीसे वर्तमान का प्रत्यक्ष क्षण

आन्दोलित हो जाता है । इन आन्दोलित क्षणों की संवेदनाओं का विस्तार उपन्यास में विस्तृत रूप में दिया गया है। ऐसा जीवन बौद्धिक अनुभूतियों का जीवन ही हो सकता है। बौद्धिक अनुभूतियों का जीवन इस अर्थ में कि वर्तमान जीवन के प्रत्यक्ष क्षण, जिनका उपयोग पात्र कर रहा है, वे क्षण विश्लेषणात्मक हो गए हैं। विश्लेषणात्मक अनुभूतियाँ बौद्धिक ही हो सकती हैं। साथ ही ऐसी स्थिति जिसमें निर्णय लेने की क्षमता समाप्त हो जाय, वह स्थिति बौद्धिक अनुभूतियों की स्थिति ही होती है । ऐसा पात्र जिसे अपने कार्यों के प्रति आस्था समाप्त ही जाए या वह असमंजता में क्षणों का विश्लेषण मात्र करता रहे, उसका जीवन शुष्क एवं बौद्धिक मात्र होगा। व्यक्ति विक्षिप्त क्यों होता है ? इसलिए कि वह समझता है कि उसके विचार सर्वसाधारण से भिन्न है और उनको मान्यता नहीं मिल रहीहै। जब तक वह औरों के विचारों का आदर करता रहता है और उन निर्णयों के साथ अपना निर्णय करते हुए सुसम्बद्ध रूप में कार्य करता रहता है, तब तक उसे विक्षिप्त नहीं कहा जायगा किन्तु जब वह दूसरों के विचारों को सुनना ही नहीं चाहता और केवल अपने विचारीं को ही महत्त्वपूर्ण मानने लगता है तो फिर उसे विक्षिप्त कहा जा सकता है। विक्षिप्त या पागल व्यक्ति सामान्य व्यक्ति नहीं असामान्य व्यक्ति होते हैं । उपन्यास का नायक औरों के विचारों को मानता नहीं, उसके अपने स्वतंत्र विचार हैं किन्तु उसकी आस्था स्वयं के विचारों से भी उठ गई है क्योंकि अपने विचार के अनुसार भी वह कुछ भी निश्चित नहीं कर पाता । अब यदि कहें कि उसे अपने विचारों का प्रचार करना चाहिये तो उस ओर से वह सर्वथा निराश हो गया है यहाँ तक कि उसके अनुसार उसकी भाषा उसके विचारों का वहन नहीं कर सकती और इसीलिए वह मौन हो गया है। इस सम्बन्ध में लिखा है— "कहता है दुनिया में उसको भाषा की कमजोरी परेशान कर रही है, उसने एक बार कहा था 'जो कहता है कि वह किसी से प्रेम करता है, वह नाम प्रेम का लेता है, लेकिन उसका आशय प्रेम नहीं होता' वह क्या करे ? क्या कहे ? जानता है कि जब वह कहता है कि उसे भूख लगी है तो उसका आशय केवल भूख नहीं होता, कुछ और भी होता है... ' वही मुख्य होता है, और सब गौण हो जाते हैं ..."[1] इसीलिए उसने बोलना भी छोड़ दिया। अब उसके जीवित रहने का

---

१. एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज-श्री लक्ष्मीकांत वर्मा—पृ ११९

एकमात्र आधार स्नेह मात्र है। वह औरों के स्नेह पर जीवित रह सकता है। जब तक निशि थी उसने अपना सम्पूर्ण स्नेह देकर उसके विचारों को जीवित रखने का प्रयत्न किया। उसकी उपस्थिति में उसने जीवन में जो कुछ आधार पाया उसका मूल्य वह उस समय नहीं कर सका। उसके अभाव में वह उसके मूल्य को पहचानता ह और एक प्रकार से नहीं से उसके जीवन में भटकाव आता है। साल भर तो भटकता रहता हैं और बोलता भी है किन्तु अन्तिम दो वर्षों में बोलना भी बन्द कर देता है। इस जीवन में भी उसे दीप्ति की ओर से निशि सा ही स्नेह मिलता है। केवल से कटी हुई दीप्ति नायक से सम्बन्ध जोड़ती है। दोनों ही पात्रों का जीवन कटा हुआ है। नायक विचारों में जीता है, उसके जीवन में विचार प्रधान है और भाव अनन्तर। ठीक इसके विपरीत दीप्ति भावों में जीती है, उसके जीवन में भाव ही प्रमुख हैं और विचार अनन्तर। ऐसा जीवन जो भावों से कटा हुआ है और विचारों को प्रधानता देता हैं, उसका उदाहरण नायक का चरित्र है और ठीक इसी तरह ऐसा जीवन जो विचारों से कटा हुआ है और भावों को प्रधानता देता है उसका उदाहरण दीप्ति का चरित्र है। उदाहरण के लिए जिस समय नायक बोलता था (उन तीन दिनो में नहीं) उस समय दीप्ति ने अपना आशय नायक के प्रति व्यक्त किया था और नायक ने भी उत्तर मैं अपना आशय व्यक्त किया। — "कभी दीप्ति ने कहा था 'मैं तुम्हें जीना चाहती हूँ' और वह चीख पड़ा था। बोला था, 'मैं तुम्हें नहीं तुम्हारे आयडिया को जीना चाहता हूँ... आई वान्ट टू लिव योर आईडिया ..."[1] इस तरह इस उपन्यास में दोनों ही पात्र ऐसे मिलते हैं, जो कटे हुए हैं। एक भावों से कटा हुआ है और दूसरा विचारों से। विचारों से कटनेवाला और केवल भाव के आधार पर जीनेवाला विक्षिप्त होने पर भी मर नहीं सकता किंतु भावों से कटनेवाला और केवल विचारो में जीनेवाला पात्र जी नहीं सकता। इसीलिए परिणाम में हम देखते हैं कि दीप्ति मरती नहीं और नायक मर जाता है।

विचारों में जीनेवाला पात्र—अपने विचारों में जीनेवाला पात्र—किसी के स्नेह सम्बल से ही जी सकता है। इस स्नेह सम्बल में वह भाव तो औरों से चाहता है किन्तु विचार नहीं। किसी स्नेही के स्नेह को स्वीकार करते हुए भी वह उसके विचारों को अस्वीकार कर देता है। ऐसी स्थिति में वह अपने

---

१. एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज—श्री लक्ष्मीकांत वर्मा पृ. १२०

आसपास मौन वातावरण ही पसंद करेगा । नायक के आसपास का वातावरण मौन ही है । जिस समाज के बीच वह रहता है, वह मौन समाज ही है । वह भावों का आदान प्रदान कर सकता है, विचारों का नहीं। पशु समाज के साथ—जिप्पी, पूसी, खरगोश के बच्चे, गिलहरी—उसका सम्बन्ध इसी प्रकार का है । पशुओं से उसे स्नेह मिलता है और उस स्नेह के आधार पर वह जीता है । बूढ़े पेंटर के कहने पर वह खाता नहीं (पूसी के मरने का उसे दुख था और उसी शोक में वह नहीं खा रहा था) किंतु खरगोश के बच्चों को देखकर —थाली से अनाज के दानों को टूंगसे हुए देखकर—अन्त में प्रसन्न हो जाता है और उसकी इस प्रसन्न मुद्रा को देखकर खरगोश के बच्चों को गोद में लेकर सहलाते देखकर,— गूंगी उसके आगे थाली ले आती है और वह खाने लगता है। पशुओं की तरह उसे गूंगी से एवं दीप्ति से भी स्नेह मिलता है। दोनों के स्नेह को वह मौन भाव से स्वीकार करता है। गूंगी तो उसके साथ कभी तर्क करती ही नहीं क्योंकि वह गूंगी ही है। दीप्ति भी तर्क नहीं करती। वह भी उसके जीवन के साथ समरूप होकर रहती है । वह अपने को उसके प्रति समर्पित कर देती है । नायक सब कुछ पाकर भी तृप्त नहीं होता । दीप्ति आरंभ में उसे अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करती है किन्तु उसकी पीड़ा को समझ एवं उसकी असमर्थता का अनुभव कर स्वयं उसके अनुकूल होती जाती है किन्तु जिस रूप में दीप्ति उसकी ओर अग्रसर होती जाती है, उस रूप में वह उसकी ओर अग्रसर नहीं होता । फल स्वरूप उसके समर्पित भाव को भाव रूप में ग्रहण करते हुए भी वह उसका विश्लेषण करने लगता है । इस विश्लेषण में वह दीप्ति से भी ऊब जाता है । पहले वह विचारों से कटा हुआ था अब भाव से भी कट जाता है । ऐसी स्थिति में रही सही व्यवस्था और बिगड़ जाती है । अब वह अपने को प्रवाह में छोड़ देता है । घर से निकलता है । विभिन्न स्थितियों का अवलोकन करता है । गिर पड़ता है । लौटाया जाता है किन्तु फिर जाता है और फिर तो मर ही जाता है । अन्तिम स्थिति में वह दोनों से कट जाता है, विचारों से भी और भावों से भी। ऐसा व्यक्ति जीवन से ऊबा हुआ ही हो सकता है । केवल ने ठीक ही कहा था—"...दीप्ति मैं नहीं जानता था कि वह अपनी जिन्दगी से इतना ऊब चुका है... इतना थक चुका है...। इतना अर्थहीन अनुभव कर रहा है..." [1] अपने विचारों

---

१. एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज—श्री लक्ष्मीकांत वर्मा पृ. २०१

पर स्वयं उसे आस्था नहीं रही और औरों के द्वारा प्राप्त समर्पित भावों से भी वह ऊब गया। अन्त वही हुआ, जो होना था। वह मर गया।

उपन्यास का नाम 'एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज' रखा गया है। इसमें यह तो देखा गया कि उपन्यास के पात्रों का जीवन प्रमुख दोनों पात्रों का जीवन (नायक और दीप्ति का जीवन)--कटा हुआ है। प्रश्न होगा कि कटा हुआ कागज क्यों कहा गया ? नायक के जीने का आधार नायक के विचार हैं। ये विचार उसे कहाँ से प्राप्त होते हैं ? पुस्तकों से। वह पुस्तकें पढ़ता है। किन्तु इन पढ़ी हुई पुस्तकों में वह सर्वत्र ही सहमत है या होगा ऐसी बात नहीं। वह अपने चिन्तन एवं विचारों के अनुकूल पुस्तकों के कुछ (कटे हुए) भाग को कागजों पर नोट कर लेता। उन विचारों को मस्तिष्क में दोहराता एवं उसी में जीता। अत: उसका जीवन बाह्य रूप से कटा हुआ, कटे हुए कागजों में जीनेवाला जीवन है। कटे हुए कागजों में जीनेवाला जीवन इस अर्थ में कि उन विचारों में भी वह हर क्षण नहीं जीता। जब उसको जो विचार पसन्द आ जाता उसे वह कागज पर लिख लेता। किन्तु जब उससे ऊब जाता तो उसे रद्दी में फेंक देता। प्रमाण यह है कि दीप्ति को अन्त में एक रद्दी कागज उसके कमरे में मिलता है और उस पर लिखी हुई पंक्तियों में जो विचार थे, उन विचारों में कभी वह जीवित रहा है। उसका जीवन कटे हुवे कागजों में, जो उसके कमरे में यत्र-तत्र बिखरे थे और जिन पर उसने कुछ लिख कर फेंक दिया है, निहित है। इसीलिये उपन्यास का नाम 'कटी हुई जिन्दगी' के साथ साथ 'कटा हुआ कागज' भी सार्थक है।

अब अन्त में यह देखना है कि इस उपन्यास का नायक उपन्यासकार ने अनाम रखते हुए यह कहा कि नायक के व्यक्तित्व में हम सबके व्यक्तित्वों का अंश है और उस अर्थ में हम किसी न किसी क्षण जीवित रहते हैं। अत: नाम न देकर उसे अनाम रखाना अच्छा माना गया है। अमूर्त रूप में नायक के व्यक्तित्व का अंश हम सब में है। इस अर्थ में कि आज का व्यक्ति-ज्ञान प्रसार के कारण—चिन्तनशील हो गया है। अत: वह वर्तमान के क्षणों का सही अर्थों में भोग नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में उसका जीवन शुष्क होता जा रहा है। नायक महात्मा भी नहीं और पशु भी नहीं। वह मानव है। इसी अर्थ में वह जीता है और क्षणों को भोगता है। आज का चिन्तनशील प्राणी भी इसी रूप में जी रहा है। लेखक ने यह कहा है कि हम अपने

जीवन के किसी न किसी क्षण उस पात्र के व्यक्तित्व के सदृश जीते हैं और इस अर्थ में लेखक का कहना ठीक है। अन्त में कटे हुए कागज में लिखी पंक्तियों में जो भाव है, वह मानो इस उपन्यास का निष्कर्ष है और वह यह कि नर, नर है, नारी, नारी है और बच्चा, बच्चा है। इससे न कम न अधिक। हम मानव हैं, यह हम अनुभव कर सकें, यही हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

● ●

(नई धारा, पटना, अप्रल–मई १९६८ में प्रकाशित)

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना | सोया हुआ जल

पात्रों का समकालवर्तित्व जीवन
और क्षणों का विस्तार

● पात्रों का समकालवर्तित्व जीवन और क्षणों का विस्तार

'सोया हुआ जल' सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का मौलिक लघु उपन्यास है। यह एक नये ढंग का, अपने आप में अनूठा, नये शिल्प से सजा, विभिन्न पात्रों का समकालवर्तित्व (Simultaneity) मनस्थितियों का विश्लेषण करनेवाला, पात्रों के बाह्य व्यवहारों और उनके भीतर की प्यास को व्यक्त करनेवाला और यह सब कुछ सांकेतिक या प्रतीकात्मक पद्धति से लिखा हुआ उपन्यास है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में यह एक नया प्रयोग है। नीचे इसका अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

ढांचा या संरचना

उपन्यास का कथानक बहुत छोटा है। इसमें यात्रिशालाकी एक रात्रि का वर्णन है। बीमार बूढा पहरेदार यात्रिशाला में पहरा दे रहा है। वह बेंच पर बैठे बैठे उंघते रहता है। बीच में चक्कर काटता हुआ कमरों के पास से गुजरता है। वह यात्रिशाला के विभिन्न कमरों से और पास के ताल से कुछ स्फुट चर्चाएँ सुनता है। इसी से उपन्यास का ढांचा बनता है। उपन्यास में अलग अलग शीर्षक दिए गए हैं। हरी रोशनी, कमरा नं०२; कमरा नं०७, कमरा नं०११, ताल पर, सीढ़ियों पर आदि शीर्षक हैं। बूढा पहरेदार जो बातचीत जिस स्थान से सुनता है, उसे उसी शीर्षक के अन्तर्गत लिखा गया है। बूढा पहरेदार बीमार है। जब सबेरा होता है, वह मर जाता है। किन्तु उसकी आत्मा ने जो कुछ अवलोकन किया उसका यथार्थ चित्र उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। उसकी सहायता के लिए काले पंखों वाला दूत उसके पास आता है और पात्रों के यथार्थ जगत का ज्ञान उसे कराता है। दिन निकलते ही उपन्यास समाप्त हो जाता है।

कथानक

यात्रिशाला में 'हरी रोशनी' वाले कमरे में पति–पत्नी राजेश और विभा ठहरे हुए हैं। इसी तरह कमरा नं. २ में प्रेमी प्रेमिका–किशोर और रतना हैं। कमरा नं. ७ में शराबी दिनेश और कमरा नं. ११ में साम्यवादी जननायक प्रकाश ठहरे हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मौजी, आवारा और बेकार लोग भी यात्रिशाला में हैं। संभवत: ये यात्रिशाला के उस भाग में ठहरे हुए हैं जो सर्वसाधारण के लिए हैं। इनके कमरों का निर्देश नहीं दिया गया है। इन पात्रों के आपसी सम्बन्धों के आधार पर जो कथानक बनता है, वह इस प्रकार है। राजेश और किशोर दोनों भाई हैं। राजेश बड़ा है और किशोर छोटा। किशोर कानपुर के एक धनवान की पुत्री रतना के साथ घर से भाग जाता है। किशोर गरीब है। रतना धन देती है। ये रुपए अब समाप्त हो गए हैं। इसलिए किशोर परेशान है। वह वहाँ कमरा नं. २ में अपनी प्रेमिका के साथ है। राजेश अपने भाई की खोज में है। वह अपनी पत्नी विभा के साथ दिन भर खोज खबर लेने पर रात में उसी यात्रिशाला में हरी रोशनी–वाले कमरे में रहता है। शराबी दिनेश किशोर का मित्र है। वह इन दोनों प्रेमी प्रेमिकाओं से खूब परिचित है। प्रकाश दिनेश का मित्र है, उपन्यास के मुख्य पात्र यही हैं। अब इन पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ या उनका मानसिक विश्लेषण नीचे किया जा रहा है।

राजेश और विभा

राजेश दिन भर किशोर को खोजने के बाद थककर लौट रहा है। विभा उसके साथ है। वह परेशान है और जल्द लौटना चाहता है। पत्नी फिर भी खोजने का आग्रह करना चाहती है किन्तु वह कह नहीं पाती। राजेश की खीज इस बात से व्यक्त होती है—"जो पत्थरों में चलने पर ही आमादा हो उसे ठोकरें लगेंगी ही।" ये वाक्य किशोर के लिए ही कहे गए हैं। विभा उसे आराम करने के लिए कहती है किन्तु वह अपना कार्य करना चाहता है। उसे कुछ आवश्यक पत्रों के उत्तर लिखने हैं। विभा मानती नहीं। वह उसे सोने के लिए मजबूर कर देती है। हरी रोशनी बुझ जाती है। विभा सो जाती है किन्तु उसकी प्यासी आत्मा कहीं और भटकती है। इसका वर्णन स्वप्न–दृश्य शीर्षक के अन्तर्गत होता है। विभा अपने प्रेमी मोहन के साथ है। वह चित्रकार है ... गरीब है ... अपने को विभा के योग्य नहीं समझता। विभा उसके साथ नाव में घूमती है। मोहन नाव

किनारे लगाता है और विभा को उतरने के लिए कहता है किन्तु वह उत-रना नहीं चाहती। मोहन नदी में कूदने का भय दिखाता है। बचाओ... बचाओ...विभा चीखती है। राजेश पत्र लिख रहा था। विभा को इस प्रकार स्वप्न में भयभीत देखकर वह उसे सांत्वना देता है। विभा जागकर देखती है कि राजेश कार्य कर रहा है। वह फिर डांटती है। राजेश मजबूर होकर हरी रोशनी बुझाकर सो जाता है। कुछ देर बाद राजेश उठकर मेज पर से सिगारेट लेकर जलाता है और फिर लेट जाता है। वह रोशनी जलाता और बुझाता है। विभा के स्वप्न में ही मोहन के प्रति प्यार के शब्द कहती रहती है—"तुम बुरा मान गये— पता नहीं क्यों जी घबरा रहा है... मैं असहाय हूँ -- आदि।" राजेश उन शब्दों को अपने प्रति ही समझता है। उसे चुप करता हुआ सो जाता है। खामोशी हो जाती है। विभा फिर स्वप्न देखती है... मोहन चित्र लिए खड़ा है। दोनों में प्रेमभरी बातें होती हैं और अन्त में वे एक छोटी बैलगाड़ी में बैठकर चले जाते हैं। ठीक इसी समय विभा की बगल में लेटा हुआ राजेश स्वप्न देखता है -- वह अपनी प्रेमिका--गोरे रंगकी दुबली पतली लड़की--के साथ प्रेमालाप कर रहा है। वे दोनों जहाज के डेकपर आलिंगनबद्ध खड़े रहते हैं। विभा दूर तटपर आँखों में आँसू भरे उन्हें एक टक निहार रही है। बाद में वे दोनों एक डोंगी खेते हुए दिखाई देते हैं। विभा का मृत शरीर राजेश को दिखलाई देता है। दूसरी ओर राजेश के बगल में लेटी हुई विभा देखती है... किसी छोटी मैदानी नदी के किनारे आम की घनी छाया में विभा मोहन के साथ पड़ी हुई है। दोनों में प्रेमालाप होता है। इसी तरह दोनों एक ही समय में पास पास पार्थिव रूप में सोते हुए भी दूर भटक रहे हैं। दोनों एक दूसरे से अत्यन्त दूर होते हुए भी एक दूसरे के पास पास सो रहे हैं।

किशोर और रतना

किशोर मैनेजर के रजिस्टर में दस्तखत करते हुए यह देख लेता है कि उसके भाई-भाभी उसी यात्रिशाला में टिके हुए हैं। वह घबरा जाता है और अपनी प्रेमिका रतना से अपनी कठिनाई को कहता है। रतना फिर लौट चलने के लिये कहती है। उसे अपने पिता पर विश्वास है कि वे उसे क्षमा कर देंगे क्योंकि वे उसे बहुत चाहते हैं। किन्तु किशोर अपने भाई से डरा हुआ है। रतना सोने का उपक्रम करती है। किशोर मेज पर हाथों में सिर पकड़ कर बैठ जाता है। रतना जब उंघने लगती है तो वह उठकर अपने मित्र दिनेश के पास (कमरा नं. ७) जाता है। वहाँ से दोनों ताल पर जाते हैं।

किशोर से दिनेश पीने के लिये शराब की बोतल ले लेता ह। दिनेश, किशोर को रतना से विवाह कर लेने के लिए कहता है। उसका तर्क यह है कि—"जो औरत मुहब्बत पर खेल सकती है वह बहुत दिलेर होती है और औरतों को दिलेरी बहुत खतरनाक होती है क्यों कि ये जितनी मजबूती से मुहब्बत करती हैं उतनी ही मजबूती से नफरत करती हैं"। किन्तु किशोर पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह विवाह के लिए तैयार नहीं होता। और साफ कह देता है—"मुझे तुम्हारे उपदेश की जरूरत नहीं है। मुझे कल सूरज निकलने से पहले ही यहाँ से हटना है। इसका सारा इंतजाम तुम्हें करना होगा।" बाद में वह अपने कमरे की ओर चला जाता है। किशोर जब दिनेश के पास चला गया था। कमरे में रतना नींद में ही बडबड़ाती है... तुम परेशान क्यों होते हो? कल कान के इयरिंग बेच देना। कुछ दिन के लिए काम चलेगा...आदि आदि। सार यह है कि रतना के मन में घर लौटनेकी इच्छा नहीं है। वह किशोर से प्रेम करती है और हर कीमत पर उसके साथ रहना चाहती है। किशोर जब लौट आता है, रतना जाग जाती है। किशोर अपनी कठिनाई को फिर दुहराता है। अपनी गरीबी पर रोता है। रतना का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा। वह तो अपने पिताकी दुलारी है, किन्तु उसके भाई-भाभी......और फिर वह गरीब हैं। रतना भी अपनी सफाई देती है और अन्तमें स्पष्ट रूप से वह कह देती है—"अच्छा हुआ यह अभी से स्पष्ट नजर आ गया। अभी से यह हाल है तो आगे क्या होगा? तुमने मुझे धोखा दिया है, गहरा धोखा दिया।" बहस के बाद रोशनी बुझ जाती है। दोनों सो जाते हैं। कुछ देर बाद रतना ताल की सीढ़ियों पर दिनेश के पास जाती है। उससे वह कहती है कि वह उसी समय कानपुर जाना चाहती है। दिनेश उसे रोकता है किन्तु वह दृढ़ है। कहती है—"दिनेश, तुम मुझे फौरन यहाँ से हटा ले चलो। जितने रुपए कहोगे मैं तुम्हें दे दूँगी।" किन्तु दिनेश साफ कहता है कि उसकी प्यास रुपयों से नहीं बुझेगी। वह कुछ और चाहता है। रतना फिर भी दृढ़ रहती है और सामान ले आनेके लिये लौट जाती है। दिनेश वहीं ताल पर पड़ा रहता है। इधर जब रतना दिनेश के पास चली गई थी। कमरे में किशोर स्वप्न देखता है—उसका विवाह रतना से हो रहा है। बाजे बज रहे हैं। भीड़ है। किन्तु एकाएक रतना भीड़ में खो जाती है और किशोर अकेला रह जाता है। वह सिसकियाँ भरता है। विभा उसे समझा रही है किशोर सड़क की पटरियों पर घूमते हुए देखता है, रतना नीला ब्यूक में किसीके साथ बातें करती चली जाती है। अचानक किशोर देखता है कि राजेश और विभा तमाम सामान

लादे चले जा रहे हैं। वह चिल्लाता है। रिक्शे से विभा का हाथ पकड़ कर खींचता है। राजेश क्रोध में चला जाता है। किशोर मजबूती से हाथ पकड़ता है। आँख उठाकर देखता है कि वह रतना का हाथ पकड़े हुए हैं। फिर वह तन्द्रा में राजेश की आवाज सुनता है—"रतना से विवाह करने का अर्थ हैं किशोर का मेरा सम्बन्ध विच्छेद।" किशोर जब इस तरह के स्वप्न में व्यस्त रहता है रतना अटैची लिए ताल पर दिनेश के पास पहुँचती है और कहती है कि--"उठो मैं आ गई।" दिनेश उसे साफ लौट जाने के लिए कह देता है। रतना इसे अपना अपमान समझती है। दिनेश का स्पष्ट उत्तर है--"जो प्रेम का अपमान कर सकता है, जो नारीत्व का अपमान कर सकता है, जो एक सरल निश्चल हृदय का अपमान कर सकता है, उसका अपमान करना कोई गुनाह नहीं है, देवीजी।" रतना को विवश होकर लौटना पड़ता है। वह फिर कमरा नं. २ में लौट आती है और सो जाती है। रतना स्वप्न देखती है...वह ट्रेन पर बैठकर जा रही है। दिनेश उसे रोक रहा है। रतना को अपने पिता गार्ड के रूप में दिखाई देते हैं। वे सीटी बजाते हैं। ट्रेन चल पड़ती है। दिनेश का अंग अंग कट जाता है। वह घर पहुँचती है, पितासे मिलती है। किशोर जेलखाने में है। वह जाकर उससे लिपटती है और पिता से कहती है कि "मैं किशोर के बिना नहीं रह सकती, बाबूजी।" फिर दूसरा दृश्य.. बाबूजी हंस रहे हैं। दावत हो रही है। हजारों मोटरें खड़ी हैं। रतना मामूली अंगूठी उतार कर फेंकती हैं। किशोर हीरे की अंगूठी देता हैं। इस तरह रतना और किशोर स्वप्नलोक में विचरते हैं। जब वे जागते हैं तो झगड़ते हैं। एक दूसरे को छोड़ना चाहते हैं। किशोर विवाह से साफ इनकार कर देता है और इसी तरह रतना भी उसी रात कानपुर लौट जाना चाहती है किन्तु वास्तविकता यह है कि दोनों ही स्वप्न में एक दूसरे के साथ विवाह करते हुए अनुभव करते हैं। दोनों के संस्कारों में अन्तर है अतः चाहने पर भी उनके संस्कार उनको विवाह का पूर्ण आनन्द नहीं लेने देते। रतना उसे अपने संस्कारों के साथ बांधना चाहती है और किशोर को अपनी गरीबी का भय है, भाई—भाभी का भय हैं।

राजेश और विभा पति-पत्नी के रूप में एक दूसरे को चाहते हुए दिखाय गये हैं। वे दोनों एक दूसरे को चाहते हैं। उनके आपसी व्यवहार में माधुर्य है। किन्तु स्वप्न में वे एक दूसरे से बहुत दूर रहते हैं। अन्तश्चेतन में वे दूसरों को चाहते रहते हैं। ठीक इसके विपरीत किशोर और रतना झगड़ते हैं और दोनों ही दिनेश से साफ कह देते हैं कि वे विवाह नहीं करना चाहते

किन्तु अपने अन्तश्चेतन में वे एक दूसरे को बहुत चाहते हैं और दोनों को अपने अपने संस्कारों और परिवेश का भय है जो उन्हें मिलने नहीं देता।

प्रकाश

प्रकाश कमरा नं. ११ में ठहरा हुआ है। इस कमरे से पहरेदार जो आवाजें सुनता है, वे साम्यवाद सम्बन्धी हैं। इस कमरे की याद आते ही पहरेदार की आँखों में एक लाश घूम जाती है ... तात्पर्य यह कमरा साम्यवादियों का अड्डा है और साम्यवादी अपने सिद्धान्तों के लिये हत्या करना मामूली बात समझते हैं। उस कमरे से पहरेदार सुनता है — "भीतर से बदलने का नारा बुर्जुआ है। इसकी सृष्टि पूंजीवादी सभ्यता ने इसलिये की है ताकि आदमी बाहर से आँख मीचे रहे और वे उसे आराम से चूस सकें ..." पहरेदार आगे बढ़ जाता है। दिनेश ताल से कमरे की ओर लौटते हुए कमरा नं. ११ पर रुककर अपने मित्र प्रकाश से कहता है कि ... "तुम्हारी जनक्रान्ति में कितनी शराब की बोतलें खर्च हुई थीं? ..." उसे उत्तर मिलता है कि जनक्रान्ति सफल होने पर उसे खूब पीने मिलेगी। दिनेश अपने कमरे में चला जाता है। तारवाला प्रकाशबाबू का कमरा नं. ११ खोजता हुआ आता है। प्रकाश को सूचना मिलती है कि "पार्टी ऑफिस में किसीने आग लगा दी है। प्रकाश फौरन जाना चाहता है। किन्तु पास में धन के अभाव का अनुभव करता है। साथियों से व्यक्तिगत रूप में धन माँगता है। एक साथी का उत्तर है– 'अच्छा, आज मुझे मालूम हुआ कि पार्टी के अतिरिक्त भी तुम्हारी कोई व्यक्तिगत हैसियत है।' निराश होकर वह दिनेशके पास जाता है। दिनेश उसे सरल उपाय बताता है। हत्या —— कमरा नं. २ में उसके मित्र की प्रेयसी रतना एक पूँजीपतिकी लड़की है। दस बारह सौ के गहने उसके पास हैं। अधिक की आवश्यकता हो तो लड़की के लालच से उसके बाप से रुपये ऐंठे जा सकते हैं। प्रकाश तैयार हो जाता है। किन्तु दिनेश कहता है कि उससे पूछे बिना कुछ न किया जाय। उसके जाते ही दिनेश मुस्कुराता है और सम्पूर्ण घृणा से कहता है —— नीच। प्रकाश लौटकर अपने कमरे में सो जाता है। स्वप्न में वह देखता है ... सफलता ... क्रान्ति के नारे ... एक एकान्त निर्झर के किनारे बैठकर वह छुरे का ताजा खून धो रहा है ... सफलता ... क्रान्तिके नारे ... लाल झण्डे लहरा रहे हैं। खुली सजी हुई जीप पर वह फौज की सलामी लेता हुआ जा रहा है। अचानक जीप रुकती है। सामने रतना का रक्तस्नात शव। उसके होंठ हिल रहे हैं। वह उसे रोकने लिये छुरे का प्रयोग करता है किन्तु होठों का हिलना बन्द नहीं होता। दूर से दिनेश के कहकहों के साथ आवाज

सुनता ह ... आवाज खत्म कर सकते हो लेकिन य हिलते हुए होंठ नहीं रोक सकते । और यह हिलते हुए होंठ एक दिन दूसरी क्रान्ति को जन्म देंगे जिसका आधार करुणा पर, संवेदना पर और मानवता पर होगा । तुम्हारा युग शीघ्र समाप्त हो जायगा । प्रकाश काँपता है । प्रकाश वास्तव में अपने कमरे में ही हैं किन्तु उसकी प्यासी आत्मा स्वप्न में भटकती रहती है ।

दिनेश

दिनेश का उल्लेख किशोर, रतना और प्रकाश के साथ हो गया है। वह स्वप्न आदि कुछ नहीं देखता। पूरा यथार्थवादी है। किशोर, रतना और प्रकाश को वह खूब जानता है। शराबी की मस्ती उसके जीवन में है। साम्यवादियों से भी वह यही चाहता है कि उसे शराब उनके शासन में भी मिलती रहे उसके भीतर कोई द्वन्द्व नहीं है। भीतर बाहर एक है। उपन्यास में नग्न–सत्य कहनेवाला पात्र यही है।

यात्रिशाला के अन्य पात्र

अन्य पात्रों में मौजी, आवारा और कुछ बकार लोग हैं। ये ताश खेलते हैं। गपशप करते हैं। इनकी उड़ती आवाजें भी पहरेदार के कानों में पड़ती हैं। जो पात्र जिस प्यास को लिए सो जाता है, उसीको वह स्वप्न में देखता है। जो रायल होटल का नाम लेते लेते भूखे सो गए, वे स्वप्नमें अपने को रायल होटल में देखते हैं। जो बेकार ताश खेलते हुए सो जाते हैं वे स्वप्न में नियुक्ति–पत्र पाने पर प्रसन्न होते हैं। इसी तरह मौजी पात्र अपने अपने अरमानों को स्वप्नमें तृप्त कर लेते हैं।

उपन्यास का शिल्प

चूँकि उपन्यासकार सभी पात्रों का समकालवर्ती घटित होनेवाला उनका बाह्य और भीतरी रूप प्रस्तुत करना चाहता है अतः उसे उपन्यास में नये शिल्पविधान को अपनाना पड़ा है। बूढ़ा पहारेदार वास्तव में वह माध्यम है जिसके सहारे सारे पात्रों का सूत्र आपस में जोंड़ा गया हैं। किन्तु बूढ़ा पहरेदार जो कुछ सुनता है वह तो पात्रों का बाह्य व्यक्तित्व ही है। उनकी पात्रों की प्यासी आत्माए जहाँ भटकती रहती हैं, उसको स्पष्ट करने के लिए लेखक ने काले पंखोंवाले दूत का उपयोग किया है। वह बूढ़ा पहरेदार जब झपकी लेता है तो उसके पास आकर उससे कहता है––

"मैं रोज आता हूँ लेकिन तुमसे बिना मिले चला जाता था। आज तुम्हें बीमार देखकर तुम्हारे पास आ गया।"

"तुम यहाँ रोज किसलिए आते हो ?"

"प्यासी आत्माओं की शान्ति के लिए। जागता हुआ आदमी अपने में छल करता है, अपने को धोखा देता है। अपने को हजार बन्धनों में बाँधता है, हजारों नियमों में कसता है। लेकिन सो जाने पर नियमों और बन्धनों की दीवारें टूट जाती हैं, छल और धोखे की परतें हट जाती हैं फिर उसकी वास्तविक इच्छाओं की तृप्ति करता हूं। मैं स्वप्न हूँ। जागने पर जिसे जो कुछ नहीं मिलता नींद में उसे सब देता हूं।"

—इस तरह स्वप्न–दृश्यों के माध्यम से लेखक ने पात्रों की भीतर की प्यास को तृप्त कराया है।

उपन्यास के शिल्प में एक और नवीनता यह है कि यह नाटकीय पद्धति में लिखा गया है। कथानक का विकास संवादों के द्वारा ही होता है। स्वप्न–दृश्यों को यदि छोड़ दें तो बाकी का सारा अंश नाटकीय ही है। क्योंकि पहरेदार पात्रों की बातचीत को अपने कानों से सुनता है। उपन्यासकार अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। स्वप्न–दृश्यों में भी प्रायः संवाद ही है। रूप–विधान की दृष्टि से यह नाटक और उपन्यास के बीच की चीज है। थोडे बहुत हेरफेर से इसे सफल रेडिओ रूपक में परिवर्तित किया जा सकता है।

लेखक ने समय के अनुसार वातावरण का निर्माण बड़ी कुशलता से किया है। रात की खामोशी का वातावरण और उस समय सुनाई देनेवाली बातचीत में कहनेवाले स्वरों के उतार चढ़ाव का वर्णन बड़ी सफलता से उपन्यास में किया गया है। एक उदाहरण

"एक क्षण को विभा के कमरे की बिजली फिर जली और बुझ गई इसी बीच राजेश ने मेजपर से सिगरेट उठायी और उसे सुलगाकर फिर लेट गया। पहरेदार का ध्यान अचानक इधर बँट गया।"

"तुम बुरा मान गये—पता नहीं .. आदि आदि ......विभा की भर्राई हुई आवाज। उत्तर में राजेश का धीमा स्वर।

"नहीं"—एक तुनुक भरी आवाज।

फिर खामोशी। अथाह, गहरी खामोशी।

इसी तरह प्रात:काल के वातावरण का शब्द चित्र--

"चिड़ियाँ चहकीं। दूर मुर्गा बोला। चारका घंटा बजा। अंधेरा सिमटने लगा ताल का सोया हुआ जल जाग उठा। काली अंधेरी परछाई, तालकी सतह पर रेंगती हुई फिर लौट गई।"

उपन्यास को पढ़ते समय यह प्रतीत होता है कि कलाकार ने अनावश्यक शब्दों का प्रयोग कहीं नहीं किया है। हर शब्द सार्थक, संदर्भ से युक्त और प्रभावशाली है। वाक्य छोटे छोटे हैं। बोलचाल के हैं। इस पर भी वातावरण के निर्माण में बडे सहायक हैं। पात्र जो कुछ कहता है उसकी आवाज रात के वातावरण में या सन्नाटे में उसके व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखते हुए किस प्रकार हो सकती है, उसे कलाकार ने बड़ी सूक्ष्मता से दिखाने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए--

"थ्री क्लब्स" एक भारी आवाज।

"फोर डायमण्ड्स।" एक और भारी आवाज।

"सुन तो लो मेरा अफसाना... ..." गला दबाकर एक भोंडे खिंचाव के साथ

"लेकिन मोटी है। मोटी लडकियाँ... ..." एक क्षणकी खामोशी, फिर दबी हुई खिलखिलाहट।

बूढ़े के मरने पर विभिन्न व्यक्ति विभिन्न रूप से अपनी बात कहते हैं। किन्तु वे जो कुछ कहते हैं उसके साथ उनकी आवाज में जो व्यक्तित्व उभरता है उसका ध्वनिचित्र देखिए :-

"काफी दिनों तक यात्रिशाला की सेवा की इसने"—एक भौंडी आवाज।

"बूढेने काफी उम्र पाई थी—आज चल बसा।" —एक भारी आवाज।

"रात भर खाँसता रहा"—एक तेज आवाज।

"अच्छी पहरेदारी की। इतना कराहा कि नींद हराम कर दी।" एक भर्राई हुई आवाज।

"शायद साँस चल रही है।"—एक करुणा भरी आवाज।

"अब क्या बचेगा।"—एक दर्द भरी आवाज।

इन वाक्यों के उच्चारण में ध्वनि सम्बन्धी जो विशेषण दिए गये हैं वे ध्वनिचित्र और पात्रों की मनःस्थितियों को व्यक्त करने में पूर्ण सक्षम हैं।

यह उपन्यास सिनेरिओ–टेकनिक से लिखा गया है। "इस टकनिक की विशेषता यह है कि इससे कई व्यक्तियों के भावों, विचारों और कार्यों यहाँ तक कि एक ही व्यक्ति के विभिन्न भावों और मनस्थितिओं का समकालवर्तित्व (Simultaneity) दिखलाया जा सकता है।"[1] इस दृष्टि से यह उपन्यास अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल है।

प्रतीकात्मता

श्री ब्रजविलास श्रीवास्तव ने इसे प्रतीकात्मक उपन्यास कहा ह। उनके अनुसार—"यात्रिशाला शब्द सोद्देश्य रखा गया है, वह इस संसार का प्रतीक है जिसमें नियत समय के निवास के लिए यात्रि–जीव रहते हैं। उन सभी यात्रि–जीवों की आत्माएँ प्यासी हैं। लेकिन कहना चाहता है कि सारी अशान्ति, सम्पूर्ण विश्रृंखलता (Chaos) के मूल में यह आन्तरिक प्यास है। मानव की अतृप्त आकांक्षाएं और वासनाएं हैं। 'सोया हुआ जल' अन्तश्चेतन में सोई हुई आन्तरिक प्यास का प्रतीक है। जर्जर मानवता अथवा मनुष्य को जाग्रत और सावधान रहने के लिए सचेत करने वाली उच्च मानवीय चेतना का प्रतीक है—बूढा पहरेदार, जो बीमार है, अफीम खाकर पड़ा हुआ है और अन्त में मर जाता है।[2]" इसी तरह सबेरा होने पर जो तीन स्वर सुनाई देते हैं उन्हें लेखक का उद्देश्य मान लिया जा सकता है। "सोया हुआ जल" को अन्तश्चेतन में सोई हुई आन्तरिक प्यास कहना ठीक ही है क्यों कि ताल के अन्तराल को जानना सरल नहीं है। उसको वह काले पंखोंवाला दूत ही जान सकता है। स्वयं लेखक ने "अन्तराल" शीर्षकों में बूढ़ा जब झपकी लेता रहता है तो उस समय काले पंखोंवाला दूत

---

१. आलोचना—१७, हिन्दी उपन्यास में नये प्रयोग–लेखक–श्री ब्रजविलास श्रीवास्तव—पृ. ४३

२. –वही–पृ.—४३.

के माध्यम से बूढ़े पहरेदार को पात्रों की आत्माओं की प्यास की जानकारी कराता है। जैसे :—

> "यह सब क्या है ?" उसने पूछा।
>
> "क्या तुम नहीं समझ पा रहे हो ?"
>
> "नहीं।"
>
> "कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनमें शिशुभाव प्रबल रहता है। विभा किशोर के शिशुत्व की तृप्ति है। उसे वह नहीं छोड़ सकता। और रतना से विवाह का अर्थ है प्रिया को छोड़ना, उसे छोड़ना।"

ताल का 'सोया हुआ जल' जब जागता है तो सवेरा होता है। काली अंधेरी परछाई जब तालकी सतह पर रेंगती हुई लौट जाती है तो नये सबेरे और नये जीवन की सूचना मिलती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को भीतर से बदलना चाहिये। भीतर से बदलना सोये हुए जल के जागने का प्रतीक है। बूढ़ा पहरेदार जर्जर मानवता का प्रतीक है। वह अपने वास्तविक स्वरूप को अपनी आँखों देख रहा है। उसका मरना जर्जर मानवताका मरना है। उसके मरने पर ही नये सबेरे की कल्पना की जा सकती है।

उपन्यास का उद्देश्य

अज्ञेय ने सर्वेश्वरदयाल के सम्बध में लिखा है-"कहानियों में भी कविता की भान्ति सर्वेश्वर 'जो दीखता है' उसके पीछे 'जो है' उससे व्यस्त हैं और उसे उभार अथवा उघाड़कर सामनें लाना चाहते हैं।"[1] 'सोया हुआ जल' में भी लेखक का यही उद्देश्य रहा है। लेखक ने भीतर से बदलने पर जोर दिया है। उपन्यास के अन्त में जब सबेरा होता है और काली अंधेरी परछाई तालकी सतह पर रेंगती हुई फिर लौट जाती है। उस समय तीन आवाजें सुनाई देती हैं। वे इस प्रकार हैं :—

"बाह्य परिस्थितियों के ही बदलने से काम नहीं चलेगा, आदमी को भीतर से भी बदलना पड़ेगा।" एक भारी आवाज।

---

१. काठ की घाटियाँ—अज्ञेय की भूमिका से—पृ. ८

" नया सबेरा आ रहा है, नयी रोशनी आवेगी, नयी जिन्दगी आवेगी उसे कोई रोक नहीं सकता । " दूसरीं एक परिचित आवाज ।

" निश्चय ही । लेकिन उसका आधार इन्सानियत पर होगा, करुणा और संवेदना पर होगा । "

यही उपन्यासकार का स्वप्न प्रतीत होता है । वह इसी प्रकार के भविष्य की कल्पना करता है ।

● ●

निर्मल वर्मा | वे दिन

संवेदना का काल विस्तार

संवेदना का काल विस्तार

निर्मल वर्मा का 'वे दिन' उपन्यास हिन्दी साहित्य में अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। आज के युग की संवेदना, पीड़ा, अलगाव की अनुभूति, अतीत से कटकर जीने की समस्या, वर्तमान को सब कुछ मानने की तीव्र लालसा, अजनबियों के बीच का जीवन, आदि अनेक आधुनिक जीवन के आयामों का दर्शन इस उपन्यास में होता है। व्यक्ति में खालीपन होता है अर्थात् वह सब ओर से कटा हुआ होता है। ऐसी स्थिति में वह अपने जीवन को एक प्रवाह में छोड़ देता है। ऐसा प्रवाह जिसे वह पूर्णतः नहीं जानता। ऐसे जीवन की झलक इस उपन्यास में देखने मिलती है। सब से बड़ी बात और विशेषता इस उपन्यास की यह है कि इसमें जीवन का बिंब जीते हुए आया है। इस उपन्यास के शिल्प एवं वस्तु दोनों का विश्लेषण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

पहले विषय-वस्तु को देखें। इस उपन्यास का कथा-क्षत्र प्राग शहर है। इसके पात्र विदेशी है, स्थान विदेशी हैं, संस्कृति एवं सभ्यता विदेशी है। भारतीय पात्र एक है और वही इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। कथा अपने आप में बहुत छोटी है। कथा का वैसे विशेष महत्त्व नहीं है। कहने के लिए कथा इतनी है कि प्राग के हास्टेल में रहनेवाले भारतीय विद्यार्थी को क्रिसमस की छुट्टियों में वहाँ की टूरिस्ट एजेंसी से दुभाषिए का काम मिलता है। आस्ट्रिया की (विएना की) एक महिला जो जर्मन भाषा एवं अंगरेजी जानती है (चेक नहीं जानती) प्राग में घूमते समय एक ऐसे दुभाषिए को चाहती है, जो चेक एवं अंगरेजी जानता हो। यही काम कथानायक करता है। वह तीन दिन तक उसके साथ गाइड के रूप में दुभाषिए का काम करता है। इन तीन दिनों के अनुभवों को, स्वयं होस्टल में उसे टूरिस्ट एजेंसी से

फोन मिलने से उस महिला को बिदा करन तक की कथा को बड़े विस्तार से संवेदनमयी भाषा में सुनाता है। तीन दिन के बाद महिला विएना चली जाती है और उपन्यास समाप्त हो जाता है।

कथा कहने को इतनी सी होने पर भी कथा में कहा हुआ कथ्य महत्त्वपूर्ण है। इस कथ्य का विश्लेषण अनेक आधारों पर किया जा सकता है। इस संदर्भ में उपन्यास के नामकरण पर विचार किया जा सकता है। उपन्यास का नाम 'वे दिन' है। प्रश्न यह है कि ये, वे दिन, कौनसे हैं? इसकी व्याख्या उपन्यास को देखते हुए निम्न रूप में की जा सकती है:—

१. उन तीन दिनों का जीवन, जो कथानायक और रायना के बीच प्राग में प्रत्यक्ष रूप में बीताता है।

२. यह जीवन—उन्हीं तीन दिनों का—रायना की दृष्टि से पुराने जीवन की स्मृति रूप में–यादें ताजा रखने की दृष्टि से–जिया हुआ जीवन। इस दृष्टि से उपन्यास में चित्रित प्रत्यक्ष जीवन, महिला के अतीत जीवन की प्रतिच्छाया मात्र है और इस प्रतिच्छाया को देखकर पाठक से यह आशा की जा रही है कि वह उस महिला के मूल जीवन को उसकी प्रतिकृति के आधार पर पहचान लें। सच तो यह है कि इस अर्थ में प्रत्यक्ष रूप में दिखलाए हुए तीन दिनों का जीवन 'वे दिन' महिला के पुराने 'वे दिन' की छाया मात्र है।

३. एक तीसरे अर्थ में 'वे दिन' कथानायक की दृष्टि से स्मृति–रूप में जीवित जीवन है। वह उन तीन दीनों के जीवन को भूलता नहीं।

उपन्यास की शैली में तीनों पद्धतियाँ का सम्मिश्रण है जिनमें प्रथम प्रधान है। कथा वर्तमान की सीधी लकीर के अनुसार चलती है। वर्तमान की यह सीधी लकीर उन तीन दिनों की है जो रायना एवं कथानायक प्राग शहर में गुजारते हैं। इस वर्तमान में अप्रत्यक्ष रूप से रायना का अतीत झांकता रहता है और कथानायक (इसी वर्तमान को) भविष्य के लिए स्मृतियाँ संजोता रहता है। एक के वर्तमान में अतीत है तो दूसरे के वर्तमान में भविष्य की स्मृतियों का आधार है। सच तो यह है कि व्यक्ति वर्तमान में जीने पर भी अतीत और भविष्य पीछा नहीं छोडते इसी अर्थ में अतीत और भविष्य इस उपन्यास में वर्तमान के साथ आते हैं। मनुष्य काल से मुक्त होकर अर्थात निस्संग भाव से वर्तमान में जीना चाहता

है। यह प्रयास दोनों ही पात्र करते हैं किन्तु क्या अतीत और भविष्य से कटकर वर्तमान में जिया जा सकता है ? नहीं। यह संभव नहीं। रायना को अतीत सताता है और कथानायक को भविष्य की चिन्ता है इस दृष्टि से उपन्यास की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं।

"तुम्हें विश्वास होता है ?" उसका स्वर (रायना का स्वर) सिहर गया।

"किस पर ?" मैंने (कथानायकने) उसकी ओर देखा।

"जो हमें मिला है—इन दिनों में।" [1]

यहाँ इन दिनों से तात्पर्य वे तीन दिन है जो प्राग शहर में दोनों ने रायना और कथानायक ने साथ साथ गुजारे। इन दिनों की व्याख्या सारे उपन्यास में है अतः उसकी व्याख्या कुछ शब्दों में नहीं की जा सकती। प्रसंग के अनुसार संक्षेप में यहाँ यह अर्थ है कि कथानायक ने इन तीन दिनों में रायना के साथ जो अनुभव प्राप्त किया, क्या उस अनुभव पर वह पहले विश्वास कर सकता था ? रायना स्वयं उस अनुभव से अभ्यस्त है अत: उसके लिए यह कोई नया अनुभव नहीं है। वह तो इस अनुभव में अतीत को फिर से जीवित करना चाहती है क्योंकि उसके अभाव में वह जी नहीं सकती। किन्तु यह अनुभव कथानायक के लिए नया अनुभव है अत: वह उसे सावधान करते हुए कह देती है कि इसमें पछतावा नहीं होना चाहिए। वह कहती है– "मैं सिर्फ यह चाहती हूँ कि दूसरे को बाद में पछातावा न हो·· दैन इट इज मिजरी।" [2] इसी तरह कथानायक पहले तो कुछ नहीं जानता था किन्तु उसके साथ 'इन दिनों' में अनुभव प्राप्त कर जब बिछुड़ने का समय आता है तो वह बेचैन हो जाता है। रायना जैसे हीं कथानायक से कह देती है कि– 'मैं कल जा रही हूँ' [3] कथानायक तभी से बार बार उससे कुछ दिन और ठहर जाने का आग्रह करने लगता है। दोनों ही पात्रों का 'इन दिनों' के प्रति दृष्टिकोण निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है–

'जानते हो··· मैंने सोचा था, जब तुम यहाँ आओगे, हम किसी चीज के बारे में बात नहीं करेंगे···' उसने (रायना ने) कहा।

---

१. वे दिन—निर्मल वर्मा—(दूसरा संस्करण) पृ. २०५.
२. —वही—पृ. २०५.
३. —वही—पृ. १७८.

'हमने कभी किसी के बारे में कोई बात नहीं की।' मैंने कहा (कथानायक ने)

'अगर हम करते तो कोई फर्क पड़ सकता था?'

'मैं तुम्हें जाने से रोक सकता था।' मैंने कहा।

वह धीरे से हंसने लगी। मैं पीने लगा।

'तुम ऐसा सोचते हो?' उसने पूछा।

'मै सोचता कुछ भी नहीं।' मैंने कहा।

'तुम जानते हो इट वुडन्ट हेल्प...' उसने कहा।

... ...

'सुनो... जो हमें मिला है, वह काफी नहीं है?' उसने कहा।

'मालूम नहीं...' मैंने कहा।

'मुझे मालूम है... लेकिन तुम विश्वास नहीं करते।'

'तुम विश्वास करती हो?' मैंने उसकी ओर देखा।

'सिर्फ इन दिनों में... उसके बाहर नहीं।' उसने कहा।[१]

कथानायक उसे रोकना चाहता है किन्तु रायना जानती है कि इससे कुछ होनेवाला नहीं है। रायना का दृष्टिकोण स्पष्ट है और वह है उन दिनों का विश्वास उन्हीं दिनों में करना। उससे बाहर नहीं। वास्तव में रायना प्राग गंभीर होने नहीं आई थी[२] और उसी के अनुसार वह जो चाहती हैं, कर लेती हैं। मात्र वह भयंकर होता है।[३] अन्त में वह युद्धकाल की एक घटना कथानायक को सुनाती है—पॉल नामक व्यक्ति से सम्बन्धित। इसके अनुसार पॉल ने कहा था कि दो तरह के सुख होते हैं— एक बड़ा सुख, एक छोटा सुख। बड़ा सुख हमेशा पास रहता है। छोटा सुख कभी कभी मिल पाता है। सिगरेट पीना, ठंड में आग सेंकना, ये उसके लिए छोटे सुख थे और बड़ा सुख— साँस ले पाना, महज हवा में साँस लें सकना— इससे बड़ा सुख कोई और नहीं है।[४] रायना इस बात को इस समय भी याद करती है और

---

१. —वे दिन—निर्मल वर्मा —(दूसरा संस्करण)—पृ. २२५, २२६
२. वही—पृ. २२५
३. वही—पृ. २२५
४. वही—पृ. २२७

इसी तरह इन तीनों दिनों में वह युद्धकाल के अनुभवों को याद करती है। वह अपने हृदय में यह विश्वास रखना चाहती है और सोचती है कि 'इन दिनों' का महत्त्व 'इन दिनों' के लिए है। किन्तु क्या वह चाहकर भी ऐसा कर पाती है। कथानायक के साथ तीन दिनों में विभिन्न अवसरों पर विभिन्न रूप में अपने अतीत को जीवित करने का प्रयत्न करती है। 'विविड' अनुभव वह समय समय पर दोहराती है। इस विविड अनुभवों में वह जीती आई है और ऐसे अनुभवों को वह बार बार अनुभव करना चाहती है। जीवन की एक-रसता उसे पसन्द नहीं है। सार बात यह है कि 'इन दिनों' का अनुभव उसके लिए 'वे दिन' की छाया मात्र है। और इसी तरह कथानायक के लिए 'इन दिनों' का अनुभव उसके लिए बाद में 'वे दिन' ही रह जाते हैं। उपन्यास के आरंभ में- 'तुम विश्वास करते हो[1]' वाक्य बार बार उसकी स्मृति में डोलते रहते हैं। उपन्यास का यह आरंभ कथानायक के लिए इन दिनों को वे दिन के रूप मे प्रस्तुत करनेवाले है। इन दोनों 'वे दिनो' से हटकर उपन्यास 'इन दिनों' में चलता रहता है।

अब उपन्यास का विश्लेषण 'वे दिन' से हटककर 'इन दिनों' के रूप में करें। कथा की सीधी लकीर वर्तमान में चलती है। एक समय था जब उपन्यासों में पात्रों का समग्र जीवन-वृत्त दिया जाता था। एक नहीं अनेक पात्रों का वृत्त उपन्यासों में दिया जाता था। ऐसी स्थिति में वर्तमान पर—अधिक ध्यान देना संभव नहीं होता था। वे दिन उपन्यास में ऐसी बात नहीं है। इस उपन्यास की एक बड़ी उपलब्धि यह है कि पात्रों के जिन क्षणों का जीवन इस उपन्यास में आया है, उन क्षणों में पात्र जैसे जीते हैं, यों कहिए कि उनकी मानसिक अवस्था जैसी है, उनकी संवेदना जिस कोटि की है, साथ ही वे अपने भीतर जैसा अनुभव करते रहते हैं, उसी रूप में लेखक ने पात्रों का जीवन दिया है। और इसीलिए तीन दिनों का जीवन इतना अधिक विस्तार पा सका है। एक प्रकार से यह तीन दिन की दिनचर्या ही है।

'इन दिनों' की यह दिनचर्या जिन पात्रों की है, उन पात्रों का भी उतना ही अंश उपन्यास में स्थान पा सका है, जितने कि वे 'इन दिनों' से सम्बद्ध हैं। किसी भी पात्र का पूरा परिचय नहीं दिया गया। लेखक ने अपनी ओर से कहीं पर भी किसी भी पात्र का परिचय देने का प्रयास नहीं

---

१. वे दिन - निर्मल वर्मा--(दूसरा संस्करण)-पृ. ७, ८ और ९

किया। कथानायक चूँकि स्वयं कहनेवाला कहनेवाला पात्र है। और चूँकि वह तीन दिनों तक रायना के साथ रहता है और इसी तरह प्राग में अपने साथियों के साथ भी। अतः उपन्यास में उन्हीं पात्रों को स्थान मिला है, जो कथानायक से तीन दिनों के जीवन में किसी न किसी रूप में सम्बद्ध हैं। टी–टी हो, फ्रांज हो, मारिया हो या रायना या मीता या और भी जो पात्र रहे हों, वे सब के सब कथानायक से जिन जिन दृष्टियों से सम्पर्क में आते हैं, उनका उतना ही उल्लेख उपन्यास में हुआ है। विशेष बात यह है कि अन्य सभी पात्र (कथानायक को छोड़कर) कहीं पर भी अपना परिचय पूरा पूरा नहीं देते। और सच तो यह है कि कथानायक का अतीत भी नहीं दिया गया है। प्रत्येक पात्र की वर्तमान अवस्था को देखकर ही उनके सम्बन्ध में जाना जा सकता है। एक प्रकार से पात्रों का जीवन अजनबियों सा है। एक पात्र दूसरे के लिए अजनबी है। फ्रांज और मारिया दोनों साथ साथ रहते हुए भी अकेलेपन की अनुभूति उन्हें सताती रहती है। फ्रांज मारिया के साथ विवाह करता नहीं और मारिया को बाहर जाने का वीसा मिलता नहीं। टी. टी. एवं अन्य पात्र भी इसी तरह अतीत से कटे हुए अजनबियों के बीच जीते हैं। औद्योगिक सभ्यता के कारण नगरों में एक नई सांस्कृतिक व्यवस्था जन्म ले रही है, इसका आभास भी उपन्यास के पढ़ने से हो जाता है। स्वयं लेखक ने धर्मयुग के अंकों में (१ अक्तूबर ६७ एवं ८ अक्तूबर के ६७ के अंकों में) 'दो संस्कृतियों के बीच' शीर्षक लेख के अंतर्गत प्राग की संस्कृति पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इस लेख में लेखक ने एक बदलती सांस्कृतिक व्यवस्था के कारण दिए हैं और साथ ही पूर्व एवं पश्चिमी विचारधाराओं के प्रभावों का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। इस लेख में निर्मल वर्मा जिन विचारों को वैचारिक धरातल पर प्रस्तुत करते हैं उसकी संवेदना का दर्शन उपन्यास में हो सकता है। किसी संस्कृति में जब हम जीते हैं तो उस संस्कृति का हम पर नियंत्रण होता है। संस्कृति कृत्रिम नियंत्रण न कर सहज नियंत्रण करती है। अतः हमारे जीवन मूल्य उसमें अपने आप स्पष्ट हो जाते हैं। अपने लेख में निर्मल वर्मा विशेष रूप से सतही संस्कृति का वर्णन करते हैं। उन्हीं के अनुसार—" अगर मजदूर को अपनी स्थिति को सुधारने का अवसर मिले, तो वह मध्यवर्ग के लोगों की तरह सतही और उथला हो जाएगा, जिनपर वह आज ईर्ष्या करता है.. सतहीपन से मतलब है, जब आदमी बेहतर स्थिति के अवसरों को स्वीकार करके दूसरे लोगों को भुला देता है, जो उससे बुरी स्थिति में जीते हैं। दूसरों को भूल जाने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस तरह के

सफल लोग खुद अपने अस्तित्व की जटिलता को भुला देते हैं क्योंकि वे अपने को मृत्यु और संकट के बोध से बचाकर जीना चाहते हैं।"[1] वास्तव में ये पंक्तियाँ स्टीफेन स्पेण्डर की आत्मकथा (वर्ल्ड विदिन वर्ल्ड) की है। इन्हीं को उद्धृत करते हुए निर्मल वर्मा ने कहा है कि "यूरोप में कुछ वर्ष रह कर आज सहसा मुझे उनकी यह चेतावनी स्मरण हो रही है--मुझे दुख है कि आज मैं उनसे कम-से-कम इस बात पर सहमत हूँ और यह सहमति मेरे लम्बे दिनों के बहुत प्रिय मोह के भंग हो जाने के दुख को कम नहीं करती। किन्तु इससे अधिक बड़ा दुख शायद इस क्रूर तथ्य में है कि व्यवसायी संस्कृति के सतही से विरुद्ध हमने 'सर्वहारा' वर्गकी जो विद्रोही और पवित्र मान्यताएँ अपनायी वे आज स्वयं अपना अर्थ खो बैठी हैं।"[2] 'वे दिन' उपन्यास में निर्मल वर्मा के ये विचार संवेदना का रूप लिए हुए हैं। डा. इन्द्रनाथ मदान ने भी स्वीकर किया है लिखा है: "इस उपन्यास में संवेदना के अनेक स्तर हैं– उथले भी और गहरे भी। इस मूल संवेदना के बारे में मतभेद हो सकता है। क्या अकेलेपन की अनुभूति इसकी मूल संवेदना है? यह अनुभूति घनी तथा व्यापक है। उपन्यास में रायना भी अकेली है, उसका पति भी, उसका पुत्र भी, फ्रांज भी, मारिया भी, माँ भी और टी. टी. भी इसके मूल को अजातीयता की अनुभूति में भी आंका गया है।"[3] संक्षेप में यों कह सकते हैं कि इस उपन्यास में पात्रों का जीवन इस रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे पता चले कि आधुनिक युग की सुख-सुविधाओं के बीच, बदलते सांस्कृतिक वातावरण के बीच, युद्धकाल में व्यक्ति अपने अन्तरतम में क्या अनुभव करता रहता है? क्या रायना जिसकी खोज में रहती है और जिसको पा लेना उसके लिये सहज भी है क्यों कि वह कहती भी है कि कर लेती हूँ...यह 'मैं जो चाहती हूँ ... वह भयंकर है।'[4] इतना होने पर भी क्या रायना दुखी है? 'इन दिनों' में जीने के लिए वह प्राग आती है और वास्तव में वह 'इन दिनों में' जीने का प्रयत्न करती है और कथानायक से भी साफ साफ कहती है कि 'इन दिनों' में ही जीना चाहिये। इस पर भी क्या 'इन दिनों' में ही जीती है? नहीं। वास्तव में यह बात नहीं है। यदि ऐसा हो तो उपन्यास का नाम 'वे दिन' क्यों होता? रायना के लिये 'वे दिन' ही प्रिय हैं और वह 'इन

---

१. धर्मयुग—८ अक्तूबर १९६७–पृ. १०.
२. –वही–पृ. १०.
३. आज का हिन्दी उपन्यास–डा. इन्द्रनाथ मदान–पृ. १०१.
४. वे दिन–निर्मल वर्मा–(दूसरा संस्करण)–पृ. २२५.

दिनों' को 'वे दिन' के रूप में ही देखने का प्रयत्न करती रहती है, जैसे वह कहती है–'आज रात मैं सब-कुछ वही करना चाहती थी, जो बरसों पहले करती थी...बिलकुल पुराने दिनों की तरह...'[1] एक और स्थान पर वह कहती है। एक उम्र के बाद हम वही चाहने लगते हैं, जो मिल सकता है।'[2] इससे लगता है कि ना 'इन दिनों' में जीते हुए भी 'वे दिन' में ही जीती हैं। यह ऐसी स्थिति है जिसमें वर्तमान अतीत को दोहराने के क्रम में रहता है। किन्तु यह वास्तव में स्थिति के बदल जाने के कारण चाह कर भी दोहराया नहीं जा सकता और इसीलिए बाह्य रूप से व्यक्ति कितना ही समझ ले कि स्थिति को दोहराया जा रहा है किन्तु वास्तविकता उसके सामने भयंकर रूप में आपना रंग दिखाती रहती है। इस प्रकार के जीवन की संवेदना कितनी गहरी और तीव्र होती है यही इस उपन्यास का मूल स्वर है।

अब अन्त में यह कहना है कि इस उपन्यास ने व्यक्ति के अन्तरतम को छूने का प्रयास किया है। साहित्य में यह क्षमता काव्य में (कविता में) ही पाई जाती है। नयी कविता में आधुनिक युग की मानवीय संवेदना व्यक्त हो रही है। औपन्यासिक धरातल पर निर्मल वर्मा ने इस संवेदना को व्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। वातावरण एवं स्थिति का ज्ञान कराने में मानवीय संवेदना का ध्यान लेखकने सदैव रखा जीवन का उपभोग चाहे वह सुखमय हो दुखमय दोनों का ही काव्यात्मक वर्णन उपन्यास में मिलता है। और इसीलिए इस उपन्यास ने हिन्दी उपन्यास साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है।

● ●

---

१. वे दिन–निर्मल वर्मा–(दूसरा संस्करण) –पृ. १९६ और १९७.
२. –वही–पृ. २२५.

श्रीकांत वर्मा | दूसरी बार

टूटे विश्वासों की कथा

● टूटे विश्वासों की कथा

'दूसरी बार' श्रीकान्त वर्मा का उपन्यास है। हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में यह नई संभावनाओं को लेकर अवतरित हुआ है। सब से प्रमुख बात यह है कि इस में एक ही पात्र प्रधान है। दूसरे दोनों पात्र बिन्दो एवं नायक का मित्र अनिल दोनों ही नायक ने जैसे उन्हें समझा है, उसी रूप में आए हैं। आकार में लघु हैं। काल की सीमा दिनों में है। कथानक के नाम पर दिनचर्या का वर्णन है। और यह भी कुछ दिनों की दिनचर्या है। लगता है कि इतनी सीमाओं में पूरा उपन्यास कैसे लिखा जा सकता है? फिर भी लेखक के कौशल ने इसे उपन्यास की संज्ञा देने में समर्थ कर दिया है। प्रश्न यह है कि ऐसा इस उपन्यास में क्या है, जिससे इसे उपन्यास कहा जाय? जब तक जीवन के प्रति अपनाए जानेवाले विशेष दृष्टिकोण को, चाहे वह एक ही पात्र का क्यों न हो, समग्र रूप में नहीं दिखलाया जाता तब तक उपन्यास अपने आप में समर्थ नहीं हो सकता। इस उपन्यास की कतिपय विशेषताओं पर नीचे प्रकाश डाला जा रहा है।

उपन्यास का शीर्षक 'दूसरी बार' है। इसलिए कि इसका नायक बिन्दो के साथ दूसरी बार रहता है। उपन्यास का आरंभ बिन्दो के दूसरे बार आने से होता है। नायक एवं बिन्दो दोनों ने ही साथ साथ जीवन गुजारा था। सम्बन्धों में तनाव आता गया और दोनों एक दूसरे से अलग हो गए। बिन्दो नायक को छोड़कर चली गई। अब वह फिर आई है। उसके दोबारा आगमन से नायक का मन विचलित होता है। इस विचलित अवस्था में वह टूटे हुए विश्वासों को लेकर जीता है। ऐसे जीवन की झलक इस उपन्यास में दिखलाई गई है। इस जीवन की व्यथा कितनी तीव्र होती है? यह दिखलाना भी उपन्यासकार का आशय है।

स्त्री–पुरुष का सम्बन्ध जीवन की यथार्थ भूमि पर प्रस्तुत करने का प्रयास भी उपन्यास में किया गया है। सम्बन्ध विश्वासों के आधार पर स्थापित होता है, बना रहता है, बिगड़ता है एवं टूटता भी है। किसी पर विश्वास हो जाए और उस विश्वास के आधार पर कुछ काल तक साथ साथ रहें और फिर किन्हीं कारणों से विश्वास टूटते जाएँ। यहाँ तक कि दोनों एक दूसरे से अलग हो जाएँ ऐसी स्थिति में दूसरी बार फिर विश्वास को प्राप्त करने के लिए बडी कठिनाई होगी। विश्वासों के आदान–प्रदान में व्यक्तित्वों का आदान–प्रदाना होता है। अपने को दिया जाता हैं और औरों को ग्रहण किया जाता है इस आदान–प्रदान में जीवन का जो चित्र प्रस्तुत किया जायगा वह सम्बन्धों का सही सही रूप बतलाने वाला होगा। लेखक ने प्रमुख रूप से इस पर अपना ध्यान केन्द्रित किया हैं और इसी के अनुसार नायक के टूटे विश्वासों की कथा उपन्यास में लिखी है।

उपन्यास के मूल कथ्य को जिस प्रकार कथित किया गया है, उसमें भी नवीनता है। पूरे उपन्यास को छः अध्यायों में बांटा गया है। इनके शीर्षक संख्याओं से ज्ञात होते हैं। एक संख्या के अन्तर्गत नायक बिन्दो का अन्तर्देशीय पत्र प्राप्त करने के बाद उससे मिलने जाता है, उसकी कथा है, वह पूरा दिन उसी के साथ गुजारता है। उस दिन की भेंट के साथ और उसके साथ गुजारे समय के साथ इस अध्याय का अन्त होता है। दूसरे अध्याय में अर्थात दो संख्या के अन्तर्गत नायक के बेचैन जिन्दगी की झलक दी गई है। उसकी दिनचर्या में भटकाव हैं, अस्तव्यस्तता है और मानसिक संघर्ष है। वह बिन्दो के घर जाकर भी बिन्दो से नहीं मिलता। घर पर आए हुए फोन को भी उसका फोन समझता है और अन्त में विवश होकर उससे फोन पर बात करता है। जिन विश्वासों को लेकर वह जीता है, वे टूटे हुए हैं, इसी से उसकी व्यथाएं बढ़ती जाती हैं। उसका यह दिन तीव्र व्यथा में गुजारा हुआ दिन है। तीन संख्या के अन्तर्गत रात की व्यथा (दूसरे दिन की रात) और फिर सबेरे व्यथा की गांठ खोलने अनिल (उसके मित्र) के पास पहुँचने एवं दिन का बहुत बड़ा भाग उसके साथ गुजारने की कथा है। अनिल से मिलकर वह जो कुछ कहना चाहता था, वह पूरी तरह कह नहीं पाता। उलटे अनिल उसकी व्यथा के मूल कारणों का उल्लेख कर उसकी व्यथा को और बढ़ाता है। वहाँ से दिन भर भटकने के बाद दोपहरी के बाद घर लौटता है। घर पर उसे बिन्दो बैठे हुए मिलती है। यहीं पर यह अध्याय समाप्त हो जाता है। चार संख्या के अन्तर्गत बिन्दो एवं उसके बीच हुए संघर्ष की कहानी है। बिन्दो

पत्रों की मांग करती है और अन्त में लेकर चली जाती ह वास्तविकता यह थी कि वह पत्र लेने नहीं आई थी। संख्या पांच के अन्तर्गत बिन्दो के पत्रों को लेकर चले जाने के बाद अर्थात् ३६ घण्टों बाद की कहानी है। वह बिन्दो के यहाँ जाता है। रात बिन्दो के यहाँ गुजारता है। सबेरे लौट आता है। इसी में यह अध्याय समाप्त हो जाता है। अन्तिम छः संख्या में थका निराश नायक अनिश्चय की अवस्था में बिन्दो से मिल जाता है।

कथानक की इस रूप रेखा को देख कर यह अनुभव नहीं होता कि यह उपन्यास की रूपरेखा है। प्रत्येक अध्याय बिखरे जीवन की कहानी है। इनका स्वतंत्र महत्त्व भी है। यह कहानीं एक ही पात्र की है क्यों कि वह पात्र (नायक) स्वयं अपनी कहानी सुना रहा है। संघर्ष का तीव्र रूप तो उपन्यास में दिखलाई देता है किन्तु खोजने पर कारण नहीं मिलते। लगता है संघर्ष, संघर्ष के लिए हो रहा है। बहुत से कारण तो ऐसे हैं, जो वास्तव में घटित नहीं होते किन्तु मन के वहम के कारण निर्मित होते हैं और ऐसे कारण चाहे उनका अस्तित्व यथार्थ में हो या न हो किन्तु यदि वे मन में हैं और उनके मन में होने के कारण घटनाओं, व्यक्तियों और स्थितियों को देखने की दृष्टि उनसे बराबर मिलती रहती है। अतः उनका अस्तित्व मानना पड़ता है। ऐसे कारणों से सुनहरा जीवन भी नरकमय हो जाता है। यहाँ वह कहावत याद आती है जिसमें कहा गया है—'मन के माने हार है और मन के माने जीत' नायक की व्यथा नायक की मानी हुई व्यथा है और इस अर्थ में कम से कम नायक के लिए वह व्यथा वास्तविक व्यथा है। सब से भयंकर लड़ाई अपने आप से ही होती है और इस उपन्यास में नायक प्रायः अपने आप से लड़ता हुआ दिखलाया गया है। बिन्दो चाहकर भी उसकी रक्षा कैसे कर सकती है। उपन्यास में बिन्दो जहाँ जहाँ भी बोलती दिखलाई गई है और उसका व्यवहार जहाँ जहाँ भी देखा गया है, वहाँ वहाँ वह नायक के वहम के विपरीत आचरण करती दिखलाई देती है। नायक समझता है कि बिन्दो ने फोन किया था जब कि उसने फोन नहीं किया था। नायक समझता है कि वह चिट्ठियाँ माँगने आई थी जब कि वह चिट्ठियाँ माँगने नहीं आई थी। नायक समझता है कि वह किसी और के साथ रीगल के पास घूमने गई होगी जब कि वह नहीं जाती। नायक अपने ही वहमों से परेशान है। इसमें बिन्दो बेचारी क्या कर सकती है? सार बात यह है कि जब विश्वास टूटे हुए होते हैं तो सम्बन्धों में दरारें अपने आप आ जाती हैं और फिर इनसे चाहने पर भी मुक्ति नहीं मिलती। यही इस उपन्यास में दिखलाया गया है।

डॉ. इंद्रनाथ मदान का कहना है कि हिन्दी उपन्यास को अभी तक मुहावरा (अपना मुहावरा) नहीं मिल सका है। उनके अनुसार यह अपने मुहावरे की खोज में है।[1] इस दृष्टि से 'दूसरी बार' उपन्यास मुहावरे की खोज करता प्रतीत होता है। यह पुराने ढांचे में फिट नहीं होता और नया सांचा अभी बन रहा है। जब बन जाएगा तो उसे अपने आप मुहावरा प्राप्त हो जाएगा। इस प्रयास में दूसरी बार की उपलब्धि यह है कि जीवन के जिस स्तर का उद्घाटन उपन्यास में हुआ है उसका समग्र रूप पूर्णतः अवतरित हो गया है। पूर्णतः इस अर्थ में कि नायक टूटे विश्वासों को लेकर कैसे जी रहा है, यह दिखला दिया। उपन्यास का आरंभ इसी रूप में हुआ और अन्त भी उसी रूप में। यदि नायक पूर्णतः टूट जाता तो वह आरंभ में ही बिन्दो का अन्तर्देशीय पत्र पाकर उससे मिलने नहीं जाता। वह जाता है अर्थात अब भी उसे उस पर (बिन्दो पर) कुछ विश्वास है। वह उसके बिना नहीं रह सकता अर्थात वह उस पर अवलम्बित है, यह वह अनुभव करता रहता है। किंतु जब साथ रहता है तो उसका जीवन जिस रूप में गुजरता है, उसी की झलक उपन्यास में दी गई है। उपन्यास के अन्त में भी यह दिखलाया गया है कि वह अपने विश्वास को लेकर (आत्मविश्वास को लेकर) नहीं जी सकता। सिनेमा देखने जाने का निर्णय भी वह स्वयं अपनी इच्छा से नहीं, उसकी इच्छा से करता है। उसका सब से बड़ा दुख इसी बात में है कि बिन्दो के निर्णय के अनुसार ही उसे सब कुछ करना पड़ता है। कहीं तो वह बिन्दों से अपने को श्रेष्ठ सिद्ध कर देता। उसकी इस कमजोरी पर बिन्दो शासन करती है और इस शासन से वह मुक्त होना चाहता है किन्तु वह मुक्त नहीं हो सकता। उसका दुख इसलिए बढ़ जाता है कि वह जो चाहता है, उसे बिन्दो अच्छी तरह जानती है और इसीलिए वह अपनी इच्छाओं के विपरीत आचरण कर अपने को और बिन्दो दोनों को दुख देता रहता है। अपने से लड़ते हुए वह निराश हो जाता है और अन्त में फिर अपने को बिन्दो पर छोड़ देता है। टूटे हुए विश्वासों को लेकर नायक के जीवन का आरंभ होता है और उसी में अन्त होता है। इस जीवन से गुजरते समय जो व्यथा व्यक्ति को सहनी पड़ती है, उसी को प्रस्तुत करना उपन्यासकार का लक्ष्य था और इसमें लेखक पूर्णतः सफल हुआ है और इस उपन्यास की पूर्णता इसी में है।

● ●

---

१. आज का हिन्दी उपन्यास—डा. इंद्रनाथ मदान—अपनी बात से।